कंचन और कसौटी

—महासती पुष्पवती जी

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय का पुष्प २६७

प्रथम अवतरण :
वि. सं. २०४५ भाद्रपद
सितम्बर १६८८

●

प्रकाशक :
श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
शास्त्री सर्किल
उदयपुर ३१३००१

●

मुद्रक :
संजय सुराना के निरीक्षण में
शक्ति प्रिंटर्स द्वारा, वास्ते
दिवाकर प्रकाशन
अवागढ़ हाउस, अंजना सिनेमा के सामने
आगरा २८२

मूल्य :
लागत मात्र

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय उदयपुर
संशोधित मूल्य
50

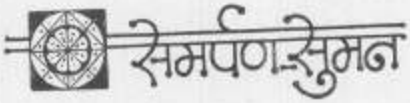

जिनका जीवन कंचन

संयम की कसौटी पर सदा निखरता रहा

उन

प्रातःस्मरणीया परम उपकारी गुरुणीवर्या

महासती श्री सोहनकंवरजी म० की

पुनीत-स्मृति में....

–साध्वी पुष्पवती

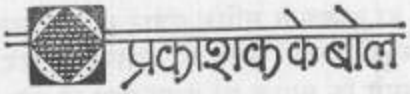

प्रकाशक के बोल

विशुद्ध हवा स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है तो अशुद्ध हवा स्वास्थ्य के लिए घातक है। यही बात साहित्य के लिए भी है। सत् साहित्य जीवन का निर्माण करता है तो असत् साहित्य जीवन को विकृत करता है। आज साहित्य के नाम पर ऐसा सेक्स प्रधान विकृत साहित्य दिया जा रहा है जिसे पढ़कर युवक और युवतियों के जीवन में विकारों की आग सुलग रही है। वे अन्याय, अत्याचार और अनाचार के मार्ग को अपना रहे हैं। हमारी संस्कृति और सभ्यता के लिए इस प्रकार का घासलेटी साहित्य कलंक है।

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय ने सत् साहित्य प्रकाशन का अभियान प्रारम्भ किया। उसने उन गलत उपन्यासों के स्थान पर जीवन को सत्-प्रेरणा प्रदान करने वाले उपन्यास दिये हैं। उन्हीं उपन्यासों की लड़ी की कड़ी में "कंचन और कसौटी" नया उपन्यास प्रदान कर रहे हैं। जैन साहित्य की सुप्रसिद्ध कथा महाबल-मलयासुन्दरी के आधार पर प्रस्तुत उपन्यास आधृत है। महामन्त्र नमस्कार की आराधना से संकल्प शक्ति कितनी सुदृढ़ होती है, यह तथ्य उपन्यास में यत्र-तत्र मुखरित हुआ है।

प्रस्तुत उपन्यास की लेखिका हैं—साध्वीरत्ना पुष्पवतीजी जो उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी की ज्येष्ठ भगिनी हैं। महासतीजी ने पहले ही अनेक उपन्यास लिखे हैं, जिन्हें प्रकाशित करने का हमें सद्भाग्य प्राप्त हुआ। इस उपन्यास की कथा बहुत ही रोचक और दिलचस्प है। जब तक पाठक इसे पूर्ण न कर ले तब तक वह पुस्तक छोड़ नहीं सकता। ऐसा चुम्बकीय आकर्षण है—प्रस्तुत उपन्यास में।

हमें आशा ही नहीं, अपितु दृढ़ विश्वास है कि हमारे पूर्व प्रकाशनों की तरह यह प्रकाशन भी अत्यधिक लोकप्रिय होगा। दिन-प्रतिदिन महंगाई बढ़ रही है, कागज, छपाई, कवर पृष्ठ आदि इतने महंगे होते चले जा रहे हैं कि सामान्य पाठक उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता, तथापि हमारा यह उद्देश्य है कि सद्साहित्य जितना कम मूल्य में सम्भव हो, वह दिया

जाए और उसी अभियान को लेकर ही चल रहे हैं। जो सज्जन साहित्य महंगा है, यह कहते हैं, उन्हें देखना चाहिए कि बाजार में, हमारे साहित्य से यह साहित्य कितना महंगा है। यदि तुलनात्मक दृष्टि से चिन्तन करेंगे तो हमारी बात सहज ही आपको समझ में आ जायेगी। यह आवश्यक है कि सद् साहित्य का अधिक से अधिक प्रचार हो और उसके लिए आप पर्व दिनों में अन्य वस्तुओं वर्तनों आदि की प्रभावना न कर, सद्-साहित्य की प्रभावना करें जिससे कि समाज का काया-कल्प हो सके। साहित्य के पठन पाठन से व्यक्तियों के जीवन में से बुराइयां मिटेंगी और सद्गुणों का सरसब्ज बाग लहलहायेगा।

ज्ञात और अज्ञात रूप में जिनका हमें सहयोग प्राप्त हुआ है, उन सभी के प्रति हम अपना आभार व्यक्त करते हैं।

चुन्नीलाल धर्मावत
कोषाध्यक्ष
श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर

स्वकीय

'णमोकार' महामन्त्र एक सार्वभौम और सम्प्रदायातीत मंत्र है। इसकी महिमा और गरिमा के सम्बन्ध में प्राचीन मनीषियों ने बहुत कुछ लिखा है। सौ से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। किसी ने भक्ति भावना से विभोर होकर लिखा है तो किसी ने चमत्कारों को प्रदर्शित किया है। किसी ने उसके माहात्म्य पर प्रकाश डाला है तो किसी ने वैज्ञानिक दृष्टि से भी उस पर चिन्तन किया है। 'मननात् मन्त्रः' कहा गया है, मनन करने के कारण ही मन्त्र को मन्त्र कहते हैं। मन्त्र छोटा होता है। हाथी कितना बड़ा होता है, किन्तु अंकुश कितना छोटा होता है, उसी तरह मन्त्र है। नन्हा-सा बीज विराट वृक्ष का रूप धारण करता है, वैसे ही मन्त्र भी अपने आप में विराट शक्ति धारण किये हुए है। णमोकार मन्त्र में जो भी वर्ण हैं, वे बीज हैं। जब साधक साधना करता है, तभी वह बीज विराट वृक्ष बनता है। हमारी अनादिकालीन मूर्च्छा को तोड़ने की शक्ति है, नमस्कार महामन्त्र में। णमोकार मन्त्र एक विलक्षण मन्त्र है जिसमें तन्त्र, मन्त्र, अध्यात्म, दर्शन, मनोविज्ञान सभी कुछ है। यह श्रुतज्ञान का सार है—नवनीत है। हमारी सोई हुई शक्तियों को जगाता है। णमोकार मन्त्र को हम मानते हैं, पर उसके सम्बन्ध में जानते नहीं। सविधि णमोकार महामन्त्र का जाप किया जाये तो व्यक्ति सर्वदुःखों से मुक्त हो सकता है।

महाबल-मलयासुन्दरी की कथा में यही एक पवित्र प्रेरणा है कि महामन्त्र नमस्कार की आराधना करने से संकल्प-शक्ति में कितनी तीव्रता और प्रबलता आती है। विघ्न और बाधाओं की कारी कजरारी घटाएँ जीवनाकाश में उमड़-घुमड़कर आती हैं पर जब महामन्त्र णमोकार का दाक्षिणात्य पवन चलता है तब वे विघ्न के बादल एक क्षण में छँट जाते हैं। अपूर्व शक्ति है इस महामन्त्र में। मैंने प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से उसी शक्ति को यत्र-तत्र उजागर करने का प्रयास किया है।

महाबल-मलयासुन्दरी जैन साहित्य की एक सुप्रसिद्ध कथा है। जयतिलक सूरि ने संस्कृत भाषा में मलयसुन्दरी चरित्र लिखा। उनके अभिमतानुसार २३वें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ के निर्वाण के १०० वर्ष पश्चात् केशी गणधर ने प्रस्तुत कथानक शंख राजा के समक्ष सुनाया था। प्राचीन

अर्धमागधी भाषा में लिखित ग्रन्थ के आधार पर जयतिलक सूरी ने उसे संस्कृत भाषा में लिखा था। इससे यह स्पष्ट है कि महाबलमलयासुन्दरी का कथानक श्रमण भगवान् महावीर से भी पहले का है। गुजराती भाषा के लब्ध प्रतिष्ठित लेखक वैद्य मोहनलाल चुन्नीलाल धामी ने महाबल-मलयासुन्दरी कथा के आधार पर एक उपन्यास लिखा है। जब मैंने धामी जी का उपन्यास पढ़ा तो मुझे वह बहुत ही पसन्द आया। प्रस्तुत उपन्यास में मैंने अपनी ओर से नवीन रूप से कथा-रस देने का प्रयास किया है। धामीजी के उपन्यास का भी लेखन के समय कुछ उपयोग हुआ है, इसलिए मैं उनके प्रति भी हृदय से आभारी हूँ।

उपन्यास लिखने की प्रेरणा मेरे लघु बन्धु उपाचार्य देवेन्द्र मुनि की रही है। उन्होंने अपने कलम के स्पर्श से उपन्यास को निखारने का प्रयास किया है, साथ ही श्रद्धेय, सद्गुरुवर्य उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी म. की असीम कृपा मुझ पर रही है। सद्गुरुणीजी सोहनकंवरजी म. की कृपा का ही यह सुफल है कि मैं अपना आध्यात्मिक विकास कर रही हूँ। वे मेरे जीवन निर्माण के कलाकार हैं। साथ ही आदरणीया मातेश्वरी प्रतिभामूर्ति महासती श्री प्रभावतीजी को भी विस्मृत नहीं हो सकती जो मेरे जीवन विकास के लिए नींव की ईंट के रूप में रहीं। सुशिष्या चन्द्रावती, प्रिय-दर्शना, किरणप्रभा, रत्नज्योति आदि की सतत् सेवा भी भूल नहीं सकती।

महाबल-मलयासुन्दरी में महाबल साहस का धनी व्यक्ति है, उसमें अपूर्व निष्ठा है, उसके जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव आये, किंतु वह अपने लक्ष्य से च्युत नहीं हुआ। एक दिन उसने अपने लक्ष्य को पा लिया। मलया सुन्दरी उसकी पत्नी है। भारतीय नारी के जीवन में नाना सद्गुणों का साम्राज्य होता है। वह वीर बाला है। अनंगवती में सौतिया डाह की आग धधक रही है। उसकी काली करतूतें रोमांचक हैं, पर पाप का फल सदा ही बुरा होता है, यह सत्य अन्त में स्पष्ट रूप से उजागर हुआ है। कथानक घुमावदार है, आकर्षक है, प्रेरक है। मुझे पूर्ण आशा है कि प्रस्तुत उपन्यास जन-जन के लिए प्रेरक सिद्ध होगा। यदि कोई भी पाठक इससे जीवन प्रेरणा ग्रहण कर सका तो मैं अपना परिश्रम पूर्ण सफल समझूंगी। जिनका भी ज्ञात व अज्ञात रूप में सहयोग प्राप्त हुआ है उन सभी को साधु वाद प्रदान करती हूँ।

—साध्वी पुष्पवती

प्रस्तावना

—डॉ (श्रीमती) अलका प्रचण्डिया 'दीति'
(एम० ए० (संस्कृत), एम० ए० (हिन्दी), पी-एच० डी०)

जीवन्त अनुभूति की प्रकृत अभिव्यक्ति उपन्यास है। उपन्यासकार वस्तुतः जीवनद्रष्टा होता है। उसकी रचना में सम्पूर्ण समाज का रहस्य, अन्तर्मन और सारा दर्शन निहित रहता है। साध्वीरत्ना श्री पुष्पवती जी महाराज द्वारा विरचित 'कंचन और कसौटी' एक बृहत् पौराणिक उपन्यास है। इसमें आध्यात्मिक मूल्यों को प्रतिष्ठित—स्थापित करने के लिए साध्वीरत्ना ने पाप के दुष्फल और पुण्य के सुफल का उद्‌घाटन किया है।

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक प्राचीन प्राकृत कथा काव्य 'मलय-सुन्दरी कथा' पर आधृत है। धर्म की दृढ़ कसौटी पर जीवात्मा कंचन कैसे हो जाती है? णमोकार महामंत्र कष्टों—दुःखों में कितना सहायक होता है? यह सब दर्शाया गया है—प्रस्तुत उपन्यास में। इस उपन्यास के प्रमुख पात्र राजकुमार महाबल और राजकुमारी मलया हैं जिनकी अद्‌भुत जीवन कथा में वैचित्र्य और सुरम्य कल्पनाओं की शृंखला अनुस्यूत है जिससे कथापाठी उसकी हियहारी छटा का अवलोकन करता हुआ 'परी-कथा' की सी आनन्दानुभूति करता है। घटनाओं के घटाटोप के पीछे जो एक रहस्यमयता प्रच्छन्न है उसको धीरे-धीरे उजागर कर लेखिका ने पाठक की उत्सुकता को बढ़ाया है। अनेक घटनाएं और दिव्य वस्तुएँ उनके मन को गुदगुदाती है। नायक महाबल का आविर्भाव आश्चर्यमिश्रित ढंग से होता है। फिर उसका यकायक मलयसुन्दरी से संयोग फिर वियोग और फिर संयोग। बीच-बीच में उन दोनों की साहसपूर्ण गाथा, तो कहीं मलया सुन्दरी की वियोगजन्य करुण पीड़ा, तो कहीं परोपकार के लिए अपने प्राणों को जोखिम में डालकर राक्षसों और कापालिकों से युद्ध और संघर्ष और कहीं भाग्य की परीक्षा के लिए चल पड़ना—ये सब इतिवृत्त हैं इस 'कंचन और कसौटी' उपन्यास के। वस्तुतः यह उपन्यास धीर साहसी पुरुष के पराक्रम, पुरुषार्थ और भाग्य की जोकंा और रुचिवंत कथा है। पूर्वजन्म

कृत शुभाशुभ कृत्य तथा जैनधर्म का कर्मसिद्धांत घटनाओं के मध्य दीपशिखा से काम करते हैं। अनेक नीतिपरक बातें पात्रों के मुख से कहलवा कर लेखिका ने उपन्यास को सत्य और सुन्दर से ही नहीं, शिवं से भी अभिमंडित कर दिया है।

कर्मबंध के संदर्भ में उपन्यास लेखिका ने अपने उपन्यास में महामात्य मतिसेन के उत्तर में साध्वी देशना के रूप में नायिका मलया से कहलवाया है—"मरते समय भी यदि इच्छा रहे तो जीव को पुनः संसार में आना पड़ता है। कर्मों के दुःसह बंधन का कारण इच्छा ही तो है। इच्छा वह वस्तु है जो कभी पूरी नहीं होती। जो पूरी होती है, वह इच्छा नहीं आवश्यकता होती। आवश्यकता वह है, जो पूरी होगी और इच्छा वह जो कभी पूरी नहीं होगी। लेकिन जीव इच्छा के पीछे इतना पागल है कि उस का अन्त आ जाता है, पर उसकी इच्छा पूरी नहीं होती।" (पृष्ठ ८२)।

मरण जीवन की कसौटी होते हैं। आत्महत्या, आत्मत्याग और आत्मोत्सर्ग को परिभाषित करते हुए साध्वीरत्ना कहती हैं—"आत्महत्या, आत्मत्याग और आत्मोत्सर्ग—तीनों में बहुत अन्तर है यद्यपि तीनों की क्रिया एक ही है। देशरक्षा, किसी के प्राण बचाने हेतु अथवा किसी बड़े उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्वयं को मिटा देना आत्मोत्सर्ग है, आत्महत्या नहीं। गृहक्लेश से तंग आकर, दुःखी जीवनों से तंग आकर या ऐसे ही छोटे-मोटे सांसारिक मान-अपमानों को महत्त्व देकर जो लोग प्राण देते हैं, वे ही आत्महन्ता या आत्महत्या करने वाले होते हैं। आत्महत्या पाप है, वह कायरता है लेकिन आत्मत्याग और आत्मोत्सर्ग—दोनों सोद्देश्य होते हैं।" (पृष्ठ ८८)

दीक्षा और त्याग सहज-सम्भव नहीं है। जिसके भीतर से वैराग्य की पुलक उठे वही व्यक्ति दीक्षा और त्याग कर सकता है न कि बाह्य परिस्थितियों से प्रभावित और विवश होकर। स्वामी असीमानंद उपन्यास में मलया को सम्बोधते हैं—"दीक्षा का सम्बन्ध परिस्थिति से नहीं, वैराग्य से है। परिस्थितियों से ऊबकर, संघर्ष की क्षमता खो देने पर दीक्षा लेना तो पलायन है। दीक्षा का सम्बन्ध तो वैराग्य से है, प्रतिबोध से है। दीक्षा एक संस्कार है जो बहिर्मुखता से अन्तर्मुखता की ओर ले जाता है। अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाता है, वैराग्य की सुदृढ़ नींव पर ही दीक्षा का भव्य भवन खड़ा होता है। बिना वैराग्य के त्याग नहीं टिकता है।" (पृष्ठ १६६)। पति-पत्नी के सम्बन्ध जन्म-जन्मांतरों के होते हैं। सच्चे अर्थों में

पति और पत्नी क्या हैं ? इसको महाबल के शब्दों में देखिए—"हर पति प्रियतम नहीं होता और हर पत्नी प्रियतमा नहीं होती। जो पति-पत्नी प्रियतम-प्रियतमा होते हैं, मैं उन्हीं के बारे में कह रहा था कि उनकी बात एक होती है। सच्चे पति के लिए अपनी पत्नी को छोड़कर हर स्त्री माता, बहन और पुत्री होती है। इसी तरह पत्नी के लिए भी पर-पुरुष सहोदर भाई, पिता और पुत्र होता है।" (पृ० १४५)

पश्चात्ताप से बुराई का परिहार होता है। प्रायश्चित्त निर्मल मन का द्योतक है। इस उपन्यास की खलनायिका अनंगवती अपनी सौतेली बेटी मलयासुन्दरी से कहती है—"बेटी! बुरा व्यक्ति भी कहीं न कहीं अच्छा होता है। जब वह अपने पाप का प्रायश्चित्त कर लेता है तो उसकी बुराई पश्चात्ताप की अग्नि में जल जाती है। तपकर सोना भी तो दमकता है।" (पृ० १४८)। धर्म कहने की नहीं व्यवहार-आचार में लाने की वस्तु है। नायक महाबल के वियोग में दुःखी माँ—पद्मावती को समझाते हुए म० सुरपाल धर्मशरण की बात कहते हैं—"धर्म को तुमने सुना अवश्य है, पर जीवन में उतारा नहीं। हमारा धर्म कर्मसिद्धान्त का पर्याय है। इस अटल अडिग सिद्धान्त का सीधा-सादा अर्थ है कि पाप के उदय होने पर संकट आते हैं—टालने से भी नहीं टलते और जब पुण्य का उदय होता है तो संकट को पुण्य उसी तरह खा जाता है जैसे अन्धकार को सूर्य। यदि तुम्हें इस सिद्धान्त में विश्वास है तो तुम्हें भी निश्चिन्त हो जाना चाहिए।" (पृष्ठ ३७)।

जैनदर्शन भावप्रधान है। जीवन की प्रत्येक क्रिया में भावना का महत्त्व होता है। यदि भावना शुभकर नहीं है तो भोजन भी विष के समान है। महाबल का कथन दर्शनीय है—"जूठा दो कारणों से खाई जाती है। पहला कारण भूख हो और दूसरा खिलाने वाले में प्रेम हो। यहाँ तो दोनों ही कारण हैं। जहाँ ये दो कारण होते हैं, वहां तो जूठा भी खा लिया जाता है। क्या दो प्रेमी एक दूसरे का जूठा नहीं खाते। प्रेम और आतिथ्य की संस्कृति में जाति तो भाग ही जाती है। क्या राम ने शबर जाति की महिला शबरी के बेर नहीं खाये थे। फिर जाति तो एक है। तुम भी मानव मैं भी मानव।" (पृ० १६६)। अहंकार व्यक्ति को गिराता है। आत्मबोध व्यक्ति में जागरण लाता है। उपन्यास में पद्माचार्य कहते हैं—"अहं को मिटा देना सुमिरन है। सुमिरन में व्यक्ति भीतर के संसार में रहता है। बाहर की जाग, बाहर का होश या बाहर की चेतना ही अहं है। भीतर की जागरणा, अपने स्वरूप में स्थित होना सुमिरन है। मैं का विलय होते ही

साधक को सच्चिदानन्द आत्मतत्व के स्व-स्वरूप का बोध होने लगता है।" (पृष्ठ ४१)।

संसार असार है उससे जीव बेखबर है, और सांसारिक नाना सपनों में अपना जीवन गँवा रहा है। वह सत्य से अनजान है और असत् के समीप है। साध्वीरत्ना संसार की इसी असारता का बोध कराती हैं—"संसारी जीव की यह विचित्र स्थिति है कि जो सच है, उसे वह देख नहीं पाता और जो निराधार झूठ है, उसे ही सच मानकर कभी हँसता है तो कभी रोता है। सपने में भी तो लोग हँसते-रोते हैं। पर जागने पर सपना कहाँ रह पाता है? नहीं रहता। सपने को याद करके हँसी भी आती है कि किस जंजाल में फँस गए थे। क्या संसार सपना नहीं है? है। पर जब तक हम जागेंगे नहीं, संसार को सच मानकर हँसेंगे, रोयेंगे।" (पृष्ठ १८२)। इतना ही नहीं महाबल और मलया धीरोदात्त चरित्र के माध्यम से साध्वीरत्ना ने प्राचीनतम भारत की योगविद्या के चमत्कारों की प्रत्यक्ष अनुभूति कराते हुए अतिमानवीय शक्तियों का मानवीय धरातल पर परोपकार, परकष्ट-निवारण तथा अबला संरक्षण, असहाय-सहायता, दुष्टजन-सज्जन आदि विविध मानवतावादी पक्षों को उजागर किया है। साथ ही उपन्यास में यह दर्शाया गया है कि जिसका आत्मबल अपराजेय होता है, परोपकार, न्याय-रक्षा एवं अन्याय का प्रतिकार करना ही जिसका जीवन-लक्ष्य होता है उसके लिए ही सभी दैविक शक्तियाँ सहायक बनती हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में कहीं हास्यरस, कहीं वीर रस, कहीं अद्‌भुत और शांत रस के उतार-चढ़ाव तथा बहुरंगी छटा के अभिदर्शन होते हैं। वीर एवं अद्‌भुत रसों से पाठक अनुरंजित होता है और अन्त में शान्तरस के परिपाक से पूर्णता को प्राप्त होता है। प्रस्तुत उपन्यास की भाषा में प्रवाह-मयता, सरलता और रोचकता समाविष्ट है। सीख देते समय की भाषा में बोझिलता नहीं आने पाई है। मुहावरे, लोकोक्तियों और सूक्तियों से भाषा में चार चाँद लगे हैं।

भाषा का अस्खलित प्रवाह, सरस रोचक शैली और उदात्त चरित्र चित्रण से हिन्दी के श्रेष्ठ पौराणिक उपन्यासों में साध्वीरत्ना द्वारा प्रणीत 'कंचन और कसौटी' उपन्यास का स्थान महनीय कहा जाएगा। कथा के अनुरागी-पाठी व्यक्तियों के लिए यह उपन्यास एक सुपाच्य मानसिक भोज्य है। निश्चय ही यह उपन्यास सराहा जाएगा। बधाई। शुभम्!! 卐

१

"ताड़का ! अरी कहाँ चली गई ?"

"महारानी जी ! मेरा नाम ताड़का नहीं, तारिका है। आप भूल क्यों जाती हैं ?"

"जब तू सुनती ही नहीं, बहरी बन जाती है तब तू ताड़का कहने से ही बोलती है।" महारानी अनंगवती ने अपनी दासी तारिका से कहा—"मेरे पास बैठ जा। मैं तुझे तारिका कहूँ या ताड़का, पर मैंने तुझे अपनी दासी कभी नहीं माना। तू तो मेरे सुख-दुःख की साथिन है। तू ही सोच, पीहर से मैं तुझे अपने साथ क्यों लाई थी ? बता मैं क्या करूँ तारिका !"

"आज भी महाराज बड़ी रानी सौदामिनी के शयनखण्ड में जायेंगे।" तारिका बताने लगी—"सौदामिनी आप से ज्यादा सुन्दर भी नहीं है। बांझ तो है ही। फिर जानें महाराज उस पर क्यों रीझे हैं ? उन्हें यदि बड़ी रानी से ही इतना प्यार था तो आप के साथ विवाह क्यों किया ?"

"विवाह तो युवराज के लिए किया था तारिका !" रानी अनंगवती बोली—"सौदामिनी के दस साल में भी कोई संतान न हुई तो यह दूसरा विवाह मुझसे किया, जिससे उन्हें राज्य का उत्तराधिकारी युवराज मिल जाए।"

"अंत में जीत तो आपकी ही होगी महारानी !" दासी बोली—"कभी-न-कभी आपके पुत्र होगा। आप युवराज की माता बनेंगी और तब राजा आपके वश में होंगे। फिर आप चाहें तो अपनी सौत सौदामिनी को दासी बना सकती हैं। अब तो धीरज ही आपका सहारा है। जब तक आप माँ न बनें, तब तक धीरज ही काम आयेगा। कहते भी तो हैं कि आपद काल में धीरज और धर्म ही काम आते हैं।"

"धर्म गया भाड़ में। तभी तो मैं तुझे ताड़का कहती हूँ।" छोटी रानी अनंगवती कुछ उत्तेजित हो गई—"जब महाराज मेरे खण्ड में ही नहीं आयेंगे तो मैं माँ कैसे बनूँगी ? फिर धीरज क्या मुझे युवराज की जननी बना देगा ? तू हमेशा हवा में भीत खड़ी करती है। कोई ढंग की बात कर।"

"एक काम आप अभी करें महारानी !" तारिका बोली—"यह बात परसों से मेरे मन में थी। आप पहले अपना अर्द्धांग अधिकार तो महाराज से ले लें। राज-

सिंहासन के पार्श्वपीठ में बड़ी महारानी सौदामिनी बैठती है। अब सिंहासन पर दोनों रानियाँ बैठेंगी। मैं कल प्रातः ही महाराज को आपके खण्ड में लाऊँगी। आप उनसे किसी युक्ति से वचन लेकर सिंहासन पर बैठने का अधिकार ले लीजिए। तब पहले राजमहल में फिर चन्द्रावती नगरी में आपका दबदबा बढ़ेगा। आप निराश न हों, अभी आपके ब्याह को तीन ही महीने तो हुए हैं। देखना, एक दिन राज्य में आपकी ही तूती बोलेगी।"

"अब तू सचमुच तारिका है।" अनंगवती प्रसन्न होते हुए बोली—"तेरा सहारा पाकर मैं राज्य को भी पलट सकती हूँ। जा, अब थोड़ी-सी मैरेय ले आ।"

"मैरेय-पान में आपको सावधानी बरतनी पड़ेगी।" तारिका बोली—"आप नहीं जानतीं कि महाराज वीरधवल मदिरा से बहुत घृणा करते हैं। उन्हें पता चल गया तो वे कभी आपके पास नहीं आयेंगे।"

"यह सब मैं जानती हूँ तारिका!" अनंगवती बोली—"पर अब तो ला।"

× × ×

पृथ्वीस्थानपुर, कुशस्थल, धौलपुरी, चंपापुरी, चन्द्रावती नगरी, वंग, अंग, पांचाल आदि अनेक छोटे-बड़े राज्यों के राजा अपनी-अपनी प्रजा के प्रजेश बनकर राज्य कर रहे थे। कुछ राजे श्रमणधर्म और श्रमण संस्कृति के उपासक थे तो कुछ वैदिक मान्यता के। राजाओं में आपस में प्रीति-भरे सम्बन्ध भी थे तो वैर-विरोध—अनबन भी थी। प्रायः राजा बहुदाराभोगी होते थे। कई विवाह एक राजा के लिए साधारण बात थी। पर कुछ राजे एक पत्नीव्रती भी थे।

चन्द्रावती नगरी के राजा वीरधवल और पृथ्वीस्थानपुर के राजा सुरपाल के राज्य में पचास कोस की दूरी थी। यह दूरी उन दिनों बहुत बड़ी दूरी मानी जाती थी। दो राज्यों को प्रायः वन प्रदेश ही अलग-थलग करते थे। चन्द्रावती नगरी और पृथ्वीस्थानपुर के बीच काफी विस्तृत वन-प्रदेश था। इन दोनों राज्यों को गोला नदी ने भी आपस में निकट ला दिया था। चन्द्रावती नगरी गोला नदी के बाएँ तट पर बसी थी। जंगलों में होती हुई यह नदी पृथ्वीस्थानपुर को छोड़ती हुई उसी राज्य के अन्य नगरों के निकट से बहती थी। यों इस नदी का दो राज्यों से सम्बन्ध था।

पृथ्वीस्थानपुर के राजा सुरपाल और चन्द्रावती नगरी के राजा वीरधवल की पहली भेंट वसंतपुर के स्वयंवर में हुई थी और दूसरी गोलानदी के तटवर्ती वन में। दूसरी भेंट में ही दोनों मित्र बन पाये थे। पहली भेंट में तो परिचय मात्र ही हो पाया था।

वसंतपुर के राजा अजितसेन ने अपनी पुत्री पद्मावती के स्वयंवर की रचना की। बड़ी-बड़ी दूर के राजा और राजपुत्र इस स्वयंवर में आये। चन्द्रावती नगरी के

राजा वीरधवल केवल राजा थे और पृथ्वीस्थानपुर के राजा सुरपाल राजा के साथ राजपुत्र भी थे। जो राजा होगा, वह राजपुत्र तो होगा ही, फिर सुरपाल राजपुत्र क्यों थे, वीरधवल क्यों नहीं? बात यह है कि जिसका पिता जीवित हो, वह राजा होते हुए राजपुत्र भी होता है। सुरपाल के पिता नरपाल ने दो वर्ष पूर्व ही अपने पुत्र सुरपाल को पृथ्वीस्थानपुर के प्रभुतासन पर आसीन किया था। इन दिनों वे रानी कमलश्री के साथ पौषधशाला में धर्माराधन करते थे। दूसरी बात यह थी कि राजा सुरपाल अभी अविवाहित थे। यह दूसरी बात इतनी महत्वपूर्ण थी कि राजपुत्री पद्मावती ने बड़े-बड़े सुन्दर, रूपवान और तेजस्वी राजाओं को छोड़कर सुरपाल की ग्रीवा में ही वरमाला डाली थी।

वीरधवल यद्यपि सुन्दर, स्वस्थ, गोरे, चिट्टे, उठाऊ देह के बलिष्ठ युवा राजा थे। उनका राज्य भी सम्पन्न और समृद्ध था। पर उनका एक विवाह हो चुका था—सौदामिनी के साथ। पद्मावती से दूसरा विवाह करने वे उसके स्वयंवर में वसंतपुर आये थे। स्वयंवर सभा में एक-एक करके प्रत्येक राजा का परिचय दिया जा रहा था। राजकुमारी पद्मावती ने सुरपाल का परिचय सुनकर मन में विचार किया—'लकड़हारे की पत्नी को यदि पति का प्यार मिले तो वह भी रानी होती है। राजाओं के बहुरानियाँ होती हैं। उनका प्यार रानियों में बँट जाता है। ये अभी अविवाहित हैं। यदि मेरे बाद दूसरा विवाह कर भी लेंगे तो पट्टमहिषी तो मैं ही बनूँगी।' यही सोचकर पद्मावती ने सुरपाल का वरण किया था।

राजा सुरपाल और राजा वीरधवल दोनों एक ही शिविर में ठहरे थे। तब बातों-ही-बातों में राजा सुरपाल ने कहा—

"यहाँ मेरा आना सफल हो गया। विवाह की दृष्टि से स्वयंवर में मैं पहली और अंतिम बार आया हूँ।"

"भाग्य को चुनौती कोई नहीं दे सकता राजन्!" राजा वीरधवल बोले—"सौदामिनी के साथ विवाह करने के बाद मैं भी दूसरी बार स्वयंवर में जाना नहीं चाहता था। पर आना पड़ा। यहाँ सफल नहीं हुआ। लगता है, जब तक सफलता नहीं मिलेगी तीसरी, चौथी बार भी किसी-न-किसी स्वयंवर में जाना पड़ेगा।"

"हाँ भाग्य को चुनौती कोई नहीं दे सकता।" राजा सुरपाल बोले—"मैंने तो अपने मन की बात कही है। मेरे मन में यही है कि चाहे कुछ भी हो जाए मैं दूसरा विवाह नहीं करूँगा।"

इस पर वीरधवल बोले—

"मेरी रानी सौदामिनी ने मुझसे वचन ले लिया कि 'मेरी एक इच्छा पूरी कर दो। जब मैं वचन दे बैठा तो बोली, मेरे लिए सौत ला दो। कहते-कहते वे

खिलखिला कर हंसी—मेरे लिए नहीं, राज्य के लिए राजमाता लानी होगी। युवराज के बिना सब सूना है स्वामी ! बस, मैं वचन हार गया।"

"आपकी बात तो बिल्कुल दूसरी है राजन् !" राजा सुरपाल बोले—"उन राजाओं को आप क्या कहेंगे जो पुत्रवान होकर भी दस-दस विवाह करते हैं।"

"यह सब ऐश्वर्य का दंभ है राजन् !" वीरधवल ने कहा।

यों इस स्वयंवर में चन्द्रावती के राजा वीरधवल और पृथ्वीस्थानपुर के राजा सुरपाल काफी निकट आ गए थे। पद्मावती को ब्याह कर सुरपाल अपने नगर को चले गये। शेष राजा निराश और रीते मन लेकर अपने-अपने राज्यों को वापस गए थे। उन्हीं में से एक वीरधवल भी थे।

× × ×

वीरधवल के विवाह को तीन वर्ष बीत चुके थे। राजा-रानी में अनिंद्य प्रीति थी। राज-सिंहासन के अर्धांग में गढ़े पार्श्वपीठ में राजा के साथ रानी सौदामिनी भी बैठती थी तो ऐसा लगता था मानो इन्द्रासन पर देवराज इन्द्र और शची विराजमान हैं। लम्बी छरहरी देहयष्टि वाली रानी सौदामिनी का रंग गोरा था। उनके मुख पर सतीत्व का तेज दमकता था। वे सुन्दर तो थीं ही, आकर्षक भी थीं। दया-धर्म उनमें कूट-कूटकर भरा था। कभी वे अपनी दासियों से भी कठोर वचन नहीं बोलती थीं। माधवी उनकी मुख्य परिचारिका थी, जो हर समय प्रायः उनके साथ रहती थी।

राजा वीरधवल भी अपनी रानी को बहुत चाहते थे। एक दिन राजा वीरधवल रानी के शयनखण्ड में लेटे थे और रानी उनके चरण चाँप रही थी। राजा बोले—

"एक बात कहूँ ?"

"एक क्यों दो-चार कहो।" रानी ने उत्तर दिया—"आप रातभर बातें करते रहें तो भी मेरा मन नहीं भरेगा।"

"हमारी बहुत रातें बातों में ही तो बीती हैं।" राजा बोले—"आज तो एक ही बात पूछूंगा।"

"ऐसा कैसे हो पावेगा ?" रानी सौदामिनी ने कहा—"बात में से बात निकलेगी तो बहुत बातें हो जायेंगी।"

राजा वीरधवल तकिया के सहारे अधलेटे हो गए और बोले—

"आखिर तुम मेरे पैर क्यों दबाती हो ? मैं बूढ़ा नहीं। किसी अंग में पीड़ा भी नहीं है।"

"यह भी कोई बात हुई ?" रानी बोली—"यह तो पत्नी का कर्त्तव्य है कि वह अपने पति की सेवा करे।"

"सेवा तो करे।" राजा बोले—"लेकिन तभी करे, जब पति को सेवा की जरूरत हो। हर कर्त्तव्य के पीछे कोई न कोई विचार अवश्य होता है। पैर दबाने के तुम्हारे कर्त्तव्य के पीछे कौन-सा विचार है?"

"फल की आशा।" कहकर रानी मुस्कराई—"हर नारी माँ बनने के लिए पत्नी बनती है और संतान-फल के लिए ही पति की सेवा करती है। माँ बनने के लिए नारी स्वर्ग का राज्य भी छोड़ सकती है।"

"हमारे विवाह को तीन ही वर्ष तो हुए हैं।" राजा वीरधवल बोले—"अभी से तुम्हें निराश नहीं होना चाहिए।"

"मैं तीस वर्ष में भी माँ नहीं बन सकती।" रानी बोली—"जब माँ बनना ही नहीं है तो आशा किस बात की ?"

"यह तुम किस आधार पर कह रही हो कि तुम माँ नहीं बनोगी ?" राजा ने पूछा—"किसने कहा तुमसे ?"

"मेरे हाथ में ऐसी रेखा है कि मुझे सौत मिलेगी। सौत मिलने का केवल एक ही कारण है कि मैं माँ नहीं बन सकती। वैसे तो आप दूसरा विवाह करेंगे ही क्यों ?"

"दूसरा विवाह तो मुझे करना ही नहीं है।" राजा बोले—"पुरुषार्थी हाथ की रेखाएँ भी मिटा देते हैं। यदि तुम्हारे कभी भी संतान न हो तो भी मैं दूसरा विवाह नहीं करूँगा। फिर मैं निराश नहीं हूँ। बहुत से दम्पती विवाह के दस और पन्द्रह वर्ष बाद भी सन्तान का मुँह देखते हैं।"

राजा का आश्वासन पाकर रानी प्रसन्न हो गई। पुलक में भरकर उसने राजा के वक्ष पर मुँह छिपा लिया और राजा उसकी पीठ पर हाथ फेरते रहे। फिर कुछ देर बाद बोले—

"अरे तुम रोती हो ! रोओ मत प्रिये ! मेरा मन कहता है तुम माँ बनोगी।"

"ये तो खुशी के आँसू हैं स्वामी !" रानी सौदामिनी ने अंचल से आँसू पोंछते हुए कहा—"मैं कभी न बनूँ माँ, बस, आपका प्यार मुझे मिलता रहे। आप-जैसा पति पाकर कौन नारी धन्य नहीं हो जाएगी ?" □

२

एक-एक करके राजा वीरधवल के विवाह को दस वर्ष हो गये । पर उनके कोई संतान नहीं हुई । अब न केवल रानी सौदामिनी, बल्कि राजा वीरधवल भी संतान के लिए चिंतित रहने लगे । वात्सल्य मनोवृत्ति का जब भी वेग प्रबल होता, रानी रोने लगती । उसने राजा से बहुत बार आग्रह किया कि वे दूसरा विवाह कर लें । पर वे राजी नहीं होते । एक बार रानी सौदामिनी ने जोर देकर कहा—

"स्वामी ! नारी को स्वर्ग का राज्य भी मिल जाए, पर उसे उसका नारीत्व नहीं मिले तो उसका जीवन गंधरहित पुष्प के समान व्यर्थ है ।"

"यह बात नहीं ।" राजा वीरधवल बोले—"पत्नी को उसके पति का पतित्व न मिले तो उसका जीवन व्यर्थ होता है । तुम्हें तुम्हारे पति का, अर्थात् मेरा प्यार मिला है । अब चाहे संतान हो या न हो ।"

"पति का प्यार ही तो पत्नी का पतित्व नहीं होता ।" रानी बोली—"जो पति पत्नी को संतान रूपी पति प्रसाद न दे सके, वह कैसे कह सकता है कि वह पत्नी को पतित्व दे रहा है ?"

"यही बात मैं तुमसे कहूँ तो ?" राजा बोले—"तुमने ही मुझे अपना पत्नीत्व कब दिया है ? संतान देना तो तुम्हारा कर्तव्य है ।"

"हूँ ।" रानी बोली—"मैं मानती हूँ कि संतान देना नारी का कार्य है । पर मेरी तो यह विवशता है कि मैं राज्य के लिए उसका उत्तराधिकारी—एक राजपुत्र—एक युवराज नहीं दे सकी ।

"स्वामी ! मुझे पुत्र नहीं चाहिये । आपको भी पुत्र नहीं चाहिए, पर प्रजा को तो अपना भावी शासक—युवराज चाहिए । पति के नाते न सही, पर राजा के नाते क्या आपका यह कर्तव्य नहीं है कि आप अपनी प्रजा को युवराज दें ?"

युवराज की बात आते ही राजा वीरधवल सोच में पड़ गए फिर कुछ सोच कर बोले—

"विवशता के सामने सभी हारे हैं । संतान न देना जैसे तुम्हारी विवशता है, वैसे ही मेरी भी है । तुमने अभी कहा था कि मेरी तो यह विवशता है । तो मैं ही क्या कर सकता हूँ ?"

"आप कर सकते हैं, तभी तो मैं आपसे कह रही हूँ।" रानी बोली—"स्त्री रानी हो या दासी, उसके लिए पर-पुरुष का चिंतन भी पाप है—महापाप है। किन्तु पुरुष यदि राजा है तो वह एक से अधिक—अनेक विवाह कर सकता है। युवराज की प्राप्ति के लिए आप दूसरा विवाह कर लीजिए। नई रानी के पुत्र को मैं अपना ही पुत्र मानूंगी। विमाता ही सही, फिर भी माता तो हो ही जाऊँगी।"

"प्रिये!" राजा वीरधवल बोले -"मैं पुरुष पहले हूँ, राजा बाद में। राजा के नाते मेरा प्रजा के प्रति यह कर्त्तव्य है कि उसे मैं राज्य का सुयोग्य उत्तराधिकारी दूं तो पुरुष के नाते यह मेरा पहला कर्त्तव्य है कि मैं अपनी पत्नी को सपत्नी—सौत न दूँ।

"प्रिये! विवाह का प्रयोजन संतान-प्राप्ति गौण प्रयोजन है, मुख्य नहीं। विवाह का मुख्य उद्देश्य सुखद साहचर्य और सहजीवन की मधुरता है। विवाह भोग के लिए नहीं होता, बल्कि भोग को संयमित करने के लिए होता है। विवाह तो धीरे-धीरे काम को जीतने—जितेन्द्रिय बनने के लिए किया जाता है।

"प्रिये! अब रही राजा के कर्त्तव्य की बात। उसके लिए मैं कोई बालक गोद ले लूँगा, पर दूसरा विवाह नहीं करूँगा।"

रानी सौदामिनी आगे कुछ नहीं कह पाई। राजा उठकर टहलने लगे और रानी सोचने लगी—'मेरे स्वामी मेरे सुख के लिए दूसरा विवाह नहीं करना चाहते। पर मेरा भी तो कुछ कर्त्तव्य है? मैं भी पति के सुख के लिए कुछ करूँ। गोद लेने से क्या बनेगा? अपने अंश का पुत्र ही युवराज बने, यह क्या इन्हें अच्छा नहीं लगेगा? ये यदि मेरे सुख के लिए दूसरा विवाह नहीं करते तो मैं इनके सुख के लिए इनका दूसरा विवाह करवाकर ही रहूँगी।'

× × ×

रानी सौदामिनी शय्या पर लेटे राजा वीरधवल के चरण चाँप रही थी। लेटे-लेटे राजा को हँसी आ गई। राजा को हँसते देख रानी ने पूछा—

"क्या सोच रहे हो? किस बात पर हँसी आ गई?"

"सोच रहा हूँ कि नारी भी एक पहेली है। एक नारी तुम भी हो और एक नारी वंदना भी है। वंदना अब तो मेरे लिए एक पहेली बन गई है।"

"क्या किया वन्दना ने?" रानी ने पूछा—"वंदना कौन है?"

राजा शय्या पर उठकर बैठ गए और बोले—

"नारी के मन की बात नारी ही जान सकती है। मैं तुम्हें पूरी बात बताता हूँ कि वंदना कौन है और उसने क्या किया है।

"प्रिये ! हमारे न्यायाधिकरण में एक विचित्र वाद आया है, वंदना और श्याम का। श्याम और वंदना पति-पत्नी हैं। श्याम अपनी पत्नी वंदना को घर में रखना नहीं चाहता। यद्यपि वंदना चरित्रवती महिला है। उसने कोई दुष्कर्म नहीं किया। फिर भी श्याम यह सिद्ध करना चाहता है वंदना दोषी है। दूसरी ओर वंदना यह सिद्ध करने पर तुल गई है कि उसका पति श्यामसिंह ही दोषी है और निर्दोष पत्नी को निकालकर वही एक अपराध कर रहा है।

"प्रिये ! लो, मैं अब तुम्हें पूरी बात सुनाता हूँ !"

× × ×

अर्चना और वंदना दोनों सगी बहनें हैं। अर्चना वंदना से बड़ी है। उसका विवाह कालकेतु नामक एक धनी श्रेष्ठी से हुआ। अर्चना ने अपनी छोटी बहन वंदना को भी अपने पास बुला लिया। दोनों बहनों में इतना प्रेम था कि एक दूसरी के बिना रह नहीं सकती थी। वन्दना अर्चना की बहन तो थी ही, बेटी भी थी। वह अर्चना से बहुत छोटी थी। वंदना का बहनोई कालकेतु भी उसको पिता का प्यार देता था।

कालकेतु और अर्चना ने ही वंदना का विवाह श्यामसिंह नामक एक युवक से कर दिया और उसे अपने ही व्यापारिक संस्थान में काम पर लगा दिया। श्यामसिंह अपनी पत्नी वंदना को लेकर कालकेतु के घर के पास ही घर लेकर रहने लगा। वह अपनी पत्नी वंदना को अत्यधिक प्यार करता था।

एक दिन श्यामसिंह ने किसी बात पर वंदना के एक चाँटा मार दिया। वह रोने लगी। उसके रोने की आवाज सुनकर कालकेतु और अर्चना आ गए। कालकेतु ने श्यामसिंह से तो कुछ नहीं कहा, वंदना से ही उसने कहा---

"वंदना ! मैं तुम्हारा बहनोई ही नहीं, पिता भी हूँ। मैंने ही तुम्हारा विवाह किया है। तुम्हारे जीवन को सुखी बनाने की मेरी जिम्मेदारी है। अतः मैं तुमसे कहता हूँ कि श्यामसिंह को छोड़कर हमारे साथ चलो। तुम समझना कि तुम्हारा विवाह इतने दिन के लिए ही हुआ था।"

बस, फिर वंदना अपनी बहन अर्चना और बहनोई कालकेतु के साथ उनके घर चली गई। श्यामसिंह अकेला उदास बैठा रहा। उसे कालकेतु ने अपने संस्थान से निकाल भी दिया। पत्नीविहीन तो वह हुआ ही, जीविकाविहीन भी हो गया। वंदना के बिना वह रह नहीं सका। रात को वह अपने साढ़ू कालकेतु के पास पहुंचा और बोला—

"आपने यह कहा था कि तुम पति-पत्नी के बीच में मैं कभी कुछ नहीं बोलूँगा। आपने यह भी कहा था कि जब तक तुम हमारे पड़ोस में रहते हो और

हमारे संस्थान में काम करते हो, तभी तक हम कहते हैं कि अपनी पत्नी को मारा-पीटा मत करो। जब तुम हमारी नौकरी छोड़ दोगे, तब हम कुछ नहीं बोलेंगे। तुम अपनी पत्नी को मारो या पीटो, हमें कोई मतलब नहीं रहेगा।

"कालकेतु जी! आप मेरी पत्नी वंदना को ले आये पर मुझसे तो पूछा होता। आप मुझसे पूछे बिना क्यों ले आये? चलते समय वंदना ने भी मुझसे नहीं कहा कि मैं जा रही हूँ। मैंने वंदना को मारा तो इसका कुछ कारण भी तो रहा होगा। आपने कारण भी नहीं पूछा और यह भी नहीं समझा कि पति का भी कुछ अधिकार पत्नी पर होता है।"

कालकेतु सुनता रहा। फिर बोला श्यामसिंह से—

"मैं तुम्हारी किसी बात का उत्तर नहीं दूँगा। यहाँ से चले जाओ।"

कालकेतु के इस व्यवहार को श्यामसिंह सहन नहीं कर सका। उसने पास-पड़ोस के काफी व्यक्ति इकट्ठे कर लिये और कालकेतु से झगड़ा करके अपनी पत्नी वंदना को लेकर किसी दूसरे नगर में चला गया। अब कालकेतु और श्यामसिंह में हमेशा के लिए अनबन हो गई। अर्चना ने सोचा कि श्यामसिंह ने बरतों के आदमी जोड़कर मेरे पति का भारी अपमान किया है, अतः इससे हम कभी सम्बन्ध नहीं रखेंगे। लेकिन प्यारी बहन वंदना छूट जाएगी। लेकिन पति के स्वाभिमान की रक्षा के लिए मैं वंदना से मिले बिना भी रहूँगी।"

उधर श्यामसिंह ने अपनी पत्नी वंदना से कहा—

"तुम्हारे बहनोई कालकेतु ने मेरे किसी प्रश्न का जवाब नहीं दिया। उसने मुझे कुछ समझा ही नहीं। मेरी उपेक्षा करके वह तुम्हें ले गया। उस पर भी मेरी जीविका छीन ली। अब वह मेरा शत्रु है। तुम कभी अब अपनी बहन अर्चना के पास नहीं जाओगी। जब वह तुमसे मिलने के लिए मेरे घर आना नहीं चाहती तो तुम ही क्यों उसके घर जाओ। वह अपने पति के सम्मान की रक्षा करे और तुम अपने पति की करो।"

"आपकी बात तो ठीक है।" वंदना बोली—"लेकिन मैं अपने बहनोई कालकेतु का बहुत आदर करती हूँ। वे मेरी भलाई के लिए ही मुझे अपने घर ले गए थे। गलती आपकी ही है, जो उनसे झगड़ा करके मुझे ले आये। जिस बहन ने मुझे बेटी की तरह पाला और मेरा विवाह किया, मैं उसे कैसे भूल सकती हूँ?"

"बहन को कभी मत भूलो।" श्यामसिंह बोला—"पर बहनोई को भूल जाओ।"

इसके बाद पन्द्रह वर्ष बीत गए। न अर्चना वंदना के घर आई और न वंदना अर्चना के घर गई। अर्चना का पति कालकेतु किसी कीमत पर वंदना के पति से

सम्बन्ध रखना नहीं चाहता था और उससे सम्बन्ध रखे बिना अर्चना वंदना से मिले कैसे ? अर्चना अपने पति की हठ को रखना चाहती थी। दूसरी ओर वंदना अपने पति के भय के कारण अपनी बहन के घर आने की बात नहीं चलाती थी।

एक दिन श्यामसिंह ने सोचा कि मेरे वैर-विरोध के कारण वंदना अपनी प्यारी बहन से न मिले, यह अच्छी बात नहीं। कालकेतु नहीं झुकता तो न सही, मुझे ही अपनी पत्नी की इच्छा के लिए झुक जाना चाहिए। यह सोच श्यामसिंह ने कालकेतु को एक पत्र लिखा और क्षमा माँगी कि मैं आपसे छोटा हूँ। अतः मेरे अपराध क्षमा कर दो। लेकिन कालकेतु ने श्यामसिंह को क्षमा नहीं किया।

एक बार कालकेतु का सार्थ उस नगर में पहुंचा जहाँ श्यामसिंह अपनी पत्नी वंदना के साथ रहता था। कालकेतु के साथ उसकी पत्नी अर्चना भी थी। अर्चना ने अपने पति से कहा—

"वंदना इसी नगर में रहती है। उससे मिले बिना मुझे पन्द्रह वर्ष हो गए। मैं उससे मिलना चाहती हूँ।"

"मिल लो। वंदना से हमारी कोई लड़ाई नहीं है।" कालकेतु ने कहा—"हमारी लड़ाई तो श्यामसिंह से है।"

"मैं ऐसी युक्ति निकालूँगी कि श्यामसिंह से सम्बन्ध रखे बिना मैं अपनी बहन से मिल लूँगी।"

अर्चना ने अपना एक विश्वस्त चर वंदना के पास भेजा। वह वंदना को अर्चना के पास ले आया। दोनों बहनें आपस में मिलीं। वंदना को इस बात की प्रसन्नता हुई कि मेरे पति को पता भी नहीं चला और मैं अपनी बहन से मिल भी ली।

बात तो कभी-न-कभी खुल ही जाती है। श्यामसिंह को पता चला तो उसने अपनी पत्नी वंदना को मारा-पीटा और कहा कि मैं तुझे घर में नहीं रखूँगा। इस पर वंदना ने कहा—

"बहन से बहन मिल ले, इसमें पाप क्या है ? अपराध भी कुछ नहीं है। जिस बहन ने मुझे बेटी की तरह पाला, ब्याह किया, उससे मिलने मैं क्यों न जाती ? मेरी कोई गलती नहीं है।"

"बहन से मिलने को मैं गलत कब कहता हूँ ?" श्यामसिंह बोला—"अब कालकेतु की पत्नी मुझसे कोई सम्बन्ध रखना नहीं चाहती तो मेरी पत्नी ही कालकेतु से सम्बन्ध रखकर कालकेतु की पत्नी से क्यों मिली ?"

"मैंने कालकेतु से क्या सम्बन्ध रखा ? मैंने तो अपनी बहन से ही सम्बन्ध

रखा। बहन के पास वह भी बैठा था तो उसे देखना तो पड़ता ही। नमस्ते भी करनी पड़ती, सो नमस्ते कर ली।"

"अर्चना अपने पति की जानकारी में तुम से मिली।" श्यामसिंह ने कहा—"तुम अपने पति से छिपकर मुझे बताये बिना क्यों मिली?"

"इसलिए कि तुम मिलने नहीं देते।" वंदना बोली—"अर्चना ने अपने पति से पूछा तो उसने अनुमति दे दी। तुम अनुमति देते नहीं, इसलिए मैंने तुमसे पूछा नहीं।"

"यह तुमने कैसे सोच लिया कि मैं अनुमति नहीं देता।" श्यामसिंह बोला "पन्द्रह वर्ष पहले मैंने कालकेतु को पत्र लिखकर क्षमा माँगी थी। तुम सोचती कि जो पति मेरे बहनोई से क्षमा माँगता है, वह मुझे उससे मिलने की अनुमति क्यों न देगा।"

"ऐसा मैं इसलिए नहीं सोच पाई कि मुझे पत्र वाली बात याद ही नहीं रही।" वंदना बोली—"मुझे तो यह याद था कि आपको मेरा कालकेतु के घर जाकर बहन से मिलना बुरा लगेगा। इसीलिए मैंने आपसे छिपाया। मैं अपनी कोई गलती नहीं मानती।"

× × ×

राजा वीरबाहु ने रानी सौदामिनी से कहा—

"मुझे तो लगता है कि वंदना का ऐसा दोष नहीं है कि श्यामसिंह उसे घर में न रखे।"

"वंदना का दोष तो बहुत बड़ा दोष है।" रानी ने कहा—"दरअसल वंदना बहुत चतुर नारी है। वह कुतर्कों से अपने को निर्दोष सिद्ध करना चाहती है। अर्चना ने अपने पति कालकेतु की बात को अपनी बात समझा और वंदना ने बहन की बात को तो अपनी बात समझा, पर पति से जुड़ी न रह सकी।

"स्वामी! जैसे भी होता, वंदना अपने पति को राजी करके ही बहन से मिलती। उसे यह सोचना ही नहीं चाहिए था कि मेरा पति मुझे बहन से मिलने की अनुमति नहीं देगा। उसे तो यही सोचना चाहिए कि मैं अपने पति से अनुमति लेकर ही रहूँगी। यदि वह यह सोचती तो उसे अनुमति निश्चित ही मिल जाती। लेकिन वह तो पति को उपेक्षित करके बहन-बहनोई की प्रतिष्ठा रखकर उनसे मिलना चाहती थी।

"स्वामी! जो स्त्री पति के हृदय को नहीं जीतती, जिसमें समर्पण नहीं होता, वह अपने तर्कों से पति को नीचा तो दिखा सकती है, पर पति का प्यार नहीं पा

सकती। पति को समाज में दोषी सिद्ध करने का प्रयत्न करने वाली स्त्री जय-पराजय के चक्रव्यूह को तोड़ने में ही जीवन भर लगी रहती है। पत्नी को यह प्रयास ही नहीं करना चाहिए कि मैं निर्दोष सिद्ध हो जाऊँ और पति दोषी सिद्ध हो जाए।

"स्वामी! वंदना के तर्क सुनकर पता चलता है कि वह निर्दोष बनकर रहना चाहती है। यदि वह पछताने की स्थिति प्राप्त कर लेती तो इतना तर्क ही नहीं करती, जितना कि किया। जो पछताता है, उसे सब क्षमा कर देते हैं।"

"यदि वंदना का दोष है तो उसका प्रायश्चित्त क्या है?" राजा ने पूछा—"समस्या का समाधान क्या है तुम्हारे पास?"

"वंदना अपनी बहन को राजी करे कि वह उसके पति श्यामसिंह से इस बात की क्षमा माँगे कि मैंने आपकी उपेक्षा करके अपनी बहन को बुलाया यह मेरी गलती है।

"यह काम वंदना का है कि वह अपनी बहन को इसके लिए बाध्य करे। यदि वंदना वास्तव में अपने दोष का अनुभव कर लेगी तो वह ऐसा कर सकती है कि अपनी बहन को राजी कर ले। जिस वंदना ने अपनी बहन के लिए अपने पति की उपेक्षा कर दी वह वंदना अपनी बहन से यह करा सकती है कि मैंने तेरे लिए अपने पति की उपेक्षा कर दी तो तू मेरे लिए— मेरे सुखी जीवन के लिए इतना तो कर कि मेरे पति से एक बार मिल ले। मेरे पति से शत्रुता रखकर तू मुझसे प्रेम करती रही और मैंने तेरे इस निन्दनीय प्रेम का भी निर्वाह किया तो तू मेरे लिए कुछ भी नहीं करेगी?

"स्वामी! ऐसा करने में यदि वंदना ने कोई भी बहाना किया तो समझें, वह अब भी पति की उपेक्षा कर रही है। कोई भी स्त्री पर-पुरुष से प्रेम करके ही दोषी नहीं होती। अपने पति की उपेक्षा करके भी दोषी बनती है।"

"प्रिये! तुमने समस्या का अच्छा समाधान किया है।" राजा वीरधवल बोले—"मेरा बोझ तुमने उतार दिया। आज मैं तुम्हें मुँहमाँगा कुछ देना चाहता हूँ। बोलो, क्या चाहती हो?"

"आपका भरपूर प्यार चाहिए।" अनी सौदामिनी बोली—"वह मुझे मिल ही रहा है। फिर क्या माँगूँ?"

"कुछ भी माँगो।" राजा वीरधवल बोले—"मनुष्य की इच्छाएँ अनन्त होती हैं। तुम भी अपनी इच्छा की वस्तु माँगो। अगर तुम कुछ न माँगोगी तो मैं समझूँगा कि तुम मुझे प्यार नहीं करती।"

"तो फिर मुकर मत जाना।" रानी बोली—"पहले सोच लीजिए।"

"सोचना कुछ नहीं है।" राजा बोले—"क्षत्रिय का वचन कभी टलता नहीं है। जो माँगोगी, वही मैं दूँगा। वचन देता हूँ।"

"तो फिर मुझे सौत चाहिए।" रानी बोली—"आपके पास वसंतपुर से स्वयंवर का निमंत्रण आया है। वहीं से मेरे लिए सौत लेकर आओ।"

"यह तुमने क्या माँगा रानी!" राजा उदास होकर बोले—"तुमने मेरे एक-पत्नीव्रत का—मेरे प्यार का तिरस्कार किया है। एक बात याद रखना। सौत विष की भी बुरी होती है। तुम्हारा जीवन दुखी हो जाएगा।"

"जीवन वंदना-जैसी नारियों का दुःखी होता है, अर्चना जैसी नारियों का नहीं होता। अर्चना-वंदना—सगी बहनें हैं, पर दोनों के सोच में धरती-आकाश का अन्तर है। मैं अपनी सौत को बहन का प्यार दूँगी।"

राजा सोचता रहा। कुछ नहीं बोला। रानी ही बोली—

"वचन देकर क्षत्रिय सोच नहीं करते। वचन का पालन करते हैं। वसंतपुर की पद्मावती न मिले तो कहीं और जगह देख लाइए। मेरे लिए सौत और अपने लिए युवराज-जननी ले आइए।"

"तुम्हारे हाथ की रेखा अमिट रही।" राजा वीरधवल ने कहा—"भाग्य-प्रेरणा से ही तुमने मेरे वचन का लाभ उठाया। भाग्य-लिखे को कौन मिटा सकता है? दूसरा विवाह तो मैं करूँगा, पर यदि भाग्य में नहीं है तो उसके भी संतान नहीं होगी।"

"संतान भाग्य की बात है।" रानी बोली—"पर उसके लिए उपाय करना अपने हाथ है।"

□

३

जब किसी राजकुमारी का स्वयंवर रचा जाता था तो प्रायः सभी राजाओं के पास निमंत्रण भेजा जाता था। जिन राजाओं के एक से अधिक रानियाँ होती थीं, उन पर भी निमंत्रण जाता था। यह जानते हुए भी कि अविवाहित राजा या राजकुमार को ही राजकुमारी प्राथमिकता देगी, विवाहितों पर भी निमंत्रण भेजने

का कारण यह था कि जिस राजा पर स्वयंवर का निमंत्रण नहीं जाता था, वह बुरा मान जाता था और उसे अपना अपमान मानकर बदला लेने की कोशिश करता था। अतः इस अनावश्यक वैर-विरोध को कम करने के कारण कन्या का पिता सभी पर निमंत्रण भेजता था। यह बात अलग थी कि कुछ राजा स्वेच्छा से ही स्वयंवर में नहीं जाते थे। कुछ राजा विवाह की इच्छा और आवश्यकता न होने पर भी केवल स्वयंवर देखने और दूर-पास से आये राजाओं से मिलने-जुलने के उद्देश्य से जाते थे।

वसंतपुर के राजा अजितसेन ने अपनी पुत्री पद्मावती के स्वयंवर में सभी राजाओं पर निमंत्रण भेजे। राजा वीरधवल पर भी निमंत्रण पहुंचा। अपनी रानी सौदामिनी को वचन देने के कारण वे भी स्वयंवर में पहुंचे, पर पद्मावती ने पृथ्वीस्थानपुर के राजा सुरपाल का वरण किया। राजा वीरधवल चन्द्रावती नगरी लौट आये। अब उन्हें भी इस बात की चिन्ता रहने लगी कि मैं दूसरा विवाह करके अपने वचन को पूरा करूँ। लेकिन जब कोई स्वयंवरा कन्या उनका वरण ही न करे तो वे क्या करें? उन्होंने सौदामिनी रानी से कह भी दिया—

"महारानी! दूसरा विवाह करनेके लिए मैं तैयार तो हूँ, पर यह मेरे हाथ की बात नहीं कि मैं दूसरा विवाह कर लूँ।"

"जब वचन का पालन अपने हाथ की बात न हो तो वचन ही नहीं देना चाहिए।" रानी सौदामिनी ने कहा—"आपने मुझे वचन दिया है और यह भी कहा है कि क्षत्रिय का वचन टलता नहीं है।"

"तो तुम्हारे पति का वचन पूरा हो, यह तुम भी चाहती हो?" राजा बोले—"तो फिर मेरा सहयोग भी करो कि मैं अपने वचन का पालन कर सकूँ।"

"जरूरी नहीं कि आप स्वयंवर में ही किसी राजकन्या का वरण करके लायें।" रानी सौदामिनी ने कहा—"किसी छोटे-मोटे राजा, सामन्त या किसी निर्धन घर की कुलीन क्षत्रिय कन्या को ब्याह लाइए। राजा के घर आकर वही रानी हो जायेगी। यह काम आप कर सकते हैं।"

"हाँ यह ठीक है।" राजा बोले—"मैं किसी भी कुलीन क्षत्रिय कन्या से विवाह आसानी से कर सकता हूँ। राजपुत्री होना जरूरी नहीं।"

× × ×

राजा सुरपाल और रानी पद्मावती में अतिशय प्रीति थी। पद्मावती परम रूपवती, धर्मनिष्ठ और पति-सेवापरायण रानी थी। राजा सुरपाल शूर-वीर बलिष्ट और प्रजावत्सल राजा थे। उनके राज्य में प्रजा सुखी थी। पृथ्वीस्थानपुर के व्यापारी दूर-दूर तक व्यापार करने जाते थे। किसान धरती से सोना उगाते थे।

लेकिन जैसे सुख-दुःख और रात-दिन का जोड़ा है, वैसे ही आतंक, लूट-मार और सुरक्षा का भी जोड़ा है। यदि डाकू न हो तो सुरक्षा व्यवस्था का क्या मूल्य है ?

राजा सुरपाल के राज्य में लोहखुर नामक डाकू ने आतंक फैला दिया था। एक दिन नगर के व्यापारी राजा से आकर कहने लगे—

"पृथ्वीनाथ ! लोहखुर ने तो हमको चौपट कर दिया है। आदमियों को वह गाजर मूली की तरह काट देता है। क्रूर तो वह है ही, धन का भूखा भी इतना है कि उसने अलंबगिरि पर्वत पर सोने-चाँदी और रत्नों के ढेर लगा लिये हैं। हमारे सार्थ तो उसने वन में लूट ही लिये, नगर में आकर भी हमें खोखला कर गया। उस लोभसार से बचाइये।"

"तुम्हारे व्यापार से ही हमारा राज्य उन्नत है। तुम्हारे कर से ही हमारा कोष भरता है। मैं लोभसार का नामोनिशान मिटा दूँगा।"

यह कह राजा सुरपाल ने छोटी-सी सैन्य टुकड़ी लेकर लोहखुर अथवा लोभसार का पीछा किया। उसका पीछा करते-करते वे अलंबगिरि तक पहुँच गए। लोभसार बहुत चालाक डाकू था। वह जान-बूझकर अलंबगिरि तक भागा। वहाँ उसका गुप्त अड्डा था, जिसका पता लगाना अंधेरे में सुई पिरोना था। भागते-भागते राजा सुरपाल ने लोभसार के पाँच साथी मार दिये, पर वह जाने कहाँ छिप गया। राजा के सैनिकों ने पहाड़ की हजारों घाटियाँ छान ली, पर लोहखुर का पता नहीं चला।

उधर से राजा वीरधवल भी लोभसार का पीछा करते हुए वहीं आ गए। लोभसार ने न केवल पृथ्वीस्थानपुर, बल्कि चन्द्रावती नगरी तथा आस-पास के राज्यों के व्यापारियों और उनके सार्थ को भी लूटा था।

वसंतपुर के स्वयंवर के बाद राजा सुरपाल और राजा वीरधवल की यह दूसरी भेंट थी। वीरधवल ने कहा—

"आज हम ऐसे मोड़ पर मिले हैं कि हम दोनों का शत्रु एक है। आज से हम यह मान लें कि हम दोनों के शत्रु-मित्र एक होंगे।"

"इसी बात को मैं दूसरे शब्दों में कहना चाहता था।" सुरपाल बोले—"आज से हम दोनों मित्र हुए। आपका दुःख मेरा दुःख और आपका सुख मेरा सुख होगा।"

"यहाँ की बात यहीं तक सीमित न रहे।" वीरधवल बोले—"यह भी निश्चित करें कि किसी न किसी रूप में वर्ष में एक बार हम आपस में मिला करें।"

"इसका यही रूप रहेगा कि प्रत्येक कार्तिकोत्सव के समय वर्ष में एक बार मैं आपको उपहार भेजकर आपकी मित्रता का और आपका स्मरण किया करूँगा।" राजा सुरपाल ने कहा—"इससे हमारी मित्रता सदा बनी रहेगी।"

"मैं भी यही करूँगा।" वीरधवल बोले--"अब आप मेरे साथ चन्द्रावली नगरी चलने की कृपा करें। कुछ बात ही ऐसी है कि आप इन्कार नहीं कर सकते। हमारी नगरी के निकट ही वन में एक मुनि विराजमान हैं। हम दोनों का सौभाग्य है कि उनकी देशना सुनेंगे।"

"यह तो बहुत सुन्दर संयोग है।" राजा सुरपाल ने कहा --"मुनि-देशना दोनों राज्यों व राजाओं का मंगल करेगी।"

राजा सुरपाल ने केवल आठ अंगरक्षक सैनिक अपने साथ लिये और बाकी पृथ्वीस्थानपुर वापस भेज दिये। राजा वीरधवल के साथ वह चल दिये। दोनों घोड़ों पर सवार होकर चले। चन्द्रावली नगरी बीस कोस दूर रह गई थी। वही वन में सागर मुनि विराजमान थे। पन्द्रह शिष्य-मुनि उनके साथ थे। अन्य कोई श्रोता वहाँ नहीं था। जब राजा वीरधवल लोभसार की खोज में आये थे तो मार्ग में घोड़े से उतर मुनि की दूर से ही भाव-वन्दना कर यह सोचकर चले आये कि लौटकर मुनि की देशना सुनूंगा। लौटते समय राजा सुरपाल भी साथ थे। दोनों राजा घोड़ों से उतरे और विधिवत साष्टांग मुनि की वंदना कर बैठ गए। उन्हें मुनि ने धर्मलाभ कहा और बोले—

"राजाओ! जिस लोभसार डाकू को पकड़ने तुम गए थे, वह तो नकली लोभसार है—बाहर का लोभसार। लोभसार डाकू प्रत्येक जीव के अन्तरंग राज्य में छिपा बैठा है। यह तुम्हारे भीतरी राज्यों के चारित्ररूपी रत्न पर आंखें लगाये है। दया, अहिंसा, मैत्री, मृदुता आदि रत्नों को यह लूट रहा है।

"राजा की राज्यलिप्सा, करलिप्सा, युद्धलिप्सा--यह सब लोभसार का तांडव है। लोभसार के पास बहुत सोना है। रत्नों के ढेर हैं, उसके पास। उसके उस संचित धन में और अलंबगिरि की चट्टानों में क्या कुछ अन्तर है? कुछ भी नहीं। लोभसार का भी पेट भोजन से भरता है, पत्थरों से नहीं। जिस राज्य पर तुम फूले हो, यह तुम्हारी आत्मा की भूख नहीं मिटा सकता। आत्मा की भूख चारित्र से मिटेगी—रत्नत्रय से मिटेगी--धर्म से मिटेगी। राजा हो तो राजा के कर्त्तव्य का पालन मात्र ही करो, जैसे तुम बाहरी राज्य में लोभसार डाकू को नहीं चाहते, वैसे ही अपने अन्तरंग राज्य के लोभ को भी मार दो। राज्य सीमा बढ़ाना, युद्ध करना--राजा का काम नहीं लोभसार को छलना है। धर्म की शरण लो। धर्महीन राजा अजा कण्ठ के स्तनों के समान है। धर्महीन तो इन्द्र भी त्याज्य है।"

मुनि की देशना सुनकर दोनों राजाओं ने श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किये। सुरपाल कुछ दिन राजा वीरधवल के अतिथि बनकर उनके यहां रहे। फिर पृथ्वीस्थानपुर लौट गए।

× × ×

सुरपाल के पिता पूर्व राजा नरपाल का देहान्त हो गया । उन्होंने धर्म का स्मरण करते हुए पौषधशाला में प्राण त्यागे थे । नरपाल की मृत्यु के छह महीने बाद सुरपाल की माता कमलश्री भी परलोक सिधार गई । उन दोनों की मृत्यु का सभी को दुःख था । सुरपाल राजा ने एक दिन रानी पद्मावती से कहा—

"प्रिये ! माता-पिता दोनों ही चले गए । अब मुझे कुँवर, वत्स और बेटा कहने वाले नहीं रहे ।"

"सृष्टि का चक्र इसी तरह चला है और चलेगा ।" रानी पद्मावती बोली—"किसी ने आपको कुँवर कहा तो अब आप भी किसी को कुँवर कहेंगे ।"

"सच !" राजा सुरपाल ने रानी पद्मावती की आँखों में झाँकते हुए कहा—"यह बात तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताई ?"

"बताया तो था ।" रानी मुस्कराई—"पर आप समझे ही नहीं तो मेरा क्या दोष ? मैंने कहा था कि अब मैं कुछ दिन तक ब्रह्मचर्य का पालन करूँगी । यह भी कहा था कि मेरा मन धर्म-चर्चा सुनने को होता है । आप मेरा दोहद भी नहीं जान पाये ?"

"यह बात तुम्हें पहले दिन ही बतानी थी ।" राजा सुरपाल बोले—"पृथ्वीस्थानपुर की प्रजा को युवराज के जन्म की बहुत खुशी होगी ।"

"अगर लड़की हुई तो ?" रानी बोली—"तो फिर राज्य का स्वामी हमारा जामाता बनेगा ।"

"लड़की हो ही नहीं सकती ।" राजा सुरपाल ने कहा—"मैंने एक दिन स्वप्न में देखा कि मैंने सुमेरु पर्वत को उठा लिया । पुरुषवाची वस्तु देखने से लड़का ही होता है ।"

राजा की यह युक्ति सुनते ही रानी पद्मावती खिलखिलाकर हँसने लगी और हँसते-हँसते बोली—"पुत्र होगा या पुत्री, इसका निर्णय माँ के स्वप्न से होता है, पिता के स्वप्न को कोई पूछता भी नहीं । तीर्थंकर की माता त्रिशला ने चौदह स्वप्न देखे थे, न कि उनके पिता ने ।"

"तुमने तो अपना स्वप्न बताया नहीं तो मैंने ही बता दिया ।" राजा सुरपाल भी हँसे—"वैसे स्वप्न तो तुमने भी देखा होगा ?"

"अच्छी तरह याद नहीं ।" रानी पद्मावती बोली—"इतना याद आ रहा है कि सपने में मैंने टोकरी भरे पके हुए पीले-पीले आम देखे थे ।"

"अब जो भी देखा हो ।" राजा सुरपाल बोले—"अपने पुत्र का नाम मैं अपने सपने के आधार पर सेरुवल रखूँगा । इसके पिता ने आखिर सपने में सुमेरु पर्वत उठाया था ।"

"मेरुबल से महाबल नाम ज्यादा अच्छा रहेगा।" रानी बोली—"मेरुबल में पर्वत की जड़ता झलकती है।"

"चलो, महाबल ही सही।" राजा बोले—"संतान पर माँ का अधिकार ज्यादा होता है। तो मैं तुम्हें अब महाबलकुमार की माता कहूँ।"

"मैं अपने 'प्रिये' सम्बोधन के आकर्षण को नहीं छोड़ सकती। मैं महाबल की माता बाद में हूँ, पहले आपकी कुछ हूँ। मुझे जो भी अपनी मानते हो, वही सुनना मैं जीवन भर चाहती हूँ।"

"जो कुछ तुम मेरी हो, उसे मैं कह नहीं सकता, बस, अनुभव ही कर सकता हूँ।" राजा सुरपाल बोले—"अच्छा, एक बात बताओ। सच-सच बताना। तुम्हारे स्वयंवर में बड़े-बड़े प्रतापी और रूपवान राजा आये थे। फिर तुमने मेरे कंठ में ही वरमाला क्यों डाली?"

"यह बात भी मैं कह नहीं सकती, बस अनुभव कर सकती हूँ।" रानी पद्मावती बोली—"फिर भी इतना जानती हूँ कि आपसे अधिक रूपवान मुझे कोई लगा ही नहीं। रूप का आकर्षण विषयगत कम विषयीगत अधिक होता है। आपको देखकर मुझे ऐसा लगा कि हम पूर्वभव में भी पति-पत्नी थे। फिर सबसे बड़ी बात यह थी कि आप पहला विवाह करने पहुँचे थे, जबकि अन्य राजा दूसरा-तीसरा विवाह करने गए थे।"

"दाम्पत्य सुख एक ही पत्नी में होता है, इस सत्य को कोई बदल नहीं सकता।" राजा सुरपाल बोले—"लेकिन दूसरा विवाह किसी की मजबूरी भी होती है। चन्द्रावती नगरी के राजा भी दूसरा विवाह करना नहीं चाहते थे। पहली रानी से उनके दस वर्ष में भी कोई संतान नहीं हुई तो भी वे दूसरा विवाह करना नहीं चाहते थे। पर उनकी रानी ने उनसे वचन ले लिया कि वे दूसरा विवाह करेंगे, इसलिए वे भी तुम्हारे स्वयंवर में गए थे। अब वे मेरे निकटतर मित्रों में हैं।"

"राजा का मित्र राजा तो होगा ही।" रानी पद्मावती बोली—"राजा वीरधवल की दूसरी रानी से यदि कन्या हो जाए तो हम अपने महाबल का विवाह करके आपकी मित्रता को सम्बन्ध में बदल देंगे।"

"अदृश्य के विधान को कौन जानता है।" राजा सुरपाल ने कहा—"क्या पता उनकी दूसरी रानी के भी पुत्र ही हो। उनके दूसरे विवाह को छह महीने ही हुए हैं। एक वर्ष में मैं पिता बन जाऊँगा तो अब तो वे भी एक-दो वर्ष में पिता बन ही जायेंगे। क्या पता ऐसा हो ही जाए कि तुम्हारी वाणी फल जाये।"

□

४

गजपुर के राजा थे, चन्द्रयशा। राजा चन्द्रयशा की रानी इन्दुमती ने एक कन्या को जन्म दिया, जो बड़े लाड़-प्यार से पाली गई। उस लाड़ली राजकुमारी का नाम था अनंगवती। अनंगवती रूप से जितनी सुन्दर थी, हृदय से ही उतनी ही क्रूर। हिंसा और पर-पीड़न में उसे रस आता था। बैठे-बैठे वह दासियों की चिकोटी भर लेती थी। बेचारी चीखकर रह जातीं।

अनंगवती की मुँहलगी दासी थी तारिका। वह उसके संग छाया की तरह रहती थी। एक दिन अनंगवती ने तारिका से कहा—

"तारिका, अपना हाथ तो फैला। मैं तुझे खीर चखाऊँगी।"

तारिका ने चट हथेली फैला दी। अनंगवती ने गरम-गरम खीर उसकी हथेली पर रखकर कहा—

"ले खा ताड़का, बता मीठी है कि नहीं।"

तारिका बिलबिलाकर चीखी। वह अनंगवती से खुली हुई थी, सो बोली—

"मैं रानी माँ से कहूँगी। आपने मुझे जला दिया।"

"तू रानी माँ से कहेगी?" यह कह अनंगवती ने उसे चोटी पकड़ कर झटके दिये और घुमाया। जब तारिका ने बार-बार कहा—पैरों पड़ती हूँ, तब उसे छोड़ा। फिर अनंगवती उसे मनाते हुए बोली—

"दिखा, ज्यादा जली तो नहीं! तू बड़ी जालुक है पगली! मैं तुझे कठोर बना रही हूँ। कभी मैं कोई ऐसा-वैसा काम कर बैठूँ और तुझसे उसका भेद पूछा जाए तो तू बड़े-से-बड़ा कष्ट झेलकर भी अपना मुँह न खोले। आज तो तू तनिक-सी गरम खीर में चीखने लगी। आ चल मेरे साथ।"

माँ अनंगवती बड़ी तेज-तर्रार थी। उसे अपने रूप का भी गुमान था। एक दिन एकान्त में बैठी तारिका से कहने लगी—

"तारिका! तू मेरे ताड़का कहने का बुरा मत माना कर। देख, मैं जब अपनी ससुराल जाऊँगी तो तुझे अपने साथ ले जाऊँगी। वहाँ के अन्तःपुर में मैं तेरे सहारे राज्य करूँगी।"

"आप तो अकेली ही होंगी, अपने अन्तःपुर में।" तारिका बोली—"जब दूसरी कोई रानी होगी ही नहीं तो फिर आपका ही राज्य रहेगा।"

"राज्य का मतलब है, राजा को अपनी उँगलियों पर नचाना।" अनंगवती बोली—"मेरे रहते राजा मेरा ही हुक्म माने तभी तो बात है।"

"अब की अगहन में आपका स्वयंवर होगा।" तारिका बोली—"आज सबेरे रानी माँ आपके पिता महाराज से कह रही थीं कि अनंग अब सयानी हो गई है, उसके विवाह की चिन्ता करो।"

राजा चन्द्रयशा और रानी इन्दुमती—दोनों को अनंगवती के ब्याह की चिन्ता थी। राजा चन्द्रयशा मंत्री अग्निमित्र के साथ स्वयंवर में आने वाले राजाओं की सूची बनाने में जुट गए थे। जब किसी राजा का नाम याद आ जाता वे मंत्री से कह देते, यह नाम भी लिख लो।

एक बार गजपुर में चन्द्रावती नगरी का व्यापारी धनसार सार्थ लेकर आया। क्रय-विक्रय की अनुमति लेने के लिए श्रेष्ठी धनसार राजा चन्द्रयशा की सभा में उपस्थित हुआ। राजा को भेंट देकर उसने निवेदन किया—

"राजन्! मैं राजा वीरधवल की नगरी चन्द्रावती नगरी से यहाँ व्यापार करने आया हूँ।"

"निर्भीक होकर व्यापार करो।" राजा चन्द्रयशा ने श्रेष्ठी धनसार से कहा—"तुम्हारे राजा वीरधवल के अन्तःपुर में कितनी रानियाँ हैं?"

"एक ही रानी है राजन्!" धनसार ने कहा—"राजा वीरधवल की रानी सौदामिनी को अन्तःपुर में आये दस वर्ष हो गए। अभी तक उनके कोई संतान नहीं हुई। अब राजा वीरधवल दूसरा विवाह करना चाहते हैं।"

"मंत्रिवर! स्वयंवर में आनेवालों में राजा वीरधवल का भी नाम लिख लो।" राजा चन्द्रयशा ने अपने मंत्री अग्निमित्र से कहा—"और भी तुम्हें जो नाम याद आते चलें, लिखते जाओ।"

"नाम तो काफी हो गए।" मंत्री अग्निमित्र बोला—"पर मेरी सम्मति में आप स्वयंवर का निश्चय त्याग दें तो अच्छा रहे।"

"क्यों?" राजा चन्द्रयशा ने पूछा—"क्या आप नहीं चाहते कि हमारी बेटी अनंगवती अपनी पसंद के पति का वरण करें?"

मंत्री राजा को बताने लगा—

"अनंगवती के लिए राजा वीरधवल से उत्तम वर दूसरा नहीं होगा। श्रेष्ठी धनसार से उनके अन्तःपुर की जानकारी मिलते ही मैंने यह विचार किया

है कि स्वयंवर का झंझट छोड़ आप सीधे ही राजा वीरधवल को अपनी बेटी ब्याह दें।

"पृथ्वीनाथ ! स्वयंवर में बहुत बखेड़ा करना पड़ता है। शायद ही कोई स्वयंवर ऐसा होगा, जिसमें निराश और विफल राजा युद्ध के लिए तैयार न होते हों। फिर स्वयंवर में आने वाले राजाओं के स्वागत में धन भी बहुत व्यय करना पड़ता है। कन्या का विवाह चाहे स्वयंवर की रीति से करें या माता-पिता अपनी पसंद के वर से कर दें, ब्याह तो एक से ही होना है। उद्देश्य तो यही है कि अनंगवती सुयोग्य राजा की रानी बने।

"राजन् ! राजा वीरधवल के एक ही रानी है। अनंगवती दूसरी होगी। यह छोटी होकर भी बड़ी होगी, क्योंकि राजमाता यही बनेगी। आखिर राजा वीरधवल संतान के लिए ही तो विवाह करना चाहते हैं।"

राजा चन्द्रयशा बोले—

"मंत्रिवर ! तुम्हारी सम्मति मेरी समझ में आने लगी है। मैं महारानी इन्दुमती से भी सलाह कर लूं। वह भी तो कलंग की माँ है।"

सभी ने मिलकर यही निश्चय किया कि राजपुत्री अनंगवती का विवाह राजा वीरधवल से ही कर दिया जाये। इस निश्चय के बाद मंत्री अग्निमित्र टीका लेकर चन्द्रावती नगरी पहुंचे। राजा वीरधवल तो तैयार ही थे। यथासमय यथाविधि वे अनंगवती को ब्याह कर ले आये। राजा वीरधवल का दूसरा विवाह था; फिर भी नगरी में अच्छी धूम-धाम हुई। रानी सौदामिनी ने पति को बधाई दी—

"मेरी छोटी बहन अनंगवती जल्दी ही तुम्हारे पुत्र की माता बने।"

"कितनी जल्दी ?" राजा वीरधवल बोले—"नौ महीने से पहले तो होगी नहीं।"

"अपने लिए मैंने दस वर्ष प्रतीक्षा की।" रानी सौदामिनी बोली—"पर अनंगवती के लिए तो मुझे नौ महीने की प्रतीक्षा भी भारी पड़ेगी।"

राजा वीरधवल छोटी रानी अनंगवती के खण्ड में पहुंचे। रानी पलंग के नीचे पादपीठ पर बैठी थी। उसके पास ही उसके पीहर से आई दासी तारिका बैठी थी। तभी एक दूसरी दासी ने रानी को सूचना दी—महाराज पधार रहे हैं।

रानी अनंगवती उठकर खड़ी हो गई। तारिका खण्ड से बाहर चली गई। रानी ने राजा के चरण छुए और बोली—

"आपकी दासी बनकर मैं धन्य हो गई।"

"यदि तुम दासी हो तो मैं दास हूं।" राजा वीरधवल बोले—"तुम स्वामिनी तो मैं स्वामी और तुम पत्नी तो मैं पति। हम दोनों तो हर नाम से एक ही हैं प्रिये! पत्नी पति का आधा अंग होती है।"

"होती तो है, पर मैं नहीं हूं।" रानी अनंगवती बोली—"मैं तो आपका चौथाई अंग हूं। आधा अंग आप हैं और आधे में बड़ी बहन महारानी सौदामिनी और मैं।"

"अर्धांग का बँटवारा स्थूल देह से नहीं होता।" राजा बोले—"भावनात्मक होता है। फिर तुम तो सौदामिनी से बढ़कर हो। क्योंकि तुम्हें ही तो युवराज की जननी बनना है।"

"बड़ी बड़ी ही रहती है।" अनंगवती बोली—"महारानी सौदामिनी ने मुझसे आज कहा था—अनंगवती मेरे स्वामी को प्रसन्न रखना। यह बात मेरे को कांटे-सी चुभ रही है। क्या आप मेरे स्वामी नहीं हैं? उसने यह क्या सोचकर कहा कि मेरे स्वामी को प्रसन्न रखना? क्या मैं उसके कहने से आपको प्रसन्न रखती? आप उसके भेजे मेरे पास आये हैं, मेरे होकर नहीं।"

"सुहागरात की इस प्रेमभरी रजनी में यह कलह की बात क्यों ले बैठीं?" राजा बोले—"कुछ मीठी-मीठी बात करो।"

"सुहागरात भी यह मेरी है, आपकी नहीं।" अनंगवती तुनककर बोली—"आप तो दस वर्ष में बहुत रातें मना चुके। आप मुझे युवराज बनाने का यत्न बनाकर लाये हैं, जीवन-संगिनी बनाकर नहीं।"

पहली रात ही रानी अनंगवती की ऐसी नीरस बातें सुनकर राजा वीरधवल सहम-से गए। रानी अनंगवती के तेवर देखकर वे आगे कुछ नहीं बोल पाये। कुछ देर दोनों चुप बैठे रहे। फिर राजा ही बोले—

"तुम मुझे गलत मत समझो। मेरे लिए तुम दोनों बराबर हो। सौदामिनी तुम्हें बहुत चाहती है। उससे तुम्हें कभी कोई शिकायत नहीं होगी।"

"मेरे लिए भी आप दोनों बराबर हैं।" रानी अनंगवती ने उसी तेवर में कहा—"आप मुझे आज्ञा दीजिए, क्या करना है।"

"आज्ञा तो तुम मुझे दो अनंग!" राजा बोले—"सुहागरात की खुशी में मैं तुम्हारी क्या इच्छा पूरी करूं?"

"यही कि मेरे होकर रहो, एक मात्र मेरे।" अनंगवती ने शर्त-सी रखी—"जो रानी दस वर्ष में भी आपके पुत्र की मां नहीं बन सकी, अब उससे नाता तोड़ो।"

"मैं न भी तोड़ूं तो वह स्वतः ही टूट जायगा।" राजा वीरधवल बोले—"अब इस प्रथम रात्रि को यों क्रोध में न बिताओ।"

रानी अनंगवती ने भी अपना रंग बदला। अब वह राजा के लिए मोहिनी बन गई। मीठी-मीठी बातें करने लगी। रात बीतती गई। प्रकृति और पुरुष एक हुए, जैसा कि होना ही था।

रानी अनंगवती के साथ हुए विवाह को एक वर्ष बीत गया। इस एक वर्ष में राजा वीरधवल का रानी अनंगवती से मन भर गया। रानी की बातों में छल-कपट, राजनीति, चतुराई और बनावटी हाव-भाव ही होते थे, जबकि रानी सौदामिनी की बातों में ही नहीं, पूरे बर्ताव में पति-भक्ति और समर्पण भरा रहता था।

पत्नी पति की प्रिया बने, इसके लिए एक मात्र समर्पण ही गुण है। नारी के स्वभाव में कितनी कटुता हो, यदि उसमें समर्पण है तो उसकी कटुता भी पति सहज कर लेता है। रानी अनंगवती में किंचित्मात्र भी समर्पण नहीं था। उसमें अधिकार की भावना कूट-कूटकर भरी थी। परिणाम यह हुआ कि राजा वीरधवल ने रानी अनंगवती के खण्ड में जाना बन्द कर दिया।

× × × ×

अपने प्रति राजा की उदासीनता देख रानी अनंगवती को चिन्ता होने लगी। उसने पीहर से आई अपनी दासी तारिका से सलाह की कि क्या करना चाहिए तो तारिका ने उसे सुझाव दिया—

"अन्त में जीत आपकी ही होगी महारानी ! कभी-न-कभी आपके पुत्र होगा। आप युवराज की माता बनेंगी और तब राजा आपके वश में होंगे। फिर आप चाहें तो अपनी सौत सौदामिनी को दासी बना सकती हैं। अब तो धीरज ही आपका सहारा है। जब तक आप माँ न बनें, तब तक धीरज ही आपके काम आयेगा। कहते भी तो हैं कि आपत्तकाल में धीरज और धर्म ही काम आते हैं।"

"धर्म गया भाड़ में।" रानी अनंगवती ने झल्लाकर कहा—"तभी तो मैं तुझे ताड़का कहती हूँ। जब महाराज मेरे खण्ड में ही नहीं आयेंगे तो मैं माँ कैसे बनूँगी ? फिर धीरज क्या मुझे युवराज की जननी बना देगा ? तू हमेशा हवा में भीत खड़ी करती है। कोई ढंग की बात कर।"

इस पर दासी तारिका ने अनंगवती रानी को यह सलाह दी कि वह अपना अर्द्धांग अधिकार राजा से ले ले। जिस तरह बड़ी रानी राजा के बराबर राज-सिंहासन पर बैठती है, उसी तरह आप भी राजसिंहासन पर बैठने का अधिकार प्राप्त करें।

रानी ने यही निश्चय किया कि वह अपना अधिकार प्राप्त करके रहेगी। वह भी राजसिंहासन पर राजा के बराबर बैठेगी। इतना ही नहीं, वह अपनी रातें

भी बाँट लेगी। राजा जितनी रातें सौदामिनी के खण्ड में बितायेंगे, उतनी ही रातें मेरे खण्ड में भी बितायेंगे।

प्रातःकाल का समय था। महाराज वीरधवल अपने सज्जा खण्ड में राज्य सभा जाने की पोशाक पहन रहे थे। तभी तारिका पहुंची। उसने अभिवादन के बाद कहा—

"अन्नदाता! छोटी महारानी आपके दर्शन करना चाहती हैं।"

"कब?" राजा बोले—"कल रात हम उनके खण्ड में नहीं आ सके, इसका हमें दुःख है। आज रात हम उन्हीं के मन्दिर में आयेंगे।"

"अन्नदाता!" दासी कुछ रुकी। फिर बोली—"छोटी महारानी आपके दर्शन करने से पूर्व अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगी।"

"अच्छा हम आते हैं।" राजा ने दासी से कहा—"उन्हें सूचना दो कि हम आ रहे हैं।"

थोड़ी देर बाद राजा वीरधवल छोटी रानी अनंगवती के खण्ड में पहुंचे। रानी ने उठकर उनका स्वागत किया और बोली—

"प्राणनाथ! चकवी, चकवा से रात में बिछुड़ती है और दिन में मिलती है। पर मैं क्या समझूं अपने विवाह को कि न दिन में मिलूं और न रात में? आपने मुझसे विवाह ही क्यों किया था? क्या कमी है मुझमें? मैं सौदामिनी से कम सुन्दर हूं?"

"मैं जब भी तुम्हारे पास आता हूं, तुम हमेशा लड़ने की बातें करती हो।" राजा बोले—"कभी तुमने सीधे मुंह बात की है मुझसे?

"महारानी! सौदामिनी तुम्हें छोटी बहन की तरह मानती है। वह कभी तुम्हारे बारे में मुझसे शिकायत नहीं करती फिर भी तुम उससे जाने क्यों कुढ़ती हो?"

"मैं क्यों कुढ़ती हूं, उसे आप अच्छी तरह जानते हैं।" अनंगवती बोली—"बल्कि इस कुढ़न का कारण भी आप ही हैं। आपका पक्षपात ही मेरे जीवन में घुटन भरे हुए है।"

"मुझे क्यों बुलाया था?" राजा ने पूछा—"मैं इस समय ज्यादा समय नहीं दे पाऊंगा।"

"मैं अपना अधिकार चाहती हूं।" छोटी रानी बोली—"मैं भी अब राज-सभा में आपके पार्श्व में बैठूंगी।"

"राजसिंहासन पर केवल पटरानी ही बैठती है।" राजा बोले—"ऐसा

तुमने कभी सुना है कि राजा के साथ सिंहासन पर दो-दो रानियां बैठें ? राज-सिंहासन पर बैठने से तुमको क्या मिलेगा ? ऐसे तुम्हें क्या नहीं मिल रहा है ?"

"प्राणेश्वर !" अनंगवती कुछ नरम पड़कर बोली—"वर्ष में जितनी भी रातें हैं, उनकी आधी रातें आप मेरे खण्ड में बितायेंगे और राजसिंहासन पर आपके साथ जितने दिन बड़ी रानी बैठेगी, उतने ही दिन मैं बैठूंगी। यदि ये मेरी दोनों बातें नहीं मानी गईं तो मैं आत्महत्या करके प्राण दे दूंगी।"

गृह-क्लेश को शान्त करने के लिए राजा वीरधवल ने रानी अनंगवती की दोनों शर्तें मान लीं। गृह-क्लेश छोटे घरों में ही नहीं होती, राजाओं के रनिवास में भी होती है। कुछ स्त्रियों को पति को परेशान करने और अकारण ही कलह करने में आनन्द आता है। रानी अनंगवती ऐसी ही स्त्रियों में से थी।

□

५

महारानी पद्मावती ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। राजा सुरपाल की खुशी का ठिकाना न था। मानो राजभवन में हर्ष का सागर उमड़ पड़ा हो। महारानी पद्मावती ने अपनी तीनों खास दासियों—अलका, सुभामा और वृन्दा को सोने के कड़े दिये। अन्य सभी दास-दासियों को चांदी के कड़े दिये। दीन-हीनों को वस्त्रदान दिया गया। नगर में भारी उत्सव हुआ। राजा सुरपाल ने अपने पिता बनने का संदेश सभी मित्र राजाओं के पास भेजा। उनमें एक राजा वीरधवल भी थे। सभी ने रत्नादि की भेंट सहित राजा सुरपाल को बधाई भेजी। राजा वीरधवल ने अपने मंत्री द्वारा राजा सुरपाल को बधाई भिजवाई। भेंट में राजपुत्र के लिए रत्नों से जड़ी नीले रंग की गोल टोपी भेजी, जो लाखों मुद्राओं के मूल्य की थी।

यथासमय राजपुत्र का नामकरण संस्कार हुआ। पूर्वनिश्चय के अनुसार राजपुत्र का नाम महाबल रखा गया। राजपुत्र महाबलकुमार का लालन-पालन पाँच धायें करती थीं। सुन्दर रूप, गोरा रंग, घुंघराले-काले मखमली बाल, अष्टमी के चन्द्र सा माथा, बड़ी-बड़ी आंखें, पतले अधर और होनहार बालक के सभी लक्षणों से युक्त महाबल माता-पिता की आंखों का तारा था।

धीरे-धीरे राजपुत्र महाबल ढाई साल का हो गया। राजा वीरधवल द्वारा

भेजी गई रत्न जड़ी नीली टोपी कुछ बड़ी थी, जो पहले ढीली पड़ती थी और अब उसके सिर में सही आने लगी। नीली टोपी में जड़े रत्न ऐसे लगते थे, मानो नक्षत्रों से भरा गगन महाबल के सिर पर शोभित हुआ हो। नीली टोपी और पीला झिगोला, हाथों में पहुंचियां, पैरों में पैंजनी और कमर में कौंधनी। अपने बेटे को अच्छी तरह सजाकर रानी पद्मावती उसके एक डिठौना लगाकर तिनका तोड़कर कहती थी— किसी की नजर न लगे। इतना करके वह पुत्र को राजा की गोद में देती थीं। राजा उसे अपने साथ राजसभा ले जाते थे। अपने भावी राजा को देखकर पृथ्वीस्थानपुर की प्रजा भी सुख-संतोष का अनुभव करती थी। ढाई वर्ष का महाबल नवकारमंत्र बोलना सीख गया था। कहीं-कहीं अटकता था तो उसकी जगह माता-पिता बोल देते थे।

एक दिन कोई नैमित्तिक राजसभा में आया। राजा ने उससे विशेष कुछ नहीं पूछा। महारानी पद्मावती ने उसे अपने महल में बुलवाया और उसे मोतियों से भरा थाल भेंट करके पूछा—

"पंडित प्रवर! मेरे महाबल का भविष्य कुछ बताइए।"

नैमित्तिक ने प्रश्न का समय देखकर लग्न निकाली और गणित करके बताया—

"महारानी जी! आपका पुत्र यशस्वी राजा बनेगा। इसके जीवन में कुछ उतार-चढ़ाव भी आयेंगे, लेकिन इसका अन्त सुखद होगा। इसका नाम सिंह राशि पर है, इसको जो पत्नी मिलेगी, वह भी सिंह राशि के नामवाली होगी। इससे आगे यदि अधिक जानना चाहें तो मैं इसका विस्तृत भविष्यफल बना दूंगा?"

"बस इतना और बता दें कि"—महारानी पद्मावती ने पूछा—"इसका विवाह कहां से, मेरा मतलब है किस दिशा से होगा?"

"इस प्रश्न का उत्तर अभी नहीं बताया जा सकता।" नैमित्तिक ने कहा— "अभी तो इसको ब्याही जाने वाली कन्या का जन्म भी नहीं हुआ, क्योंकि इसकी पत्नी इससे पांच वर्ष छोटी होगी।"

महाबल के बारे में महारानी पद्मावती ने जो कुछ जानकारी प्राप्त की, उससे उन्हें संतोष मिला। दिन-दूनी रात चौगुनी वृद्धि के साथ महाबल बढ़ने लगा। पिता को वह तुतलाकर पित्तू कहता था और मां को स्पष्ट मां कह लेता था।

× « ×

राजा वीरधवल के पहले विवाह को चौदह वर्ष और दूसरे विवाह को चार वर्ष बीत चुके थे। चार वर्ष बीतने पर भी छोटी रानी अनंगवती मां नहीं बनी। उसे इस बात का गर्व था कि जब मैं मां बन जाऊंगी तो अपनी सौत सौदामिनी के मान

मार दूंगी। मैं राजमाता बनूंगी। राजा तो राजा, प्रजा भी मुझे ही चाहेगी। लेकिन रानी के मन की नहीं हुई। एक दिन उसने तारिका से कहकर राजवैद्य को गुप्तरूप से अपने खण्ड में बुलाया और कहा कि मेरा परीक्षण करके बतायें कि मैं माँ बनूंगी या नहीं।

राजवैद्य एक दाई को साथ लेकर आये थे। उसकी मदद से उन्होंने रानी का परीक्षण करके बताया—

"महारानी जी! आपके संतान नहीं होगी। आप वंध्या है।"

"बड़ी रानी सौदामिनी बंध्या नहीं है; फिर भी उसके संतान क्यों नहीं हुई?" रानी अनंगवती ने वैद्य से कहा—"जैसे बंध्या न होने पर भी सौदामिनी के संतान नहीं हुई, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि वंध्या होने पर भी मेरे संतान हो जाए?"

"अदृश्य सत्ता के रहस्य को कोई नहीं जानता।" वैद्य ने कहा—"यह भी कर्म का अद्भुत रहस्य है कि वंध्या न होने पर भी महारानी सौदामिनी चौदह वर्षों में भी माँ नहीं बनी। आप वंध्या हैं, यह भी कर्म का रहस्य ही है। वैद्य की सीमा यहीं तक है कि वह यह बता दे कि आप माँ नहीं बन सकतीं और बड़ी महारानी माँ बन सकती हैं।"

"फिर जाइए आप।" रानी अनंगवती ने बुझे मन से कहा—"अच्छा है हम दोनों एक-जैसी रहे। दोनों ही माँ न बनें तो दोनों का दुःख भी एक रहेगा।"

राजवैद्य चले गए। धीरे-धीरे पहले राजमहल में फिर पूरे पृथ्वीस्थानपुर में यह बात फैल गई कि बड़ी रानी के तो संतान हुई नहीं और छोटी रानी भी वंध्या निकली। अब क्या राजा तीसरा विवाह करेंगे?

कुछ लोग कहते कि यदि संतान नहीं होनी है तो तीन क्या तीस विवाह करने पर भी संतान नहीं होगी। भाग्य में होती तो पहली रानी के ही संतान हो जाती। इस पर एक ने कहा—

"भाग्य का भी कुछ पता नहीं, कब उदय हो जाए। कभी-कभी तो जीवन के उत्तरार्द्ध में भाग्योदय होता है।"

× × ×

"मुझे छोटी रानी से औपचारिक, बनावटी और कपटपूर्ण सम्मान ही मिला।" राजा वीरधवल ने बड़ी रानी सौदामिनी से कहा—"पत्नी का प्यार मुझे उससे कभी नहीं मिला।

"महारानी जी! मुझे पत्नी का आदर नहीं, अपितु उसका प्यार चाहिए। तुमसे मुझे प्यार और सम्मान—दोनों भरपूर मिलते हैं। मैंने तो तुम्हें वचन देने के

कारण अनंगवती से विवाह किया था। चार वर्ष हो गए विवाह किये। अब तो वह बाँझ सिद्ध हो चुकी है। तुम्हारे कहने से मैंने दूसरा विवाह तो कर लिया। पर अब मैं उसके खण्ड में कभी नहीं जाऊँगा। बोलो, मेरे वहाँ जाने से लाभ क्या है ?"

"अगर आप अनंगवती के खण्ड में नहीं जायेंगे तो उसकी ईर्ष्या और भी बढ़ जायगी।" रानी सौदामिनी बोली—"स्वामी ! प्रकृति हमेशा पुरुष से मिलने के लिए लालायित रहती है। यदि आप बहन अनंगवती की लालसा—'इच्छा' पूरी न करेंगे तो माना जायगा कि उसके साथ विवाह करके आपने पाप किया है। आप उससे पत्नी का सुख न पा सके, पर उसे तो पति का सुख देना ही पड़ेगा। विवाह-विधि के समय मण्डप में आपने उसे वचन दिया था।"

"वचन तो उसने भी मुझे दिया था।" राजा बोले—"क्या वह भाँवरों पर दिये गए अपने वचनों का पालन कर रही है ?"

"कर्तव्य-पालन और धर्म-पालन में बदले की भावना घातक होती है।" महारानी सौदामिनी बोली—"इससे कर्मों का बंध ही होता है। यह तो बुद्धिमानी नहीं कि पत्नी अपने कर्तव्य का पालन न करके अशुभ कर्मों का बंध करे तो पति भी बदले में कर्म बाँधे।"

"जो तुम्हारी राह में काँटे बोता है, तुम उसके पथ में फूल बिछाती हो।" महाराज वीरधवल बोले—"अनंगवती के प्रति तुम में सौतिया डाह छू तक नहीं गया। तुम सच्चे अर्थों में जीवन-संगिनी हो। मुझे इसी तरह सम्हालती रहना।"

"सम्हालने का काम तो आपका है स्वामी ! यों मैं आपको कर्तव्य से भागने नहीं दूँगी।" महारानी सौदामिनी बोली—"लता का सहारा जैसे वृक्ष होता है, वैसा ही सहारा पत्नी का पति बनता है। आप मेरे प्राणाधार हैं।"

"तुम कब तक यों चरण चाँपती रहोगी ?" राजा ने बात बदली—"अब सो जाओ। मुझे तो नींद आ रही है।"

राजा-रानी दोनों सो गए। सवेरे रानी बहुत सवेरे जाग गई। उसने राजा को भी जगाया और बोली—

"स्वामी ! मैंने एक सपना अभी-अभी देखा है। आप मुझे लेकर मलय पर्वत पर गए हैं। जहाँ दूर-दूर तक चन्दन के वृक्ष फैले हैं। मैंने आप से कहा था कि हम लोग मलय पर्वत पर ही रहें तो कितना सुन्दर हो। भला, यह सपना कैसा है, स्वामी ?"

"सपना तो अच्छा ही है।" राजा वीरधवल बोले—"मलय पर्वत सुगन्धि का आगार है, क्योंकि वह चन्दन वृक्षों को धारण किये रहता है। वैसे सपना अच्छा हो या बुरा, सपना ही होता है। सपने के बारे में ज्यादा नहीं सोचना चाहिए।"

रानी सौदामिनी ने भी फिर आगे नहीं सोचा और नित्य कर्म में लग गई। राजा भी दैनिक कर्मों से निपटकर धर्मक्रियाओं में जुट गए।

एक महीना बीता। रानी सौदामिनी ने अपनी दोनों दासियों माधवी और अलका में से अलका नाम की दासी से कहा—

"अलका ! मेरा जी मिचलाता है। तू जाकर राजवैद्य को ले आ।"

राजवैद्य स्त्रियों को देखने दाई को साथ लेकर जाते थे। अब भी वे रानी सौदामिनी को देखने दाई को लेकर आये। दाई ने बताया—

"महारानी जी ! आप गर्भवती हैं।"

"ऐसा कैसे हो सकता है ?" रानी सौदामिनी आश्चर्यमिश्रित हर्ष से बोलीं—"दाई मां! तुम्हारी बात सच निकली तो मैं तुम्हें सोने से पीली कर दूंगी।"

"मैं तो यहां तक दावा करती हूं कि आप पुत्र को जन्म देंगी।" दाई बोली —"महारानी जी ! इस समाचार को सुनकर हर घर में खुशियां भर जायेंगी।"

अलका उसी समय राजदरबार में पहुंची और महाराज वीरधवल से कहा—

"महारानी जी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। राजवैद्य उन्हें देखने आये हैं।"

राजा चिंतित से उठे और महारानी सौदामिनी के खण्ड में गए। वहां का हर्षमय वातावरण देखकर दंग रह गए। राजवैद्य ने उठकर बधाई दी—

"बधाई है पृथ्वीनाथ ! आप पिता बनेंगे। महारानी का पांव भारी है।"

"क्या आप सच कहते हैं वैद्यजी ?" राजा ने राज-वैद्य को बाहों में भर लिया—"सचमुच, यह सपना सा लगता है मुझे।"

"अदृश्य सत्ता का विधान बड़ा रहस्यमय होता है, पृथ्वीनाथ !" राजवैद्य ने वही बात कही जो छोटी रानी अनंगवती से कही थी—"चौदह वर्ष बाद महारानी का मां बनना सचमुच अदृश्य सत्ता का अद्भुत रहस्य है। संतान के लिए आपने दूसरा विवाह किया, पर छोटी रानी वंध्या निकली जब मां बनने का भाग्यादेय हुआ तो बड़ी महारानी ही मां बनीं।"

"बनी नहीं बनेंगी।" दाई बोली—"मैं कहती हूं कि पुत्र की मां बनेंगी।"

राजा ने राजवैद्य को स्वर्णमुद्राओं से भरा थाल दिया। अलका दासी ने सुधामा और वृन्दा से भी कह दिया। इस तरह यह शुभ संवाद पूरे राजमहल में फैल गया और दासियों से ही अनंगवती की दासी तारिका ने भी सुन लिया तो वह दौड़ती-हांफती रानी अनंगवती के पास पहुंची और बोली—

"गजब हो गया महारानी जी ! मैं गूलर पर फूल देखकर आ रही हूँ।"

"पूरी बात बता।" रानी अनंगवती बोली—"बता, क्या हुआ ?"

"जो नहीं होना था, वही होगया।" तारिका बोली—"महारानी सौदामिनी माँ बनेंगी और वे पुत्र की माँ बनेंगी ! यह सब उसी तरह हुआ है, जैसे गूलर के पेड़ पर फूल आ जाए।"

रानी अनंगवती उदास हो गई। कुछ देर बाद बोली—

"गूलर के पेड़ पर फूल आये, चाहे न आये, पर फल तो आता ही है। अब मेरी इस भवन में क्या इज्जत रहेगी ? रहा-सहा मान भी जाएगा। सौदामिनी बड़ी तो है ही, अब वह राजमाता भी बन जाएगी। बन जाए राजमाता, पर मैं भी उसे चैन से नहीं जीने दूँगी। तारिका ! तू मेरा साथ मत छोड़ना।"

"आपके लिए मैं प्राण भी दे दूँगी।" तारिका ने कहा—"आपके अलावा मेरा भी यहाँ कौन है ?"

"हम दोनों चाहें तो राज्य पलट सकती हैं।" रानी अनंगवती बोली—"मेरा नाम भी अनंगवती है तो मैं सौदामिनी को आसानी से राजमाता नहीं बनने दूँगी। सौदामिनी गर्भवती है तो अब महाराज रात को मेरे खण्ड में ही शयन करेंगे।"

"आगे की बात बाद में सोचना महारानी !" तारिका बोली—"अब तो आपको सौदामिनी के महल में उसे बधाई देने जाना चाहिए।"

"यह तूने अवसर की बात कही तारिका ! तेरी सलाह मुझे बहुत अच्छी लगी है।" रानी अनंगवती बोली—"उसे तो यही बताना चाहिए कि उसके माँ बनने से मुझे भी खुशी है।"

रानी अनंगवती तारिका को साथ लेकर रानी सौदामिनी के खण्ड में पहुंची, गले लगकर मिली और बोली—

"जब से मैंने सुना है, मेरा रोम-रोम हर्ष से नाच रहा है। पर आपने मुझे भी संदेश नहीं भेजा।"

"संदेश तो किसी को नहीं दिया बहन !" महारानी सौदामिनी ने अनंगवती को अपने पास बैठाते हुए कहा—"मेरा जी मिचला रहा था, सो मैंने राजवैद्य को बुलवाया, साथ में दाई भी आई थी। उन दोनों ने ही बताया कि मेरा पांव भारी है। अलका अपनी मर्जी से ही महाराज को बुला लायी।"

"कहाँ है अलका!" रानी अनंगवती ने अलका को बुलाकर कहा—"अलका! महारानी जी को फूल भी मत उठाने देना। मैं भी आ जाया करूँगी।"

"बड़े दिनों के बाद हम दोनों के भाग्य जागे हैं।" रानी सौदामिनी बोली—"मुझसे ज्यादा प्यार तो तुम्हारा रहेगा। कौशल्या से अधिक राम पर कैकेयी का प्यार था।"

"कैकेयी का प्यार, प्यार नहीं छिलावा था।" अनंगवती बोली—"उसी ने राम को वनवास दिया था। मैं तो अपने लाड़ले की धाय बनकर रहूँगी।"

"क्या पता लड़की ही हो।" सौदामिनी बोली—"लड़की हो जाय तो भी हम कम भाग्यशालिनी नहीं।"

"लड़का ही होगा।" रानी अनंगवती बोली—"मैंने सब सुन लिया है। दाई दावा करके गई है कि आप पुत्र को जन्म देंगी। मेरा भी मन यही कहता है। भाग्यशालिनी हम नहीं, हमारा पुत्र भाग्यशाली होगा, जो एक की जगह दो माताओं का प्यार पायेगा। वासुदेव कृष्ण भी तो दो माताओं के पुत्र थे। आज भी लोग उन्हें देवकीनंदन और यशोदानंदन—दोनों कहते हैं।"

"कृष्ण के तो पिता भी दो थे।" सौदामिनी बोली—"वे वसुदेव-पुत्र थे तो नन्दनन्दन भी थे।"

"अच्छा आपने कोई सपना भी देखा था?" रानी अनंगवती ने पूछा—"सपने से पता चलेगा कि पुत्र होगा या पुत्री।"

"सपने में महीने भर पूर्व मैंने मलय पर्वत देखा था।" रानी सौदामिनी बोली—"मैं स्वयं नहीं जानती थी कि इस सपने को देखकर ही मैंने गर्भ धारण किया है।"

"मलय पर्वत तो पुरुषवाची है।" अनंगवती ने स्वप्न पर टिप्पणी दी—"मलय पर उगे चंदन की गंध जैसे दूर-दूर तक फैल जाती है, वैसे ही हमारे पुत्र का यश भी दसों दिशाओं में फैलेगा।"

कुछ देर और बैठकर अनंगवती उठकर चल दी। जब वह अपने खण्ड में पहुंच गई तो तारिका ने उससे कहा—

"आज तो आपने बहुत प्यार जताया। वैर और प्रीति एक साथ नहीं निभ सकते।"

"पर मैं दोनों को निभाऊँगी।" अनंगवती बोली—"प्रीति ऊपर की होगी और वैर निभाना मेरा असली उद्देश्य होगा।"

□

६

महारानी सौदामिनी के गर्भ को नौ महीने बीत गए, किन्तु प्रसव नहीं हुआ। दाई नित्य महारानी के पास ही रहती थी। पन्द्रह दिन और बीते। साढ़े नौ महीने बीतने पर भी महारानी के प्रसव नहीं हुआ तो उन्होंने चिन्तातुर होकर कहा—

'दाई मां! मैंने सुना है कि जब लड़का होता है तो नौ-सवा नौ महीने बाद प्रसव हो जाता है। लड़की दस महीने तक ले आती है। मैं स्वयं अपनी मां के दस महीने में हुई थी। लगता है, मेरे भी कन्या होगी।"

"प्रसवकाल लम्बा होने से तो ऐसा ही लगता है, महारानी जी!" सुनखा ने कहा। दाई का नाम सुनखा था—"पर मैंने भी सैंकड़ों प्रसव कराये हैं। आपके बाह्य लक्षण देखने से तो ऐसा ही लगता है कि आप पुत्र को ही जन्म देंगी।"

"अब जो भी हो।" महारानी सौदामिनी बोलीं—पुत्र हो या पुत्री। मेरे लिए दोनों ही सुखद हैं।"

"मुझे तो कुछ और ही दिखाई देता है।" सुनखा दाई ने कहा—"आपका उदर सामान्य से ज्यादा बड़ा है। लगता है आप युगल संतान को जन्म देंगी। आपके जुड़वां बच्चे होंगे। अब यह बात अलग है कि क्या हों, दोनों लड़का हों या एक लड़का, एक लड़की। पर एक लड़का जरूर होगा।"

"फिर तो अच्छा है।" महारानी बोलीं—लड़की मेरी और लड़का उनका।"

× × ×

महारानी सौदामिनी के प्रसव की रानी अनंगवती को सबसे अधिक चिन्ता थी। उसकी दासी तारिका महारानी सौदामिनी के नित्य के हाल-चाल अपनी स्वामिनी अनंगवती को बताती रहती थी। तारिका नित्य बड़ी रानी के महल में जाती थी। जब-तब अनंगवती भी अपनत्व जताने चली आती थी। अनंगवती को यह जानकर भारी खुशी हुई थी कि मेरी सौत सौदामिनी के अभी प्रसव नहीं हुआ। दस महीने के प्रसव में प्रायः लड़की होती है, यह बात अनंगवती भी जानती थी।

अनंगवती चाहती थी कि सौदामिनी के लड़की भी न हो। वह यदि मृत्पिंड को जन्म दे तो उसके मन की होती। इसके लिए उसने बहुत पहले से ही सुनखा दाई से सांठ-गांठ करली थी। एक दिन अनंगवती ने सुनखा को बुलाकर कहा—

"सुनखा! सौदामिनी तुझे क्या देगी? बता क्या देगी? अरी सुन, वह कुछ भी दे दे, पर इतना नहीं दे सकती, जो मैं दूंगी। मैं तुझे इतना धन दूंगी कि तेरी चार पीढ़ियां सुख से जीयेंगी।"

"आपके धन से मेरी चार पीढ़ियां सुख से जीयेंगी, यह बात मेरी समझ में नहीं आई महारानी!" सुनखा ने कहा—"गीता तो सन्तों से यह सुना है कि सुख से जीना धन द्वारा संभव नहीं है। निर्धन भी सुख से जीते हैं और धनी भी रात-दिन चिन्ता में डूबे रहते है। मुनियों के पास कहां होता है धन? फिर भी वे न केवल सुख से जीते हैं, बल्कि धनी लोग भी उनसे सुख की याचना करते हैं।"

"बैरागियों की बात दूसरी है, सुनखा!" अनंगवती ने कहा—"ये संत-यंत पैदल मारे-मारे फिरते हैं। तू ही बता रथ में बैठकर यात्रा करने में सुख है या पैदल भटकने में।

"सुनखा! मेरी बात तूने किसी से कही तो मैं तेरी खाल खिंचवाकर भुस भरवा दूंगी। अगर तू मेरा काम कर देगी तो मैं तुझे चार पीढ़ियों के लिए पर्याप्त धन दूंगी। धन लेकर तू मेरे पीहर गजपुर चली जाना। रातों-रात निकल जाने के लिए मैं रथ की व्यवस्था कर दूंगी। बदले में तुझे इतना करना है कि सौदामिनी के न लड़का हो न लड़की। उसके या तो पत्थर होना चाहिए या मांस पिण्ड हो।"

अनंगवती की धमकी और प्रलोभन सुनकर सुनखा डर गई। उसे लोभ ने पाप करने के लिए बाध्य कर दिया और उसने हां कह दी—

"महारानीजी! आपका काम हो जाएगा। धन आप मेरे घर न भिजवावें। अपने पीहर गजपुर ही भिजवा दीजिए। मैं आपके पिता महाराज चन्द्रयशा से ले लूंगी। रातों-रात यहां से निकलने की व्यवस्था भी मैं स्वयं कर लूंगी।"

सुनखा अपना काम बहुत स्वाभाविक ढंग से करना चाहती थी। इसलिए उसने बड़ी महारानी को यह बताया कि आप युगल-जुड़वां बच्चों को जन्म देंगी। उसने अपने व्यवहार में कहीं भी बनावट प्रकट नहीं होने दी।

दस महीने पूरे हुए। महारानी सौदामिनी को प्रसव-पीड़ा होने लगी। उस दिन सुनखा दाई महारानी के पास नहीं थी। वह भयंकर उदर वेदना में होने के कारण नहीं आ सकी। उसकी जगह दूसरी दाई आई। उसी ने महारानी को प्रसव कराया। महारानी सौदामिनी ने युगल संतान को ही जन्म दिया—पहले लड़का हुआ, फिर लड़की। लड़की लड़के से तीन घड़ी छोटी थी।

महारानी बेहोश हो गई थीं। दासियाँ दोनों बच्चों को नहलाने-धुलाने में लग गईं। कुछ दासियाँ महारानी की परिचर्या में लगी थीं। राजवैद्य ने जो पेय दिया, वह नई दाई ने पिलाया। महारानी को होश आया तो उसने अलका से कहा—

"सोने के दो कड़े तू सबसे पहले सुनखा दाई को दे आ। उससे कहना तेरी जीभ पर सरस्वती बैठी है। तूने जो कहा, वही हुआ। एक लड़का और एक लड़की मेरे हुए हैं। कहना ज्वर उतरने पर भी तीन-चार दिन ठहरकर तभी आये, जब पूरी तरह स्वस्थ हो जाए।"

नई दाई को भी भरपूर पुरस्कार मिला। राजा वीरधवल ने सभी दास-दासी निहाल कर दिये। दास-दासियों को पुरस्कार रानी अनंगवती ने बाँटे।

अलका के हाथों सोने के कड़े और महारानी सौदामिनी का संदेश पाकर सुनखा रोने लगी। मन-ही-मन सोच रही थी—'चार पीढ़ियों के लिए पर्याप्त धन से अधिक मूल्यवान तो ये कड़े हैं। उस पापस्थान से मैं कभी सुखी नहीं रह सकती थी। लोभ कितना नीच शत्रु है मेरा, जो मुझे अनंगवती के चंगुल में फँसा रहा था। मैंने मुनियों की देशनी सुनी, पर गुनी नहीं। जिस लोभ को हम अपना हितैषी समझते हैं, वह हमारा कितना घातक शत्रु है! जन्म-जन्म का वैरी है लोभ। धर्म की शरण लेने से ही काम, क्रोध, हिंसा, लोभ आदि सभी धोखेबाज शत्रुओं से मुक्ति मिल जाती है। प्रकट शत्रु से धोखेबाज शत्रु अधिक घातक होते हैं। जाने मेरे कौन-से पुण्य शेष थे, जो मैं पाप से बच गई। महारानी सौदामिनी न केवल बड़ी रानी हैं, बल्कि वे तो महान से भी महान हैं। छोटी रानी कितनी पापिनी है! छी छी!'

सुनखा को गुमसुम रोते देख अलका ने पूछा—

"दाई माँ! क्या सोचने लगीं? रो क्यों रही हैं?"

"ये खुशी के आँसू हैं, अलका!" सुनखा ने कहा—"महारानीजी की महानता पर सोच रही थी कि वे कितनी महान हैं। ज्वर उतरने पर तो मैं आती ही, तब भी ये कड़े दे देतीं। पर उन्होंने तेरे हाथ भेजे। वे पूजा के योग्य हैं।"

उधर पुरस्कार बाँटते हुए छोटी रानी अनंगवती से महाराज वीरधवल कहने लगे—

"छोटी रानी! सौदामिनी ने कितना न्याय किया है कि दो संतानों को जन्म दिया। एक तुम्हारे लिए और एक अपने लिए। बोलो, तुम लड़का लोगी या लड़की। एक का पालन तुम करो और एक का सौदामिनी करेगी।"

राजा वीरधवल का यह विनोद रानी अनंगवती को ऐसा लगा, मानो उसे सौ बिच्छुओं ने एक साथ डस लिया हो। जो अनंगवती सौदामिनी के बच्चों को मरवाकर माँस पिण्ड या पत्थर रखवाना चाहती थी, भला वह उन बच्चों की माँ

बनना कैसे स्वीकार कर लेती ? यही दोनों बच्चे उसके अपने पैदा किये हुए होते तो वह रात-रात भर जागकर, भूखे रहकर भी पालन करती। एक ओर माँ की यह ममता श्लाघ्य है तो दूसरी ओर इस ममता की मृग-मरीचिका भी कितनी हास्यास्पद है। माँ जिसे अपना मानती है— मान लेती है, क्या वह कभी अपना हो सकता है ? जिनमें सच्ची ममता होती है, वे दूसरे के बच्चों को भी अपने-जैसी ममता देते हैं। क्या यशोदा ने कृष्ण को अपने-जैसी ममता नहीं दी थी ? पर अनंगवती यशोदा नहीं थी। वह ईर्ष्या, द्वेष और वैर का शरीर धारण किये थी। उसे महाराज वीरधवल का विनोद असह्य पीड़ादायक लगा, पर प्रकट में उसने भी विनोद का जवाब विनोद में ही दिया।

"एक बच्चा मैं ले लूँ और एक जीजी के पास रहेगा तो फिर आपके लिए क्या बचा ? प्रसव की पीड़ा हम पत्नियाँ सहें, पालन-पोषण भी हम करें और आप मुफ्त में पिता बन जाएँ ? हम दोनों की ओर से इन दोनों को तुम्हीं सम्हालो।"

"मैंने तो तुम दोनों को सम्हालने की जिम्मेदारी ली है, सो जीवन भर सम्हालता रहूँगा।" महाराज वीरधवल बोले—"जब तुम बच्चों को अपना ही पुरुषार्थ मानती हो तो तुम्हीं को सम्हालना पड़ेगा। वैसे स्त्रियाँ विवाद कर सकती हैं, पुरुषार्थ नहीं। पुरुषार्थ पुरुष ही करते हैं।"

पुरुषार्थ के द्विअर्थक व्यंग को समझकर दोनों रानियाँ झेंप गईं। राजा भी मुस्कराकर चले गए।

चन्द्रावती नगरी के प्रजाजनों ने भी उत्सव मनाये। निराशा के बाद फल मिलने के हर्ष की अनुभूति वर्णनातीत होती है। राजा वीरधवल ने भी खूब धन लुटाया। यथादिन दोनों बच्चों का नामकरण संस्कार हुआ। महारानी सौदामिनी ने गर्भ धारण की रात्रि को मलय पर्वत पर विचरण करने का स्वप्न देखा था। चूँकि मलय पर्वत पर चन्दन वृक्ष होते हैं और वह सुवास का शिरमौर है, अतः महारानी सौदामिनी ने निश्चय किया कि पुत्र का नाम चन्दनकुमार और पुत्री का चन्दन कुमारी रखा जाए। इस पर महाराज वीरधवल ने आपत्ति की—

"चन्दन का गुण सुवास तो ठीक है। यह भी ठीक है कि दोनों बच्चों का यश चन्दन की सुवास-सा फैले। पर चन्दन नाम सुनने में अच्छा नहीं लगता। बंधन की तुक पर आता है चन्दन।"

"यह तो आपके सोचने का ढंग है।" सौदामिनी बोली—"चन्दन की तुक वंदन भी तो है। आप चन्दन पसन्द नहीं करते तो चन्दन का पर्याय श्रीखण्ड रखलें।"

"यह भी ठीक नहीं।" राजा बोले—"श्री के साथ खण्ड अच्छा नहीं लगता। फिर पुत्री का नाम श्रीखण्डा बड़ा भद्दा लगेगा।।

"महारानी ! मलय का नाम लेते ही चन्दन अपने आप प्रकट-सा हो जाता है। मेरी राय में मलयकुमार और मलयासुन्दरी नाम ठीक रहेगा। इन नामों में कई विशेषताएँ हैं। मुख्य बात तो यही है कि इन दोनों नामों में तुम्हारा स्वप्न हमेशा साकार रहेगा।"

राजपुत्र का नाम मलयकुमार और राजपुत्री का नाम मलयासुन्दरी रखा गया। बहन-भाई दोनों सद्य विकसित कमल से सुन्दर और आकर्षक थे। मलया कुमारी तो ऐसी लगती थी मानो चन्द्र खण्ड को तराशकर बनाई गई हो। उसकी देहकान्ति चम्पकवर्णी और मोहक थी। पाँच-पाँच धायें दोनों का पालन करती थीं। सौदामिनी की गोद में वर्षों की साध फलवती होकर बैठी थी तो अनंगवती के हृदय में ईर्ष्या का सर्प अपनी कुण्डली खोल फन उठाये बैठा था, जो अवसर पाते ही मलयासुन्दरी और मलयकुमार—दोनों को डसने की घात लगाये था।

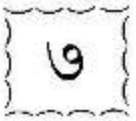

७

महाबलकुमार ने इक्कीस बसंत देख लिये थे। वह सुगठित देह का आकर्षक युवक था। बहत्तर कलाओं में उसने गीष्मता प्राप्त करली थी। ढाई वर्ष की उम्र में तुतलाकर नवकार मंत्र बोलने वाला महाबल अब उस दिव्य महामन्त्र का आराधक और साधक था। धर्म में उसकी न केवल रुचि थी, पैठ भी थी। श्वेत अश्व पर सवार होकर जब भी वह नगर में निकलता था, नारियाँ झरोखों से उसे निहारती थीं। महामन्त्री बुद्धिसार का पुत्र गुणसेन उसका समवयस्क था। उसके साथ वह दो-दो तीन-तीन दिन के लिए वन भ्रमण के लिए चला जाता था।

एक बार महाबल छह दिन बाद लौटा। राजा सुरपाल और रानी पद्मावती दोनों ही चिन्तित हो उठे। उसके न लौटने पर रानी ने राजा को उपालम्भ दिया—

"सन्तान की पीड़ा माँ ही जानती है। आप तो हाथ पर हाथ रखे बैठे हैं। जानें किस संकट में पड़ गया मेरा लाल?"

"महाबल को तुम निर्बल क्यों समझती हो महारानी?" राजा सुरपाल बोले—"मन्त्रिपुत्र गुणसेन भी तो उसके साथ है।"

"क्या दोनों पर संकट नहीं आ सकता?" महारानी झल्ला पड़ी—"आप उसकी खोज क्यों नहीं कराते?"

"धर्म को तुमने सुना अवश्य है, पर जीवन में उतारा नहीं।" महाराज सुरपाल बोले—"हमारा धर्म कर्मसिद्धान्त का पर्याय है। इस अटल-अडिग सिद्धान्त का सीधा-सादा अर्थ है कि पाप के उदय होने पर संकट आते हैं—टालने से भी नहीं टलते और जब पुण्य का उदय होता है तो संकट को पुण्य उसी तरह खा जाता है, जैसे अन्धकार को सूर्य। यदि तुम्हें इस सिद्धान्त में विश्वास है तो तुम्हें भी निश्चिन्त हो जाना चाहिए। तुम यह भी मान सकती हो कि महाबल जहाँ भी गया हो, वहाँ उसके पुण्यों का ऐसा उदय हो कि कुछ प्राप्त करके लौटे।"

"मन समझाने के लिए कुछ भी मान लूं स्वामी!" महारानी पद्मावती ने निश्श्वास छोड़ते हुए कहा—"पर मैं माँ हूँ। माँ का हृदय मोहमण्डित होता है और मोह अँधेरे को कहते हैं। माँ, बस माँ होती है। आप माँ के हृदय से सोचते तो आपको भी मेरी तरह चिन्ता होती।"

"गलती तुम्हारी है, जो उसे रोकती नहीं।" राजा सुरपाल ने कहा—"तुम्हारे लाड़-प्यार ने ही उसे इतनी छूट दी है।"

"मैं अपनी गलती को दूर करना चाहती हूँ, पर आप करने दें तब न।" रानी बोली—"उसके पैरों में जंजीर क्यों नहीं डाल देते? जब उसका ब्याह हो जाएगा तो कहीं नहीं जाएगा।"

"ब्याह तो मैं उसके दस करूँगा—कम-से-कम दस।" राजा सुरपाल हँसकर बोले—"मेरे अन्तःपुर में तुम एक चन्द्रमा हो। पर तारागणों के बिना अकेले चन्द्रमा की क्या शोभा? उसकी एक पटरानी चन्द्रमा के समान होगी, बाकी नौ तारागण। बहुएँ जब तुम्हारे पैर दबायेंगी तो दसों से पैर दबवाते-दबवाते थक जाया करोगी।"

"अपने मन की छिपी बात आज कह ही बैठे।" रानी बोली—"आप स्वयं चाहते थे अपने अन्तःपुर में भेड़-बकरियों को भरना। पुत्र की आड़ में आपने मन की बात आज कह दी। दस बाद में लाना, पहले महाबल के लिए एक ला दो, जिससे उसका घर से बाहर निकलना रुके।"

"उसे लौट आने दो।" राजा सुरपाल बोले—"सबसे पहले मैं उसको युवराज बना दूँ। उस पद पर उसका अभिषेक कर दूँ। युवराज बनने से उस पर शासन का उत्तरदायित्व आयेगा। सबसे बड़ी जंजीर तो उत्तरदायित्व की होती है।"

"होती तो है, पर पत्नी से बड़ी नहीं होती।" रानी बोली—"ब्याह की बात क्यों टाल रहे हो?"

"युवराज पद के अभिषेक का उत्सव विवाह की ही तो भूमिका है।" राजा बोले—"उस उत्सव में अनेक राजा आयेंगे। उनमें कन्याओं के पिता भी होंगे। वे महाबल के सौन्दर्य और रूप को देखेंगे तो उसे अपना जामाता बनाना भी चाहेंगे। यों एक पंथ दो काज हो जायेंगे।"

"एक काम और भी होगा।" महारानी पद्मावती बोली—"आपके शत्रु राजाओं को भी पता चल जाएगा कि पुण्डीरस्थानपुर का राज्य उत्तराधिकारी रहित नहीं है, जिसे हम हड़प लें।"

"हमारा एक मात्र शत्रु तो भागरतिलकनगर का राजा कंदर्पदेव है।" राजा सुरपाल ने कहा—"दूसरे राज्यों को हड़पना मानो उसके जीवन का उद्देश्य हो। उसने एक बार हम पर और एक बार चन्द्रावती के राजा वीरधवल पर आक्रमण किया था। दोनों बार दोनों राजाओं से मुँह की खाकर गया था। अब उसमें इतनी सामर्थ्य नहीं है, जो कभी हम दोनों के विरुद्ध सिर उठाये।"

छह दिन बाद सातवें दिन महाबलकुमार मित्र गुणसेन के साथ लौटा। माता-पिता उससे कुछ पूछें कि उसने पहले ही बता दिया—

"क्या करें मार्ग भूल गए थे हम दोनों। दिशाबोध ही नहीं रहा। एक वन तो ऐसा आया कि तीन दिन में उसका अन्त आया। खाने को मिले झरबेरी के बेर और कैथ।"

"सुबह का भूला शाम को लौट आये तो भूला नहीं माना जाता।" राजा सुरपाल बोले—"लेकिन तुम तो ऐसे भूले कि छह दिन बाद लौटे हो।"

"सप्ताह का प्रत्येक दिन छह दिन बाद ही तो लौटता है पिताजी!" महाबल बोला—"भूला व्यक्ति देर-सबेर जब भी लौटे, तभी ठीक है।"

"ठीक तो है, पर देर से लौटने वाला भूला माना जाता है।" राजा सुरपाल बोले—"और सुबह का भूला शाम को लौटने वाला भूला नहीं माना जाता।"

"तुम पिता-पुत्र तो इतनी भारी भूल को विनोद में ही उड़ा दे रहे हो।" महारानी पद्मावती बोली—"घूमने जाना है तो अपनी ननसाल वसंतपुर जाओ। मेरे पिताश्री और तुम्हारे नाना महाराज अजितसेन का दूत आया था कि यहाँ आकर महाबल कुछ राजनीति सीखे। लेकिन मैं तुम्हें वनों में नहीं भटकने दूँगी।"

"किसी भी राज्य में जाओ, पर वहाँ तक पहुँचने के लिए वनों में होकर तो गुजरना ही पड़ता है।" महाबल बोला—"वसंतपुर आने के लिए तीन वन पार करने पड़ते हैं।

"वसंतपुर भी जाओ।" राजा सुरपाल बोले—"पर अब की बार वसंतोत्सव पर भेंट देने के लिए तुम्हें चन्द्रावती नगरी भी जाना है। वहाँ के राजा वीरधवल हमारे मित्रों में से हैं।"

"चन्द्रावती नगरी पहुँचने के लिए तो पूरे पचास कोस का वन मार्ग तय करना पड़ता है।" महाबल बोला—"माँ कहती हैं कि वे मुझे वनों में नहीं भटकने देंगी।"

"नियमित चलने वाले मार्ग के वन निरापद होते हैं। उनमें होकर जाने के लिए मैं कब मना करती हूँ ?" महारानी पद्मावती बोलीं—"मैं तो भयानक वनों में जाने से रोकती हूँ। काम्यक वन का नाम तो सुनते ही हो। उस वन में कभी न जाना। भयंकर हिंस्र जीवों से भरे उस वन में भूत-प्रेत और व्यंतर भी रहते हैं। वहाँ जाने वाला कभी नहीं लौट पाता।"

"अच्छा माँ ! मैं उस वन में कभी नहीं जाऊँगा।" महाबल बोला—"पर रम्य रमणीक वनों में जाने की अनुमति तो दीजिए। गुणसेन अपने माता-पिता से अनुमति लेने गया है और आप मुझे दीजिए।"

"नहीं महाबल ! तीन महीने तक तुम कहीं नहीं जाओगे।" महाराज सुरपाल बोले—"इन तीन महीनों में मुझे तुम्हारा युवराज पद का अभिषेक करना है। आस-पास, दूर-सुदूर—सभी जगह निमन्त्रण भेजने हैं। अभिषेक की तैयारियाँ करनी हैं। युवराज पद का भार लेने के बाद ही मैं तुम्हें कहीं जाने की अनुमति दूँगा।"

"जैसी आपकी आज्ञा।" कहकर महाबल मंत्रिपुत्र गुणसेन के पास चला गया और माता-पिता से हुई बातचीत का सार बताने के बाद बोला—

"मित्र ! कुछ भी हो जाए, एक बार काम्यक वन में अवश्य चलेंगे।"

"हिंस्र जीवों से रक्षा तो हो जाएगी।" गुणसेन बोला—"पर व्यंतर और भूत-प्रेतों से पार पाना बड़ी टेढ़ी खीर है।"

"क्या पता किसी व्यंतर या यक्ष से कुछ काम ही बन जाए।"

"हाँ काम तो तुम्हारा बन सकता है।" गुणसेन बोला—"लेकिन व्यंतर या यक्षों से नहीं, सिद्ध योगी, ज्ञानी-विज्ञानियों से बन सकता है। मैंने यह भी सुना है कि काम्यक वन में सिद्धियां-प्राप्त योगी रहते और साधना करते हैं। परकाया-प्रवेश और रूप-परिवर्तिनी विद्याओं के प्रयोक्ता सिद्धयोगी एक दो वहाँ अवश्य है।"

"तो हिंसक जीव इन्हें हानि नहीं पहुँचाते होंगे ?" महाबल ने पूछा—"जैसे ये बचे रहते हैं, वैसे ही हम भी बच जाएँगे।"

"इनके पास अहिंसा का कवच रहता है।" गुणसेन बोला—"अहिंसा के सामने सिंह तलवे चाटने लगता है और हिंसक के लिए सीधी-सादी गाय भी सिंहनी बन जाती है।"

"फिर तो हम काम्यक वन अवश्य जाएँगे।" महाबल बोला—"काम्यक वन में सिद्धयोगियों से मिलेंगे। हाँ, एक बात तो बताओ, तुमने कहा था कि काम्यक वन में ज्ञानी और विज्ञानी भी रहते हैं। ज्ञानी और विज्ञानी में क्या अन्तर है ?"

"इसे मैं एक उदाहरण से समझा सकता हूँ।" गुणसेन बोला—"पोखर का पानी दूषित और पीने योग्य नहीं होता तथा कुएँ का जल शुद्ध और पीने योग्य होता

है, इसको जानने वाला ज्ञानी होता है। लेकिन जो यह जान लेता है कि पांखर और कुएँ का जल तत्त्व एक ही है—दोनों का भेद बाहरी है, वह विज्ञानी है।

"महाबलकुमार! जो यह जानता है कि ये धर्माराधक मुनि हैं और यह मिथ्यात्वी और संसारी जीव है, वह ज्ञानी है लेकिन जो यह भी जानता है कि मुनि और संसारबद्ध जीव की आत्मा एक जैसे प्रकाश वाली, अजर-अमर, सच्चिदानन्द और परमात्मस्वरूप है, वह विज्ञानी है। ज्ञान के बाद जो विशेष ज्ञान है, वही विज्ञान है।

"तुम तो मुझसे बहुत ज्यादा जानते हो।" महाबल ने कहा—"तुमसे और भी कुछ पूछूंगा।"

"अपने से छोटों को मान देना आपका स्वभाव है मित्र!" गुणसेन ने महाबल से कहा—"ज्ञान में आपकी बराबरी कौन कर सकता है? मैंने जो कुछ जाना है, आपके संग-साथ से ही जाना है।"

× « ×

पृथ्वीस्थानपुर के युवराज महाबल और महामात्य बुद्धिसार के पुत्र गुणसेन—दोनों एक वृक्ष के नीचे बैठे विश्राम कर रहे थे। दोनों के घोड़े घास चरकर बैठे थे। महाबल ने बात छेड़ी—

"काम्यक वन में अभी तो कोई मिला नहीं; न योगी, न यती।"

"मिल जाएगा।" गुणसेन बोला—"अभी हमने पूरा वन देखा ही कहां है? चलो चलते हैं, आगे चलें। विश्राम तो हो चुका।"

दोनों मित्र उठे और घोड़े तैयार करके चल दिये। रास्ते में बातें भी करते जाते थे। जब थक जाते या रात हो जाती, वृक्ष-मूल में सो जाते। साथ में कुछ दिन के लिए टिकाऊ भोजन था, उससे काम चल रहा था। वन में जाने-पहचाने मीठे फल भी थे। उनको भी खा लेते। काम्यक वन कहीं विरल और कहीं सघन था। कहीं-कहीं टोले-टेकरियां और गुफाएं भी थीं। आठ दिन तक वन में भटकने के बाद उन्हें एक आश्रम जैसा दिखाई दिया।

केले के वृक्षों से शोभित एक आश्रम। दो पेड़ आम के भी थे। पास में सरोवर था। पहाड़ी उपत्यका के एक भाग में स्वतः ही एक कोणी-सी बनी थी, जिस पर प्रकृति निर्मित शिलाखंडों की छत बनी हुई थी। दाढ़ी, मूंछ और सिर के बाल—जिनके केश सफेद धवल थे, ऐसे एक वृद्ध कृशकाय तपस्वी को महाबल और गुणसेन ने देखा। तपस्वी ध्यान में बैठे थे। दोनों मित्र तपस्वी के सामने बैठ गए। जब तपस्वी ने आंखें खोलीं तो कुछ मुद्रा में बोले—

"क्यों, क्या तुम दोनों मेरी साधना में विघ्न डालने आये हो ? क्या चाहते हो ?"

"आपका अनुग्रह।" महाबल बोला—"साधु का क्रोध भी कल्याणकारी होता है।"

"तुम दोनों राजवंश के भूषण लगते हो।" तपस्वी पद्माचार्य ने नरम पड़कर कहा—"मैं अकिंचन तुम्हें क्या दे सकता हूँ ?"

"आप हमें अपनी सेवा का अवसर अवश्य दे सकते हैं।" गुणसेन बोला—"क्या इतना भी हमें न मिलेगा ?"

"अभी कुछ खा-पी लो। बाद में बातें होंगी।" पद्माचार्य ने कहा—"इस भयंकर वन में आने का तुमने साहस नहीं, दुस्साहस किया है।"

पद्माचार्य का अपना ऐसा कोई काम नहीं था, जिसे महाबल या गुणसेन पूरा करते। पद्माचार्य अपने सभी कार्य स्वयं करते थे। हाँ, आश्रम की झाड़-बुहार महाबल और गुणसेन अवश्य कर देते। विश्राम के क्षणों में सत्संग भी होता।

एक दिन महाबल ने पूछा—

"महात्मन् ! आप तो परकाया-प्रवेश विद्या भी जानते हैं। क्या यह विद्या आप मुझे दे सकते हैं ?"

"जानकर भी मैं इस विद्या का प्रयोग नहीं करता।" पद्माचार्य बोले—"ये क्रियाएँ साधक के मूल लक्ष्य—मोक्ष या भगवत्स्वरूप की प्राप्ति में बाधक हैं। कुछ अलभ्य-दुर्लभ विभूतियाँ मुझे स्वतः ही प्राप्त हुई हैं। मैं उन्हीं में अटक-भटक जाता तो साध्य की ओर नहीं चल पाता। अब तो सुमिरन में ही अधिक समय देता हूँ।"

"सुमिरन से क्या तात्पर्य है भगवन्?" महाबल ने पूछा—"सुमिरन से क्या प्राप्त होता है ?"

पद्माचार्य कहने लगे—

"अहं को मिटा देना सुमिरन है। सुमिरन में व्यक्ति भीतर के संसार में रहता है। बाहर की जाग, बाहर का होश या बाहर की चेतना ही अहं है। भीतर की जागरणा, अपने स्वरूप में स्थित होना सुमिरन है। मैं का विलय होते ही साधक को सच्चिदानन्द आत्म तत्त्व के स्व-स्वरूप का बोध होने लगता है।"

"हाँ तो तुम परकाया-प्रवेश की बात कह रहे थे।" पद्माचार्य ने पुनः कहना शुरू किया—"इस विद्या का प्रायः लोग दुरुपयोग करते हैं। इसलिए यह विद्या मैंने किसी को नहीं दी। फिर मेरे पास आता ही कौन है ? पहली बार तुम आये हो। फिर भी मैं तुम्हें कुछ तो दूँगा ही।

"युवराज ! रूप बदलने वाली मेरे पास एक ही गुटिका है। सोच नहीं पाता तुम दोनों में से किसे दूँ। गुटका एक है लेने वाले दो।"

"इसके अधिकारी युवराज ही हैं।" गुणसेन बोला—"एक-न-एक दिन ये पृथ्वीस्थानपुर के राजा बनेंगे। प्रजा के सुख-दुःख जानने के लिए ये वेश बदलकर घूमेंगे। रात में ही घूम सकते हैं। लेकिन अब इनके पास रूप-परिवर्तिनी गुटिका होगी तो ये दिन में भी रूप बदलकर घूम सकते हैं। फिर इन्हें कौन पहचानेगा? यह गुटिका एक राजा के लिए ही उपयोगी है।"

"मैं जो गुटिका दूँगा, उसको मुँह में रखकर आप किसी देखे हुए व्यक्ति का स्मरण करें—स्त्री या पुरुष किसी का भी करें आप उसी रूप के—बिल्कुल वही हो जाएँगे। जब गुटिका मुँह से बाहर करेंगे, तब पुनः अपने रूप में आ जायेंगे।" इतना कह पद्माचार्य ने आगे गुणसेन को सम्बोधित करते हुए कहा—"लेकिन अपने साथ तुम्हारा रूप भी ये बदल सकेंगे। मेरे पास एक ऐसी जड़ी भी है कि आम के रस में घिसकर ये तुम्हारे तिलक लगायें तो तुम पुरुष से स्त्री बन जाओगे। स्त्री के तिलक लगायें तो वह पुरुष बन जाएगी। जब ये अपनी जीभ से तिलक को मिटायेंगे, तभी निज रूप प्राप्त होगा।"

महात्मा पद्माचार्य ने रूप बदलने वाली गुटिका और लिंग परिवर्तन करने वाली जड़ी—दोनों चीजें महाबल को दे दीं। आचार्य को प्रणाम कर दोनों वापस चल दिये। मार्ग में महाबल ने गुणसेन से कहा—

"मैं योगी पद्माचार्य का रूप बदलूँगा। देखकर तुम बताना कि कैसा लगता हूँ मैं।"

योगी-प्रदत्त गुटिका मुँह में रखकर महाबल ने मन में सोचा—'मैं अपनी माता महारानी पद्मावती बन जाऊँ।'

देखते-देखते महाबल महारानी पद्मावती बन गया। वही रूप, वैसे ही वस्त्राभूषण और सब कुछ वही। देखकर गुणसेन चकराया—

"चमत्कार है युवराज! लेकिन आपने तो योगी पद्माचार्य का रूप बदलने को कहा था?"

मुँह में से गोली निकालकर महाबल अपने निज रूप में आ गया और गुणसेन से बोला—

"पहले तो यही सोचा था कि मैं पद्माचार्य योगी का रूप रखूँ, फिर मेरी अन्तरात्मा ने मुझे धिक्कारा कि यह तो आचार्य का अपमान होगा। पद्माचार्य रूप से नहीं, स्वरूप से बनना होगा और स्वरूप-परिवर्तन साधना से ही होता है।

"अरे देखो, यहाँ पके आम भी हैं। आओ से कुछ आम तोड़ो। कुछ खा भी लेंगे और उस जड़ी की परीक्षा भी हो जायगी।"

बाणों से महाबल ने ही कुछ आम तोड़े। एक आम का रस निकालकर,

उसमें जड़ी को घिस कर गुणसेन के मस्तक पर तिलक किया तो वह स्त्री बन गया, लेकिन वस्त्र वही पुरुष के रहे। गुणसेन के वक्ष पर उरोजों का उभार हो गया। कंठस्वर भी नारी का हो गया। मुख पर भी नारी की छवि और अनुकृति भी आ गई। यह सब देख महाबल ने कहा—

"तुम ऐसे लगते हो, जैसे गुणसेन की बहिन गुणसुन्दरी हो। मुँह पर कुछ-कुछ गुणसेन की पहचान भी है। लेकिन अब तुम पूरी तरह स्त्री हो। पर तुम्हारे लिए एक जोड़ी स्त्री के वस्त्र साथ रखने पड़ेंगे।"

"मुझे क्या जरूरत है स्त्री बनने की?" गुणसेन बोला—"मुझे तो इस रूप में बड़ी झेंप लग रही है। तुम जल्दी मेरा तिलक मिटा दो।"

महाबल ने जीभ से गुणसेन के मस्तक पर लगे तिलक को मिटा दिया। वह अब अपने मूल रूप में आ गया।

"चलो, गुटिका और जड़ी दोनों का परीक्षण हो गया।" महाबल ने कहा—"ये दोनों मेरे राज्य-संचालन—शासन में बड़ी काम आयेंगी।"

"तुम्हारे पुण्य प्रबल हैं युवराज, जो ऐसे सिद्धयोगी के दर्शन हो गये।" गुणसेन बोला—"युवराज तो तुम बन ही गए हो। अब शासन का कुछ कार्य भी करोगे तो इनका उपयोग भी करो।"

"देखा जाएगा।" महाबल बोला—"अब तो नगर पहुँचने की जल्दी है। फिर मुझे तुम्हारे साथ चन्द्रावती नगरी भी तो जाना है—वहाँ के राजा वीरधवल को पिताश्री की ओर से भेंट देने। जब मैं युवराज बना था, तब अभिषेकोत्सव पर युवराज मलयकुमार काफी रत्न दे गए थे। मेरे जन्म पर उनके पिता राजा वीरधवल ने नीले रंग की रत्नों से जड़ी एक टोपी भेजी थी, जो अब भी रखी है। सोचता हूँ उनके लिए कुछ विशेष ले जाऊँ।"

"अभी तुम्हें विशेष या सामान्य देने का अधिकार ही कहाँ है?" गुणसेन ने कहा—"जैसे युवराज मलयकुमार अपने पिता महाराज वीरधवल की ओर से भेंट दे गए थे, वैसे ही आप अपने पिता महाराज सुरपाल की ओर से देने जाएँगे।"

"हाँ तुम ठीक कहते हो।" महाबल बोला—"जब मैं और मलयकुमार राजा बनेंगे तब आपस में आदान-प्रदान किया करेंगे।"

आठ दिन की लम्बी यात्रा के बाद महाबल और गुणसेन पृथ्वीस्थानपुर पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर महाराज सुरपाल बोले—

"महाबल! तुम दोनों पन्द्रह दिन के लिए कहकर गये थे और अब डेढ़ महीने में लौटे हो। तुम समय पर नहीं आये तो मैंने महामात्य बुद्धिसार को ही चन्द्रावती नगरी भेज दिया। आखिर कब तक ठहरता? अब तुम अपनी ननसाल वसन्तपुर जाना चाहो तो जा सकते हो।"

युवराज महाबल बोला—

"पिताजी ! युवराज बनने के बाद आपने मुझे कुछ दिन भ्रमण की अनुमति दी थी और कहा था कि उसके बाद मैं शासन के कार्य में हाथ बँटाऊँगा। अब मुझे कहीं नहीं जाना—वसन्तपुर भी नहीं। अब मैं दत्तचित्त से यहीं रहकर आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।"

"राजसिंहासन के निकट ही तुम्हारा युवराज का पीठ मैंने तैयार करा दिया है।" राजा सुरपाल बोले—"चाहो तो तुम अपनी अलग युवराज परिषद बनाकर अपना दरबार अलग जोड़ो। वैसे कुछ दिन हमारी राजसभा में ही बैठकर कुछ देखो, कुछ सीखो।"

युवराज महाबल अब नित्य राजसभा में अपने पीठ पर बैठता था। वह न्यायाधिकरण के निर्णय में भी परामर्श देता था। राजसभा में आने वाले व्यापारी, अन्य अतिथियों का स्वागत भी करता था। कुछ दिन तक यही क्रम चला। उस सभा में मन्त्रिपुत्र गुणसेन का अभी कोई आसन नहीं था। उसके पिता महामात्य बुद्धिसार ही राजा के निकट वाले कुछ नीचे आसन पर बैठते। गुणसेन का साथ न रहना महाबल को अखरता था, क्योंकि आगे चलकर उसे ही महाबल का मन्त्री बनना था। अतः पिता से अनुमति लेकर महाबल ने अपनी अलग सभा बनाई। उसमें वह गुणसेन को भी साथ रखता था। प्रातः से दोपहर तक युवराज पिता की राजसभा में बैठता था और संध्याकाल को वह अपनी युवराज-सभा जोड़ता था।

युवराज महाबल सात्त्विक वीर, पराक्रमी योद्धा, धर्म में निष्ठावान, परदुःख-कातर और सूझ-बूझ का धनी था। अब बहुत से न्याय-निर्णय उसी की युवराज सभा में होते थे। वह विद्वानों, कलाकारों और बड़ों को सम्मान देता था।

अपने पुत्र को सब तरह से योग्य देख अब महाराज सुरपाल उसका विवाह करना चाहते थे। लेकिन कहीं से भी किसी का विवाह प्रस्ताव नहीं आया था। इसके लिए वे क्या करते ? कहीं से किसी स्वयंवर का निमन्त्रण भी नहीं आया था। महाराज सुरपाल तो यहाँ तक चाहते थे कि किसी राजकन्या से विवाह न हो तो किसी श्रेष्ठिकन्या से ही हो जाए। कहाँ तो वे अपने पुत्र महाबल के लिए विवाह करना चाहते थे और कहाँ एक के लिए भी कहीं से कोई सम्बन्ध नहीं आ रहा था। बहुत सोच-विचार के बाद राजा सुरपाल ने सोचना ही बन्द कर दिया और यही सोचकर सन्तोष किया कि समय से पहले और भाग्य के विरुद्ध कभी कुछ नहीं होता।

⁂

८

चन्द्रावली के राजा वीरधवल की कुलदेवी मलयादेवी थी। महारानी सौदामिनी के साथ हुए विवाह के अनन्तर जब उनको दस वर्ष तक भी सन्तान नहीं हुई थी तो उन्होंने महारानी सहित अपनी कुलदेवी मलया की उपासना की थी। उपासना से देवी प्रसन्न तो हुई, पर उन्हें सन्तान नहीं दे सकी। देवी ने राजा-रानी दोनों को सपने में बताया। पहले उसने राजा से कहा—

"राजन्! देवी-देवताओं की शक्ति-सामर्थ्य कर्मबंध, भाग्य या प्रारब्ध को नहीं बदल सकती। देवों के वरदान से जो कुछ मिलता है, वह भी कर्मयोग से मिलता है। मनुष्य के भाग्य का ऐसा ही विधान होता है कि वह अमुक देव या देवी के वरदान से अमुक वस्तु प्राप्त करेगा। मैं अपने अवधिज्ञान से इतना जानती हूँ कि तुम्हारा दूसरा विवाह भी होगा और तुम्हारे एक नहीं दो सन्तानें होंगी। भाग्योदय की प्रतीक्षा करो।"

फिर मलयादेवी ने रानी सौदामिनी से स्वप्न में कहा—

"धैर्य धारण किये रहो। तुम माता बनोगी। तुमने मेरी अर्चना बड़ी निष्ठा से की है। इसके लिए मैं तुम्हें 'लक्ष्मीपुंज' नामक दिव्य हार देती हूँ। इस हार में नवग्रहों के कुप्रभाव को नष्ट करने वाले नवरत्न हैं। इस दिव्य हार को धारण करने वाला संकटों से मुक्त रहेगा। शत्रु उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे। इस हार के खो जाने पर ग्रहों का कुप्रभाव हार पहनने वाले पर हावी हो जाएगा। यह लक्ष्मीपुंज हार तुम्हें अपनी शय्या पर ही मिल जाएगा।"

राजा-रानी—दोनों ने प्रातः एक दूसरे को अपना-अपना सपना सुनाया। रानी ने दमकता-चमकता दिव्य लक्ष्मीपुंज हार राजा को दिखाते हुए कहा—

"हमारी कुलदेवी कितनी सच्ची है। देखो, कैसा दिव्य हार है। ऐसा हार यहाँ मानवलोक में कहाँ मिल सकता है।"

"लाओ मैं तुम्हें पहनाऊँ।" राजा वीरधवल ने कहा—"देखूँ, तुम्हें कैसा लगता है।"

"नहीं-नहीं।" रानी कुछ पीछे हटते हुए बोली—"यह हार ऐसे नहीं पहनूँगी। स्नान करके पहले देवी के आयतन में जाकर उसकी अर्चना करूँगी, तब इसे आप पहनाना। लेकिन मैं एक बात और भी सोचती हूँ·····

"स्वामी! यह दिव्य हार हम अपनी सन्तान को ही पहनायें तो कैसा रहे।"

"जब तक सन्तान न हो, तब तक तुम्हीं पहनो। देवी ने तुम्हें ही दिया है।" राजा वीरधवल बोले—"जब सन्तान हो जाए तो उसे पहना देना। तब तक इस हार का तुम ही उपयोग करो।"

फिर रानी सौदामिनी ने कुलदेवी मलया की अर्चना करके देवी प्रदत्त 'लक्ष्मी-पुंज' हार पहन लिया। इसके छह महीने बाद राजा वीरधवल का दूसरा विवाह गज-पुर के राजा चन्द्रयशा की पुत्री अनंगवती के साथ हुआ। दूसरे विवाह के चार वर्ष बीतने पर भी राजा पिता नहीं बने। छोटी रानी अनंगवती वंध्या करार दे दी गई। पहले विवाह के चौदह वर्ष बाद मलय पर्वत पर भ्रमण करने का स्वप्न देखकर पहली ही रानी सौदामिनी ने दो सन्तानों को जन्म दिया। मलयगिरि का स्वप्न देखने के कारण राजकुमार का नाम मलयकुमार और राजकुमारी का नाम मलयासुन्दरी रखा गया।

धीरे-धीरे मलयासुन्दरी जब सोलह वर्ष की हुई तो उसकी और उसके भाई मलयकुमार की सोलहवीं वर्षगाँठ बड़ी धूमधाम से मनाई गई। जनमानस में तो प्रसन्नता थी ही, राजा-रानी विशेष प्रसन्न थे। नगरी में बहन-भाई की शोभायात्रा भी निकाली गई। राजा वीरधवल और उनकी दोनों रानियाँ—सौदामिनी और अनंगवती मलयकुमार और मलयासुन्दरी के साथ ही रथ में बैठे थे। रथ में बैठी-बैठी रानी सौदामिनी सोच रही थी कि कहाँ तो मैं सन्तान के लिए तरसती थी और कहाँ अब मेरा पुत्र और पुत्री सोलह वसन्त देख चुके। हाँ, मलया तो अब विवाह योग्य भी हो गई।

रथ में बैठे पाँचों प्राणी कुछ-न-कुछ सोच रहे थे। स्वाभी मन में पुरानी बातें एक के बाद एक आती रहती हैं। इसी समय राजा वीरधवल सोच रहे थे—

'मलयासुन्दरी का नाम कितना सार्थक बन गया, यह तो मैं भूल ही गया था कि 'मलया' हमारी कुलदेवी भी है। मेरी पुत्री मलयासुन्दरी के रूप में कुलदेवी मलया का आशीर्वाद ही साकार हुआ है। वैसे हमने इसका मलया नाम तो मलय पर्वत का स्वप्न देखने के कारण रखा था, पर अब तो कुलदेवी के नाम पर भी हो गया। कुलदेवी ने अपने अवधिज्ञान से कहा भी था कि कभी-न-कभी मैं पिता अवश्य बनूँगा।'

चन्द्रावती नगरी के मुख्य मार्गों पर होता हुआ रथ राजमहल पर आ गया।

पीछे-पीछे वाद्य बजते जाते थे। रथ से उतरने के बाद रानी सौदामिनी ने अपने गले का लक्ष्मीपुंज हार मलयासुन्दरी के कंठ में डाल दिया और बोली—

"यह दिव्यहार मैं तेरे विवाह पर देना चाहती थी। पर अब वर्षगांठ पर ही दे रही हूँ। विवाह योग्य तो तू हो ही गई। बेटी, कुलदेवी मलया की प्रसन्नता के प्रतीक उसी के दिये हुए इस हार को प्रेम से रखना। इसे खो मत देना। इस हार में तेरा ही नहीं, हमारा भी मंगल होगा। इसे पहन कर तू अपनी ससुराल जायेगी, वहाँ भी यह हार तेरा और तेरे पति—सास-श्वसुर—सभी का मंगल करेगा।"

महारानी सौदामिनी द्वारा मलयासुन्दरी को लक्ष्मीपुंज हार पहनाते देख छोटी रानी अनंगवती जल-भुनकर राख ही बन गई। उसने निश्चय किया, जैसे भी हो, मैं इस हार को मलया के पास नहीं रहने दूँगी। अपने खण्ड में पहुँचने के बाद रानी अनंगवती ने अपनी अन्तरंग दासी और अपनी जैसी ही मायाविनी तारिका से कहा—

"तारिका, यह काम तुझे करना है। मलया कभी उद्यान में जलक्रीड़ा करने जाए या यहां महल में ही स्नान करे, तब तू उसके लक्ष्मीपुंज हार को उड़ा लेना। मैं नहीं चाहती कि मलयासुन्दरी का मंगल हो। इस हार को मैं पहनूंगी। मैं करूंगी अपना मंगल।"

"लेकिन इसे आप पहन कैसे पायेंगी?" तारिका बोली—"चोरी की चीज का प्रयोग खुलकर कौन कर सकता है?"

"हाँ, पहन तो नहीं पाऊँगी, पर मेरे पास तो रहेगा।" रानी अनंगवती बोली—"रात में तो पहन ही सकती हूँ?"

"रात में जब कभी महाराज आपके खण्ड में आ गये और उन्होंने इसे आपको पहने देख लिया तो गजब हो जायेगा।"

"ये महाराज ही तो मेरे अमंगल की जड़ हैं तारिका!" रानी अनंगवती ने निःश्वास छोड़ते हुए कहा—"इतने दिन रानी सौदामिनी इसे पहने रही तो उन्होंने कभी यह न सोचा कि अब इसे छोटी रानी को दे दें। अब भी यह नहीं कहा कि इसे मलयासुन्दरी को मत दो, छोटी रानी अनंगवती को दे दो। मलया के विवाह पर तो मैं ही उसे यह हार दे देती। मलयादेवी ने दिया है यह हार तो मलयादेवी मेरी नहीं है? यह तो पूरे राजवंश की कुलदेवी है।"

"कुलदेवी मलया का दिया हुआ हार मलया को ही मिल गया।" तारिका बोली—"एक मलया देवी है और दूसरी मलयासुन्दरी है, पर हैं तो दोनों मलया। एक कुलदेवी और दूसरी कुल की उजियारी।"

"चुप ताड़का। सचमुच तू तारिका नहीं, ताड़का है ?" रानी अनंगवती उत्तेजित हुई—"याद है गजपुर में मैंने तुझे चोटी पकड़ कर घुमाया था। मेरे घाव पर नमक छिड़कती है तू ?"

"आप तो मेरी हँसी का बुरा मान गईं ?" तारिका बोली—"तारिका हूं या ताड़का—मैं तो आपकी दासी हूँ। आप चोटी पकड़कर मारें या घुमायें। मैं गजपुर से यहाँ आपकी बनकर ही आई हूँ।"

अनंगवती ने तारिका को गले से लगा लिया और नरम पड़कर बोली—

"पगली, बुरा मान गई ? मैंने तुझे कब समझा है दासी ? तू तो मेरी सखी है, सखी। दासियों की यहाँ क्या कमी थी ? मैं तुझे गजपुर से साथ लाई थी तो सखी बनाकर लाई हूँ।

"तारिका ! जाने क्या बात है कि मलया मुझे सौत सौदामिनी से भी ज्यादा खटकती है। वर्षों से सौत सौदामिनी लक्ष्मीपुंज हार पहने रही तो मुझे बुरा नहीं लगा। पर आज मलयासुन्दरी ने पहना तो मेरे तन-बदन में आग लग गई है। मेरी आग को तू ही बुझा सकती है।"

"मलयासुन्दरी उस हार के लिए बहुत सावधान रहेगी।" तारिका बोली—"फिर भी मैं पूरा प्रयास करूँगी कि उससे लक्ष्मीपुंज हार को उड़ाकर आपको सौंप दूं।"

"वह हार पाकर मैं यहाँ नहीं रहूँगी।" अनंगवती बोली—"यहाँ रहकर यदि भेद खुल गया तो महाराज हम दोनों की बड़ी बुरी गति करेंगे।"

"फिर भी आप राजरानी हैं। राजसिंहासन के अर्धांग पर पार्श्व में बैठती हैं।" तारिका बोली—"इतना सम्मान और कहाँ पायेंगी ? पति से अलग हुई नारी डाल से टूटे हुए पत्ते के समान हो जाती है।"

"पत्ता टूटने से पेड़ भी तो सूना हो जाता है।" रानी अनंगवती बोली—"पेड़ की शोभा भी पत्ते से है। पत्ते बिना यह भी पहचान नहीं होती कि वह किसका पेड़ है। पत्नी के अलग होने से पति भी निरर्थक हो जाता है। पेड़ से टूटा पत्ता सम्मान का पात्र भी हो सकता है। बिल्वपत्र—बेल के पत्ते शंकरजी पर चढ़ाये जाते हैं। क्या पता, अन्यत्र मेरा और भी ज्यादा सम्मान हो।"

रानी अनंगवती की इस बात का उत्तर देना तारिका ने उचित नहीं समझा। उसने सोचा कि अब यदि मैं इसके विरुद्ध कुछ कहूँगी तो यह पुनः उत्तेजित होकर मुझे ताड़का कहेगी। इससे तो अच्छा है कि इसकी हां-में-हाँ मिलाऊँ। यह सोच, तारिका मौन ही रही और बोली—

"आज आप कुछ मैरेय पी लीजिए। कुछ शान्ति मिल जाएगी।"

"नहीं री नहीं ।" अनंगवती बोली—"रात को नगरसुन्दरी चन्द्रसेना का नृत्य देखने मुझे महाराज और सौत सौदामिनी के साथ बैठना पड़ेगा । तनिक भी गंध आ गई तो अनर्थ हो जाएगा । अब तो कभी-कभी महाराज मेरे खण्ड में आ भी जाते हैं । जब जान लेंगे कि मैं मैरेय पीती हूं तो कभी नहीं आयेंगे ।"

"अरे हाँ, आज चन्द्रसेना का नृत्य होगा ।" तारिका बोली—"बड़ा सुन्दर नाचती है । बंग देश के कलाकार आर्य सुशर्मा आये थे, उन्होंने चन्द्रसेना का ऐसा बीभत्स चित्र बनाया कि बेचारी रोने लगी ।"

"आर्य सुशर्मा कब गए ?" अनंगवती ने पूछा—"उन्होंने राज परिवार के भी तो चित्र बनाये थे, वे सब कहाँ है ? बड़े ऊँचे कला-साधक हैं आर्य सुशर्मा । जिस व्यक्ति को एक बार देख लेते हैं, उसका हूबहू यथार्थ चित्र आँखों पर पट्टी बाँधकर बनाते हैं ।"

"सभी चित्र अभी महामात्य के संरक्षण में हैं ।" तारिका बोली—"आपने यह नहीं पूछा कि चन्द्रसेना अपने बीभत्स चित्र को देखकर क्यों रोने लगी ।"

"तो फिर बता ।" अनंगवती बोली—"ऐसा उन्होंने चन्द्रसेना का यथार्थ चित्र नहीं बनाया था ?"

"यथार्थ ही तो बनाया था ।" तारिका बोली—"येन केन प्रकारेण चन्द्रसेना ने सुशर्मा को इसके लिए वचनबद्ध कर लिया कि वे उसका निर्वस्त्र—निरावरण यथार्थ चित्र बनायें । आर्य सुशर्मा ने चन्द्रसेना को संकेत भी दिया कि वचनबद्ध होने के कारण मैं आपका निर्वस्त्र चित्र तो बना दूँगा, पर आप उसे देख नहीं पायेंगी । ऐसा ही हुआ । चित्र देखकर चन्द्रसेना रो पड़ी । हड्डियों का ढाँचा—नर कंकाल चित्रित किया आर्य सुशर्मा ने और बोले—त्वचा भी तो एक आवरण है । त्वचा के भीतर ही मानव का यथार्थ चित्र ढका रहता है । उस चित्र की कल्पना ही तो मुनियों को—धार्मिक और संतों को नारी-देह से दूर करती है ।"

"ये सब बातें तू कहाँ से सुन आती है ?" अनंगवती बोली—"ये सब बेकार की बातें हैं ।"

× × ×

महारानी सौदामिनी ने महाराजा वीरधवल से कहा—

"मलयासुन्दरी के लिए कोई योग्य वर देखोगे या स्वयंवर का आयोजन करोगे । अब वह विवाह-योग्य है ।"

"समझ में नहीं आता क्या करूँ ।" महाराज वीरधवल बोले—"स्वयंवर

तीन प्रकार का होता है। दो प्रकार का तो सार्थक है। पर तीसरे प्रकार की सार्थकता मेरी समझ में नहीं आती।"

"मैं तो एक ही प्रकार का स्वयंवर जानती हूँ।" महारानी सौदामिनी ने कहा—"दो और कौन-से होते हैं?"

राजा वीरबल बोले—

"पहले प्रकार का स्वयंवर तो वर के शौर्य परीक्षण के हेतु होता है। जैसे राजा जनक ने किया था कि जो शिवजी के धनुष को तोड़ेगा, उसी के साथ मैं सीता का विवाह करूँगा। राजा द्रुपद ने द्रौपदी के लिए भी राधावेध की कसौटी रखकर ऐसा ही स्वयंवर किया था। दूसरे प्रकार के स्वयंवर में कन्या अपनी किसी विशेष इच्छा का प्रचार करती है कि जो व्यक्ति मेरी अमुक इच्छा को पूरी करेगा, उसी के साथ मैं विवाह करूँगी। कन्या की इच्छापूर्ति के लिए अनेक राजा आते हैं। उनमें जो कन्या की इच्छा पूरी कर देता है, उसी के साथ उसका विवाह होता है। जैसे किसी राजा का राज्य कोई शत्रु राजा छीन ले तो राजा की पुत्री यह प्रतिज्ञा करे कि जो वीर मेरे पिता के राज्य को शत्रु राजा से छीनेगा उसी को मैं अपना पति मानूँगी। एक में कन्या का पिता पुत्री के हित में प्रतिज्ञा करता है, और दूसरे में कन्या अपने पिता के हित में प्रतिज्ञा करती है। तीसरे प्रकार का स्वयंवर तो सामान्य है। इसमें कन्या अपनी इच्छा से पसन्द करके वर चुनती है।"

"हमारी मलयासुन्दरी लाखों में नहीं करोड़ों में एक है। उसके भाग्य से उसी के अनुकूल रूपवान, वीर और धार्मिक युवराज स्वयंवर में आयेगा और वह उसका वरण करेगी। आप स्वयंवर का आयोजन ही कीजिए।"

"किसी के भाग्य का कुछ पता नहीं है।" राजा बोले—"जिस विधि ने मलया को पैदा किया है, उसी ने उसका वर पहले पैदा किया होगा। समय आने पर सब हो जाएगा। अब तो चलने की तैयारी करो। नृत्य मंच पर चन्द्रसेना आ चुकी है, हमारे चलने की ही देर है।"

मलयकुमार, मलयासुन्दरी, महाराज वीरबल, महारानी सौदामिनी और महारानी अनंगवती बराबर आसनों पर बैठे चन्द्रसेना का मोहक नृत्य देख रहे थे। आस-पास आगे-पीछे राजपरिवार, प्रजाजन आदि के लोग बैठे देख रहे थे—रूपसी नर्तकी चन्द्रसेना का नृत्य।

□

९

पूरे पृथ्वीस्थानपुर नगर में चर्चा थी कि बंग देश का एक अद्भुत चित्रकार आया है। आर्य सुशर्मा ही राजा सुरपाल की राजधानी पृथ्वीस्थानपुर पहुँचे थे। वे संध्या समय नगर की एक पांथशाला में ठहरे थे और दूसरे दिन स्वनिर्मित कुछ चित्र साथ लेकर सुशर्मा राजसभा में पहुँचे।

महाराज सुरपाल का राज दरबार लगा था। राजसिंहासन के कुछ पीछे वाम भाग में रानी पद्मावती बैठी थीं।

राजसिंहासन के बराबर किन्तु उससे नीचे भूमि मंच पर महामात्य बुद्धिसार का आसन था। उसी पंक्ति में राजसिंहासन के दोनों ओर महासेनापति, कलाध्यक्ष, राजपुरोहित, नगरसेठ आदि आमात्य जनों के आसन थे, जो अपने-अपने आसनों पर विराजमान थे। युवराज महाबल भी अपने आसन पर बैठे थे। तभी दौवारिक ने सूचित किया कि बंगदेशवासी चित्रकार आर्य सुशर्मा महाराजश्री के दर्शन करना चाहते हैं। महाराज सुरपाल ने महाप्रतिहार को आदेश दिया कि चित्रकार को ले आओ।

सभा में आकर सुशर्मा ने राजा को अभिवादन किया और सूर्यास्त का एक चित्र भेंट करते हुए कहा—

"अन्नदाता! इसे रात मैंने पांथशाला में बैठकर बनाया था।"

चित्र को देखकर महाराज सुरपाल दंग रह गए। उन्होंने देखा कि सूर्यास्त का वह चित्र वास्तविक था, कल्पित नहीं। पृथ्वीस्थानपुर के स्थान विशेष का वह चित्र था, जहां सूर्यास्त हो रहा था। महाराज सुरपाल ने कहा—

"यह तो हमारे नगर का ही सूर्यास्त है। हमारे नगर के पश्चिम में जो टेकरी है, वह मेरी कई बार की देखी-भाली है। उस स्थान का सूर्यास्त भी हमने देखा है। हूबहू वही स्थान, वैसा ही बिम्ब! अद्भुत है तुम्हारी कला।

"चित्रकार! यह चित्र तुमने रात को पांथशाला में बैठकर बनाया, यह और भी आश्चर्य की बात है।"

चित्रकार सुशर्मा ने बताया—

"राजन्! जब मैं आपके राज नगर में प्रवेश कर रहा था, तब मैंने यह सूर्यास्त देखा था। मैंने सूर्यास्त के दृश्य और आस-पास के वातावरण—टेकरी वृक्ष आदि को अपनी स्मृति में भर लिया और उसी के आधार पर यह चित्र बना दिया।

"पृथ्वीनाथ! मैं एक बार जिसे देख लूँ, देखकर मन में भर लूँ, उसका चित्र मैं आँखों पर पट्टी बाँधकर भी बना सकता हूँ।"

एक साथ 'वाह-वाह, कमाल है, कमाल है' के कई स्वर उभरे फिर महाराज ने ही कहा—

"तुम्हारी इस कला-साधना को हम कब देख सकते हैं?"

"आज, अभी।" चित्रकार बोला—"राजसभा के किस सभ्य का चित्र अंकित करूँ?"

"हमारे राजपुरोहित का।" राजा सुरपाल बोले—"इन्हें अच्छी तरह देखकर मन में भर लो।"

सुशर्मा अपने स्थान से उठा। राजपुरोहित कपिलदेव को एकटक देखकर अपने स्थान पर आकर एक चित्र फलक निकाला, जिस पर कि चित्र बनना था। फिर रंग की कटोरियों को निकाल कर इस क्रम से रखा कि लाल, हरे, पीले रंगों के क्रम का ध्यान रहे। हर कटोरी में तूलिकाएँ डाल दीं। चित्रफलक फैलाकर राजा से कहा कि वे उसकी आँखों पर पट्टी बाँध दें। राजा के संकेत पर महाप्रतिहार ने अपने उत्तरीय के तीन लपेट देकर चित्रकार की आँखों पर बाँध दिया। सबने जान लिया कि अब कुछ भी दीखने की संभावना नहीं है। पाँच घड़ी के अनन्तर सुशर्मा ने राजपुरोहित कपिलदेव का चित्र बनाकर तैयार कर दिया। राजा सुरपाल ने देखा तो दाँतों तले उँगली दबा गए। वही रूप, वही छवि, मूँछों के बालों का बिचड़ीपन उष्णीष से बाहर निकलता हुआ एक सफेद छल्ला ज्यों का त्यों। बारी-बारी से सभी ने वह चित्र देखा। राजपुरोहित अपना चित्र देखकर कहने लगे कि मुझे तो ऐसा लग रहा है कि मैं अपना बिम्ब दर्पण में देख रहा हूँ।

राजा सुरपाल ने अपना मूल्यवान कंठहार चित्रकार को देकर कहा—

"कला का मूल्यांकन करना कला का अपमान है। मेरी प्रसन्नता के लिए इसे स्वीकार करो।"

सुशर्मा ने वह हार लेकर मस्तक से लगाया और रख लिया। राजा ने इच्छा प्रकट की कि सुशर्मा राज परिवार के कुछ चित्र बनायें। चित्रकार ने बताया कि वह महाराज वीरधवल की राजधानी चन्द्रकान्ता नगरी से आ रहा है। वहाँ वह पन्द्रह

दिन रुका था। अब वह घर लौटने की जल्दी में है। फिर भी पांच दिन वहां भी रुकेगा और कुछ चित्र अवश्य बनायेगा। राजा सुरपाल ने आर्य सुशर्मा के ठहरने की व्यवस्था अपने विशिष्ट अतिथिगृह में कर दी।

दो दिन बाद सुशर्मा युवराज महाबल की सभा में गया और बोला—

"युवराजश्री! मैं आपसे एकान्त में भेंट करना चाहता हूं। जो बात मैं आपसे राजसभा में नहीं कह सका, उसे यहां आपकी सभा में भी कहना नहीं चाहता।"

'ऐसी क्या बात होगी?' युवराज महाबल ने मन-ही-मन सोचा, शायद कुछ धन की इच्छा हो, जिसे यह चित्रकार सबके सामने न कह पा रहा हो। पर ऐसे कलाकार को धन की क्या कमी रह सकती है?

बहुत सोचने पर भी महाबल कोई अनुमान नहीं लगा पाया कि चित्रकार अकेले में मिलकर क्या कहना चाहता है। उसने तत्काल अपनी सभा विसर्जित कर दी और सभा के पार्श्व में जो कक्ष था, उसमें चित्रकार को ले गया। जब दोनों आसनों पर बैठ गए तो चित्रकार सुशर्मा ने रेशमी वस्त्र में लिपटा एक चित्र महाबल को देकर कहा—

"इसे मैं एकान्त में भेंट करना चाहता था। मैं नहीं चाहता कि व्यर्थ में इधर-उधर चर्चा हो।"

राजकुमार महाबल के हाथ में मलयासुन्दरी का चित्र था। वह उसे एकटक देखता रहा और चित्र को देखते-देखते स्वयं भी चित्र-सा स्थिर हो गया— चित्रमय बन गया महाबल। सोचने लगा— 'यह कोई स्वर्गभ्रष्ट देव कन्या है या चित्रकार की बेजोड़ कल्पना। ऐसी सुन्दर रूपसी बाला इस धरा पर तो हो नहीं सकती।'

सुशर्मा ने महाबल की तल्लीनता तोड़ी—

"यह नहीं पूछोगे कि यह किसका चित्र है।"

"हां, किसका है?" चौंककर महाबल ने पूछा—"आपने किसकी कल्पना की है, उर्वशी या रंभा की अथवा विश्वामित्र को डिगाने वाली मेनका की?"

"यदि यह किसी की कल्पना होती तो मैं इसे आपके पास क्यों लाता?" सुशर्मा ने कहा—"इस चित्र को बनाये मुझे बीस दिन हो गए। इन बीस दिनों में तो यह और भी सुन्दर हो गई होगी, क्योंकि यह अंकुरित यौवना का चित्र है।

"युवराज! यह इस धरा की मानवी मलयासुन्दरी का यथार्थ चित्र है। मैंने इसे यह सोचकर अपने पास रख लिया था कि इसके उपयुक्त कोई राजकुमार मिलेगा तो उसे देकर इसकी ओर आकृष्ट करूंगा।

"युवराज! हम राजपरिवारों में जाने वाले चित्रकार सेतु रूप होते हैं। मैंने आपको देखा तो निश्चय किया कि मलयासुन्दरी यदि लक्ष्मी है तो आप विष्णु। यदि

वह रति है तो आप मन्मथ। आपको इसके योग्य और इसको आपके योग्य समझ मैंने अब आगे किसी राजा के राज्य में जाने का विचार ही बदल दिया है।"

"मुझे भी लगता है कि यह मलयसुन्दरी मेरी है।" महाबल बोला—"लेकिन मनचाही हर वस्तु मिल भी तो नहीं जाती। शिशुपाल रुक्मिणी को चाहता था, पर वह उसे मिली नहीं, मिली कृष्ण को।"

"शिशुपाल रुक्मिणी को चाहता था, पर रुक्मिणी तो शिशुपाल को नहीं चाहती थी।" चित्रकार सुशर्मा बोला—"जब दोनों एक दूसरे को चाहने लगें तो उन्हें मिलने से कोई नहीं रोक सकता।

"युवराज! उसे देखकर आपके मन में प्रेम का अंकुर जन्मा है तो आपको देखकर उसके मन में भी प्रेम जगेगा। फिर आपको एक होने से कौन रोक पायेगा। आप इससे मिलें और फिर इसके स्वयंवर में जाएँ तो यह आपका ही वरण करेगी।"

"स्वयंवर?" महाबल बोला—"कब होगा इसका स्वयंवर?"

"जानें कब होगा?" चित्रकार बोला—"कभी तो होगा—जल्दी ही होगा।"

"लेकिन यह है कौन?" महाबल ने पूछा—"आपने इसका परिचय तो दिया ही नहीं।"

"चन्द्रकान्ता नगरी के राजा हैं, वीरधवल।" चित्रकार सुशर्मा बोला—"उनके दो रानियाँ हैं—बड़ी सौदामिनी और छोटी अनंगवती। बड़ी रानी के पुत्र का नाम है युवराज मलयकुमार। यह चित्र मलयकुमार की सहोदरा—अनुजा मलयासुन्दरी का है।"

"बड़ा घुमा-फिराकर परिचय दिया आपने।" महाबल बोला—"यों कहो महाराज वीरधवल की कन्या है यह। महाराज वीरधवल तो मेरे पिता के मित्र हैं। वर्ष में एक बार हमारे यहाँ से उनको उपहार भेजे जाते हैं। पिछले वर्ष मुझे जाना था, पर जा नहीं पाया ·····।'

इतना कह महाबल आगे कुछ कहने से पहले बीच में सोचने लगा—'अच्छा हुआ जो पिछले वर्ष मैं नहीं जा पाया। अगर जाता तो योगीश्वर पद्माचार्य से रूप बदलने वाली गुटिका और लिंग-परिवर्तन करने वाली जड़ी कैसे मिलती ·····। अब रूप परिवर्तिनी गुटिका मेरे बड़े काम आयेगी ·····।"

बीच में इतना सोच महाबल ने आगे कहा—

"पिछले वर्ष मुझे चन्द्रकान्ता नगरी जाना था, पर जा नहीं पाया। इस बार

मंत्रियों के साथ मैं जाऊँगा। मलया मुझे चाहे या न चाहे, मुझे मिले या न मिले, पर मैं एक बार उसे प्रत्यक्षतः देखने का प्रयास अवश्य करूँगा।"

"अवश्य करो।" चित्रकार बोला—"मेरी शुभ-कामनाएँ आपके साथ हैं।"

अब तो महाबल मलयासुन्दरी के चित्र के पीछे पागल हो गया। रात में उसी के चित्र को लिये बैठा रहता। उसे देखता। देखते-देखते थक जाता तो रख देता और फिर देखने लगता। चित्र-दर्शन से उत्पन्न प्रीति कितना आकुल-व्याकुल कर देती है, यह मात्र महाबल ही जानता था। उसने मन की बात अपने मित्र गुणसेन को बताई तो उसने आश्वासन दिया—

"पूर्वविधान के अनुसार जिनका मिलन निश्चित है, उन्हीं के लिए अनुकूल संयोग बनते हैं। आपके लिए तीन संयोग तो तुरन्त बने हैं। पहला यह कि सुशर्मा ने आपको मलया का चित्र दिया। दूसरा यह कि मलया आपके पिताश्री के मित्र महाराज वीरधवल की कन्या है और तीसरा यह कि दो महीने बाद ही आपके मंत्री चन्द्रकान्त नगरी महाराज वीरधवल को भेंट देने के लिए जाने वाले हैं।"

"लेकिन यह तीसरा संयोग ही तो मेरे लिए वियोग बन गया है।" महाबल ने आह भरकर कहा—"चन्द्रवती नगरी को प्रस्थान करने से पूर्व के दो महीने कैसे कटेंगे? ये तो दो युग हो जायेंगे।"

"फल तो संतोष का ही मीठा होता है।" गुणसेन बोला—"मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा।"

"यह भी कोई कहने की बात है?" महाबल बोला—"मित्र दो शरीर एक प्राण होते हैं। तुम तो मेरी छाया हो।"

"आपकी छाया तो मलया है युवराज?" गुणसेन बोला—"जिसके चित्र-दर्शन मात्र से दो महीने दो युग बन रहे हैं, उस छाया के सामने गुणसेन क्या बेचता है?"

"मित्र अपनी जगह है और पत्नी-प्रेयसी अपनी जगह।" महाबल बोला—"तुम्हारा स्थान मलया नहीं ले सकती और तुम मलया का नहीं ले सकते।"

चित्रकार सुशर्मा यथासमय अपने देश को चला गया। राजा सुरपाल ने उसे पर्याप्त द्रव्य दिया था। उसने महारानी पद्मावती, महाराज सुरपाल आदि के कई यथार्थ चित्र बनाये थे।

□

१०

दो मंत्री, गुणसेन, महाबल और दो सेवक—छह व्यक्तियों ने दो रथों में चन्द्रावती नगरी के लिए प्रस्थान किया। तीस कोस के राजमार्ग और पचास कोस के वन मार्ग को पार कर छहों व्यक्ति वसंतोत्सव से तीन दिन पहले चन्द्रावती नगरी पहुँच गए।

महाबल ने मंत्रियों, गुणसेन आदि को अच्छी तरह समझा दिया था कि मैं एक श्रेष्ठिकुमार के रूप में राजा वीरधवल के सामने पहुँचूंगा। भूल से भी तुम लोग मुझे युवराज मत कह बैठना।

"लेकिन आप छिपना क्यों चाहते हैं?" गुणसेन ने जानकर भी अनजान बनते हुए कहा—"आप तो महाराज वीरधवल के विशेष अतिथि हैं, तो विशेष ही बने रहना चाहिए। युवराज के रूप में वे आपका अधिक सत्कार करेंगे।"

गुणसेन की यह असमय की छेड़-छाड़ देखकर महाबल झल्लाया—

"मैं यहाँ अपना सत्कार कराने नहीं आया हूँ। तुम जानते तो हो कि मैं क्यों मूल रूप में प्रकट होना नहीं चाहता। युवराज के लिए जो औपचारिकताएँ होंगी, वे मेरे लिए बोझ बन जाएँगी। मैं तटस्थ भाव से यहाँ की राजनीति समझने आया हूँ। श्रेष्ठि पुत्र के रूप में मैं नगरी का भ्रमण भी कर सकूँगा।"

"अब मैं सब समझ गया।" गुणसेन बोला—"हमारे साथ आये श्रेष्ठिकुमार का नाम क्या होगा?"

"विमलकुमार!" महाबल बोला—"पृथ्वीस्थानपुर के श्रेष्ठी धनसार के पुत्र विमलकुमार हमारे साथ आये हैं, आप सब को यही कहना होगा।"

राजनगरी चन्द्रावती पहुँच जाने के बाद छहों व्यक्ति राजसभा में गए। महाराज वीरधवल के पास ही महारानी सौभाग्यवती भी आसीन थी। सभी ने राजा को प्रणाम किया। राजा ने अभिवादन का उत्तर देने के बाद अपने मित्र राजा सुरपाल के कुशल समाचार पूछे और सब को अतिथि भवन में ठहरा दिया।

रात को एकान्त में महाबल ने गुणसेन से कहा—

"तू जानता था कि मलया को देखने के लिए गुटिका के प्रयोग से मैंने विमल कुमार का रूप बनाया था फिर तू सबके सामने क्यों पूछ रहा था ?"

"मंत्रियों को शंका न रहे, इसीलिए मैंने आपसे उनके सामने पूछा था।" गुणसेन बोला—"अब दोनों मंत्रियों को कोई शंका नहीं रही कि आप श्रेष्ठिपुत्र क्यों बने हैं।"

"पर अब उसके दर्शन कैसे हों ?" महाबल ने कहा—"राजमहल में कैसे जाऊँ ?"

"आपने राजसभा में महारानी सौदामिनी को तो देखा ही है।" गुणसेन बोला—"मुँह में गुटिका रखकर उन्हीं का रूप बना लीजिए और बेखटके राजमहल पहुँच जाइए। फिर तो मलया आपको मिल ही जाएगी।"

"हाँ, यह युक्ति ठीक है।" महाबल बोला—"उसके खण्ड में पहुँचकर गुटिका निकालकर निज रूप में उससे दो बातें करूँगा और उसके मन की जान लूँगा कि वह भी मुझे चाहती है या नहीं।"

फिर कुछ सोचकर महाबल पुनः बोला—

"लेकिन यह युक्ति भी ठीक नहीं रहेगी। मान लो महारानी सौदामिनी ही टकरा गई तो बड़ी विचित्र स्थिति हो जाएगी। और लोग भी देखेंगे कि ये दो महारानी सौदामिनी कहाँ से आ गईं। खैर, मैं ही कुछ सोचूँगा।"

दोपहर का समय था। महाबल ने अपने साथियों से कहा—

"मैं अकेला ही नगरी देखने जा रहा हूँ। आप लोग मेरी चिन्ता न करें।"

महाबल ने न गुणसेन को साथ लिया और न किसी सेवक को। वह उपवन से इस आशा से पहुँचा कि महल के झरोखों या वातायनों से शायद मलयासुन्दरी झाँके और उसके दर्शन हो जाएँ।

महाबल एक वृक्ष के नीचे बैठ गया और महल के वातायनों की ओर देखने लगा। संयोग से मलयासुन्दरी एक खिड़की पर आई और उसने महाबल को देखा तो देखती रह गई। महाबल ने भी उसे देखा तो मुँह से निकला—वही है, बिलकुल वही। चित्र से भी बहुत सुन्दर। चित्र यथार्थ नहीं था—बहुत घटिया था।"

महाबल का बड़बड़ाना मलया ने नहीं सुना। उसने मन में सोचा—"मैं कुमारी हूँ। कुमारी कन्या को किसी पुरुष के प्रति आकर्षित नहीं होना चाहिए। यदि आकर्षित हो भी जाए तो उसे पा लेना चाहिए।..... पर आकर्षित होना क्या मेरे हाथ की बात है ? लगता है यह युवक मेरा है, मेरे लिए ही यहाँ आया

है। पर है कौन ? क्या मैं इसे पा सकूँगी ? हे शासनदेव ! मेरी रक्षा करना।' यह सोच मलया ने आँखें बन्द कर ली और मन-ही-मन नवकार मंत्र का जाप करती हुई खिड़की से हट गई।

उसका यों वातायन से चले जाना महाबल को ऐसा लगा मानो पूनम के चन्द्र को एकाएक बदली ने ढक दिया हो अथवा बिजली कौंधकर लुप्त हो गई हो। फिर भी वह इस आशा से बैठा रहा कि बदली हटेगी तो पुनः चन्द्र दर्शन होंगे। बिजली फिर भी चमकेगी। बैठे-बैठे महाबल को दो घड़ी का समय बीत गया। पर वह निराश नहीं हुआ।

आशा की बयार का झोंका आया। बदली हटी और महाबल को पुनः चन्द्र दर्शन हुए। मलया पुनः वातायन पर आई। कुछ नीचे झुकी, इधर-उधर देखा। और भूर्जपत्र का एक टुकड़ा फेंककर चली गई। महाबल ने तुरन्त वह भूर्जपत्र उठा लिया और उसे पढ़ने लगा उसमें संस्कृत के श्लोक लिखे थे, जो मलया के हृदय के भाव थे। उनका अनुवाद भी था, जो इन पंक्तियों में अंकित था—

"जनम-जनम के साथी हो तुम,
लगता है यह मुझ को।
बार-बार कहता है मन यह,
कब देखा था तुझको॥
प्रीति पुरातन अगर न होती,
तो क्यों यों तुम आते।
आ भी जाते गले-बिछुड़े,
पर नहिं मन को भाते॥"

महाबल ने ये पंक्तियाँ बार-बार पढ़ीं और अन्त की पंक्ति पर जोर देकर सोचने लगा—'पर नहिं मन को भाते। मैं इसके मन को भा गया हूँ। कारण भी ठीक लिखा है कि हमारी पुरातन प्रीति है। मैं इसे चाहता था—चित्र देखकर ही चाहने लगा था और यह भी मुझे चाहती है। जब दोनों एक दूसरे को चाहते हों तो उन्हें मिलने से कौन रोक सकता है। मैं अब इसी वातायन के सहारे रात को महल में आऊँगा। सब सो जायेंगे; पर मलया जागेगी। मैं जानता हूँ कि वह मेरी प्रतीक्षा करेगी। उससे बातें किये बिना चैन नहीं मिलेगा। अपने निजी रूप में मैं उसे अपनी पहचान कराऊँगा। स्वयंवर में यह मेरा ही वरण करेगी। अब हम दोनों का मिलन बड़ी सहजता से हो जाएगा।'

× × ×

रात्रि का प्रथम प्रहर बीत चुका था। दूसरा प्रहर भी बीतने को था। सब निद्रा की गोद में बेसुध पड़े थे। महाबल उठा और चुपचाप राजमहल के पिछवाड़े उपवन में पहुँच गया। यह बड़ा उपवन तीन ओर से राजमहालय को घेरे हुए था। महल के पिछवाड़े के वातायनों में से एक वातायन में महाबल ने मलया का प्रथम दर्शन किया था। वह उसी वातायन से उसके कक्ष में जाना चाहता था, लेकिन वहाँ तक पहुँचने की कोई युक्ति समझ में नहीं आई। फिर उसने सभी वातायनों का निरीक्षण किया तो मलया के पहली बार देखने वाले वातायन से तीसरे वातायन के पास तक एक वृक्ष खड़ा था। महाबल ने सोचा—ये तीनों वातायन एक ही कक्ष के हैं। इसी वातायन से मलया के कक्ष में पहुँचा जा सकता है। महाबल पेड़ पर चढ़ते हुए वातायन से कक्ष में कूद पड़ा।

कक्ष में दीपक का प्रकाश था। गुलाबी वस्त्र देखकर महाबल को प्रसन्नता हुई—'इस गुलाबी परिधान में ही तो मलया वातायन से झाँकी थी। अब भी यही परिधान पहने है। मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी। मैं उसकी कविता को उसी के सामने पढ़कर पूछूँगा कि मैं तुम्हारे मन को क्यों भा गया।'

महाबल धीरे-धीरे शय्या की ओर बढ़ा तो आहट पाकर शय्यासीन सुन्दरी उठकर बैठ गई और महाबल को देख चीखी—

"कौन ? आप कौन हैं ?"

उस सुन्दरी को देख महाबल तो एकदम पसीने से तर हो गया। भय और आश्चर्य—दोनों से व्याकुल महाबल के मुँह से निकला—

"देवी क्षमा करें। मैं भूल से आपके कक्ष में आ गया।"

"महारानी अनंगवती के कक्ष में आकर तुमने जो भूल की, वह तुम्हारे लिए वरदान बन गई। डरो नहीं। बैठ जाओ।

"तुम इतने सुन्दर युवक हो कि तुम्हें देखकर देवकन्या भी तुम्हारा पानी भरेगी। मैं अनंगवती भी तुम पर न्यौछावर हूँ। लगता है तुम मेरे किसी जन्म के प्रियतम हो। तभी तो मैं तुम पर न्यौछावर हूँ। पहले मुझे भोग का दान दो फिर मैं तुम्हारा परिचय पूछूँगी। परिचय क्यों, मैं तुम्हारे साथ चलूँगी। जहाँ भी ले जाओगे, जैसे भी रखोगे—मैं तुम्हारी बनूँगी।"

महाबल ने देखा कि वीरधवल की छबीली रानी है तो सुन्दरी, पर बहुत गिरी हुई है। कोई नारी क्या इतनी जल्दी पुरुष के नीचे आ सकती है, यह मैं सोच भी नहीं सकता। फिर यह तो रानी है—विवाहिता है।

बहुत बुरा फँस गया महाबल। अब क्या करे, यह वह सोच नहीं पा रहा था। उसने सोचा, यदि मैं इसकी इच्छा पूरी न करूँ तो यह मेरा वध भी करा सकती है।

यदि इनके साथ भोग करूँ तो धर्म नष्ट होता है। मैं अपना वध ही करा लूँगा। पर धर्म को नष्ट नहीं होने दूँगा।

खड़ा-खड़ा महाबल परिस्थिति से निपटने का उपाय सोच रहा था और अनंगवती मुस्करा रही थी। वह उसे सोचने का अवसर दे रही थी और स्वयं सोच रही थी कि जाल में फँसा पंछी जाएगा कहाँ।

दूसरा विवाह करने वाले पुरुष प्रायः अपनी दूसरी पत्नी को कामतुष्ट नहीं कर पाते, ऐसा लोकानुभव है। महाराजा वीरधवल अनंगवती के खण्ड में बहुत कम आते थे, क्योंकि वे उसके व्यवहार से असंतुष्ट थे और वह वंध्या करार भी दे दी गई थी। जो भी हो, अनंगवती अतृप्त और काम कुण्ठा से भरी हुई नारी थी।

महाबल के गठे हुए शरीर और उठते यौवन को देखकर वह इतनी कामातुर हुई कि क्षणभर—मात्र क्षणभर के सुख के लिए लोक-परलोक दोनों बिगाड़ने को तत्पर हो गई।

महाबल को मौन देख वह शय्या से उठी और उसका हाथ पकड़कर बोली—

"क्या सोच रहे हो? मेरे पास शय्या पर बैठो।"

महाबल ने अपना हाथ छुड़ाते हुए कहा—

"मैं जो काम करने आया हूँ, मुझे अपना वह काम करने का अवकाश दो। फिर मैं तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी करूँगा।"

"क्या काम है?" अनंगवती ने पूछा।

महाबल बोला—

"राजकुमारी मलया को एक संदेश देना है।"

"किसका संदेश है?" अनंगवती ने पूछा—"क्या संदेश है?"

महाबल ने बताया—

"मैं संदेशवाहक दूत हूँ। दौत्यकार्य के नाते मैं आपके प्रश्नों का उत्तर अभी नहीं दे सकता। हाँ, संदेश देने के बाद लौटकर मैं आपको यह भी बता दूँगा कि किसका संदेश था और क्या संदेश था।"

महाबल चतुराई काम कर गई। अनंगवती उसके जाल में फँस गई। उसने कहा—

"अच्छा मैं आपको मलया के खण्ड तक पहुँचाये देती हूँ। लौटकर न आये तो ……।"

अनंगवती ने दूर से संकेत किया—"यही है मलया का कक्ष।"

यह कह अनंगवती लौट गई । महाबल ने धीरे से द्वार का परदा हटाया और कपाटों पर धक्का दिया तो द्वार खुल गया । महाबल मलया के कक्ष में दाखिल हो गया ।

□

११

मलयासुन्दरी जाग रही थी । उसका मन बार-बार कहता था— 'वे अवश्य आयेंगे । आर्य नारी का समर्पण सच्चा होता है । वह प्राण दे सकती है, पर जिसके लिए समर्पित होती है, उसे छोड़कर किसी अन्य की ओर देखती तक नहीं । वह देखती भी उसी को है, जो उसे मिलना होता है । मैंने आज दोपहर को जिन्हें देखा था, वह मेरे जन्म-जन्मान्तर के साथी हैं । तभी तो पहली झलक में मेरे हृदय मन्दिर में पैठ गए ।'

इस प्रकार विचारों में डूबी मलया कभी वातायन से नीचे झांकती और कभी शय्या पर बैठ जाती । आज की रात उसने अपने प्रियतम को समर्पित कर दी थी । महाबल उसके कक्ष में पहुंचा तो उसे देख वह हक्की-बक्की-सी हो गई । कुछ क्षण रुकी । आंखों से आंखें मिलाईं और महाबल के चरणों में गिरने को हुई । महाबल ने चरणों में झुकने से पहले उसे वक्ष से लगा लिया ।

"तुम्हारा स्थान यहां है । जब से तुम्हारा चित्र देखा है, तुम्हें यहीं हृदय में बसा लिया है ।"

"आप झूठ बोलते हैं ।" मलया महाबल से अलग हटकर बोली—"मैं इतनी भारी भरकम आपके हृदय में कैसे आ सकती हूं ?"

मलया की इस उक्ति पर महाबल हँस आया और बोला—

"बहुत बुद्धिमती हो । अच्छा तुमने यह क्यों लिखा था कि आ भी जाते भूले बिछुड़े, पर नहिं मन को भाते ? मैं तुम्हारे मन को भाया और तुम्हें नहीं भाया । तुम्हारे मन से मेरा क्या काम चलेगा । पाणिनि ने अपने व्याकरण में मन को तो नपुंसक कहा है ।"

"नपुंसक होकर भी मन कितना उर्वर है ।" मलया बोली—"मन ने ही तो काम-देव को पैदा किया है । मन के पुत्र कामदेव को सभी तो मनोज और मन्मथ कहते हैं ।

फिर मलया ने महाबल का हाथ पकड़कर शय्या पर बैठाया और बोली—

'आपने अपना परिचय नहीं दिया। मुझे अपनी दासी कब बनाओगे ?"

"जब तुम मुझे अपना दास बना लोगी।" महाबल बोला—"मेरा परिचय यह है कि मैं पृथ्वीस्थानपुर के राजा सुरपाल का पुत्र महाबल हूँ। आपने मेरा रूप भी नकली देखा है। यह मेरा श्रेष्ठि पुत्र का रूप है। लो यह है मेरा महाबल का रूप।"

महाबल ने मुँह से गुटिका निकाली और मलया के सामने निजी रूप में आ गया। फिर उसने गुटिका के बारे में जानकारी देकर कहा कि मुझे तुम्हारा चित्र चित्रकार सुशर्मा से मिला था। महाबल के दिव्य दीप्त रूप को देखकर और उसके गौरवमय परिचय को पाकर बार-बार मलया ने अपने भाग्य को सराहा और बोली कि मेरे स्वयंवर में आप अवश्य आना। यदि आप न आये तो मैं विष खाकर प्राण दे दूँगी, पर दूसरे का वरण नहीं करूँगी।

"यदि निमंत्रण न मिला तो ?" महाबल ने पूछा—"फिर मैं कैसे आऊँगा ?"

मलया ने इसके उत्तर में अपने गले का लक्ष्मीपुंज हार निकाल कर महाबल के कंठ में डाल दिया और बोली—

"तो फिर मैंने अभी आपका वरण कर लिया। यह लक्ष्मीपुंज हार मैंने वरमाला के रूप में डाला है। मुझे अभी अपने साथ ले चलो।"

"तुम्हारी वरमाला है तो मेरी यह वरमाला भी स्वीकारो।" यह कह महाबल ने अपनी दोनों बाहें मलया के कण्ठ में डालीं। तभी बाहर से किसी के द्वार बंद करने की आवाज आई। भीतर से मलया ने द्वार बंद कर लिया था। द्वार बंद होने बाद नारी स्वर उभरा—

"महाबल ! मैं तुझे देख लूँगी। अनंगवती को धोखा देना तुझे बहुत महंगा पड़ेगा। मलया को भी चैन से नहीं जीने दूँगी।"

"मेरी विमाता अनंगवती यहाँ कैसे आ गई ?" मलया घबराकर बोली—"अब क्या होगा ? अनंगवती मुझसे बहुत जलती है। मेरे पिताजी बड़े क्रोधी हैं। वे आपका वध तक कर सकते हैं।"

"यदि मैं कहूँ कि मैं राजा सुरपाल का पुत्र महाबल हूँ तो भी वे मेरा विश्वास नहीं करेंगे।" महाबल बोला—"वे मुझे बहुरूपिया, वंचक, ठग, जाने क्या समझेंगे। अब तो यही उपाय है कि हम दोनों नमस्कार मंत्र का जाप करें। तभी हम दोनों संकट से उबर सकते हैं।

"प्रिये ! मैंने तो समझा था कि गुर्ज तुम्हारा कक्ष बताकर अनंगवती चली

गई होगी। पर यह छिपकर यहीं खड़ी-खड़ी हमारी बातें सुन रही थी। इसने हमारा सब भेद जान लिया है। भूल से मैं इसके कक्ष में चला गया था।"

महाबल ने अनंगवती से हुई बातचीत मलया को बता दी और नवकार मंत्र का जाप करने लगा। मलया भी जाप करने लगी। दोनों धर्म-विश्वासी थे। धर्म की सफलता का एक मात्र आधार विश्वास है। समान रूप से धर्म-विश्वासी पति-पत्नी बड़े पुण्योदय से मिलते हैं। महाबल-मलयासुन्दरी—दोनों का पुण्योदय तो हुआ था, पर अब तो जाने कौन-सा पाप उदय हुआ था कि दोनों के प्राणों पर आ पड़ी थी।

× × × × ×

अनंगवती क्रोध में भरी हुई महाराज वीरधवल के खण्ड में पहुँची। वे अपने खण्ड में अकेले सो रहे थे। महारानी सौदामिनी अपने खण्ड में थी। जब जैसा होना होता है, तब वैसी ही परिस्थितियाँ और संयोग बन जाते हैं। रानी ने ऊँघते हुए पहरेदार से कड़कती आवाज में कहा—

"जाकर महाराज को जगाओ। अभी जगाओ। कहना अनर्थ हो गया।"

हाँपती हुई रानी अनंगवती के तेवर, फूले हुए नथुने और कड़कती आवाज को सुनकर पहरेदार सहम गया। उसने तुरन्त महाराज को पैर का अँगूठा पकड़ कर जगाया—

"अन्नदाता! अपराध क्षमा करें! कुछ अनर्थ हो गया है। छोटी महारानी पधारी है।"

"क्या अनर्थ किया छोटी महारानी ने।" कहते महाराज शय्या से ऊठकर शय्या पर ही बैठ गए और पहरेदार से कहा—"उन्हें यहीं भेजो।"

रानी अनंगवती बड़बड़ाती हुई भीतर दाखिल हुई और खड़े-खड़े ही कहने लगी—

"मैं मलया की सौतेली माँ हूँ। मैं इससे जलती हूँ। पर मैं इस राजकुल की नाक बचाना चाहती हूँ। आपकी बेटी ने तो उस कुल की नाक जड़ से काट दी। उसने कलंक मुँह किया है। जाने कहाँ का कोई पुरुष जिसका नाम महाबल है, मलया के कक्ष में है। दोनों को रंगरेलियाँ करते छोड़कर मैं बाहर से द्वार बंद करके चली आई हूँ। अब चलकर दोनों को रंगे हाथ पकड़िये।"

महाराज वीरधवल ने तुरन्त अपना खड्ग उतारा और क्रोध में फुंकारते हुए बोले—

"यदि यह सच है, तो मैं इसी खड्ग से मलया का सिर काट दूँगा। लेकिन

रानी ! तुम महल में ज्यादा प्रचार मत करो । मैं स्वयं चलूँगा । अन्य पहरेदारों को पता चल गया तो व्यर्थ में बदनामी होगी । बात झूठी भी हो सकती है ।"

"अब भी आप झूठी समझते हैं !" अनंगवती बोली -- "बड़ी महारानी को भी जगा लीजिए । वे भी अपनी बेटी की करतूत देख लें ।"

"नहीं रानी, नहीं । किसी को नहीं जगाना ।" महाराज वीरधवल कुछ ढीले पड़कर बोले--"बड़ी महारानी के पहरेदार जागेंगे तो फिर और भी जागेंगे । पूरे महल में जगार हो जायेगी । कोई कैसा भी लम्पट हो, मैं उसे निपट लूँगा ।"

"ठीक है, किसी को मत जगाइए ।" रानी अनंगवती बोली— "आपका पहरेदार तो जाग ही गया है । इसका साथी दूसरा भी जाग गया है । इन दोनों को महल के पिछवाड़े भेज दीजिए । कहीं ऐसा न हो कि मलया का प्रेमी वातायन से कूदकर भाग जाए ।"

"जय-विजय ।" महाराज वीरधवल के पहरेदारों का नाम जय-विजय था-- "तुम दोनों मलया के कक्ष के पिछवाड़े चले जाओ । ध्यान रखना कोई वातायन से कूदकर भागे तो पकड़ लेना ।"

छोटी रानी अनंगवती और महाराज वीरधवल मलया के कक्ष के सामने पहुँचे । अब भी बात-चीत की आवाज आ रही थी । अनंगवती ने बाहर से सांकल खोल दी तो महाराज वीरधवल बोले-

"मलया दरवाजा खोल ।"

मलया ने दरवाजा खोला तो महाराज वीरधवल बड़े चक्कर में पड़े और रानी अनंगवती के पैरों के नीचे की धरती खिसकने लगी । उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था । उसने देखा कि मलया अपनी माता महारानी सौदामिनी के पास बैठी थी । महारानी सौदामिनी ने अनंगवती से कहा--

"बहन ! अनंगवती क्या बात है ? तुम कैसे आई ? महाराज आप को भी नींद नहीं आई ? मुझे तो नींद नहीं आ रही थी, सो मैं मलया के पास चली आई ।"

अब महाराज अनंगवती पर बरस पड़े—

"क्या यह सच नहीं है कि तुम मलया में अटकी हो ? सौदामिनी तुम्हारी सौत है । इससे जलना स्वाभाविक है, पर मलया तो तुम्हारी बेटी ही है ? तुम नाव में धूल उड़ाती हो । सूरज को शीतल बताती हो । बोलो, अब क्या जवाब है तुम्हारे पास ?"

"स्वामी ! मैं झूठ नहीं बोलती ।" अनंगवती बोली—"मैंने इसके कक्ष में

पुरुष देखा है। यह सब कैसे हो गया कि मैं यहाँ महारानी सौदामिनी को देख रही हूँ ?"

"जब मलया का द्वार भीतर से बन्द था, तभी तुमने बाहर से साँकल लगाई तो फिर तुमने कोई पुरुष मलया के साथ देखा कैसे लिया ? तुमने केवल बातें सुनी हैं और उसी के आधार पर बात का बतंगड़ बना दिया।"

अनंगवती यह कैसे कहे कि उस पुरुष को मैंने ही मलया के कक्ष तक पहुँचाया था ? वह यह भी नहीं कह सकती थी कि कोई पुरुष मेरे सामने प्रविष्ट हुआ, क्योंकि फिर तो उसकी भी पोल खुल जाती। उसे यही कहना पड़ा कि मलया भीतर से द्वार बन्द करके किसी पुरुष से बात कर रही थी। लेकिन स्वयं वह चक्कर में थी कि मेरे कक्ष में आने वाला पुरुष यहाँ मेरे साथ आया था, वह कहाँ गया और सौदामिनी कहाँ से आ गई। अन्ततः अनंगवती को निरुत्तर होना पड़ा। महाराज पुनः झल्लाये—

"मलया के बारे में तुमने कोई स्वप्न देखा था ! स्वप्न में तुमने देखा होगा कि महल में कोई पुरुष है। सो मेरे पास चली आई। मेरी पवित्र बेटी पर कलंक लगाते तुम्हें लज्जा नहीं आई। अपराध तो तुम्हारा बहुत भारी है।"

"अच्छा तो यह महाबल— महाबल कौनसे कह रही थी ?" अनंगवती ने कहा—"मलया से ही पूछो कि इसने महाबल कहा था कि नहीं। यह तो सत्य-वादिनी है।"

उत्तर दिया महारानी सौदामिनी ने—

"महाबल इसने नहीं मैंने कहा था। इसने मुझ से पूछा था कि सबसे बड़ा बल कौन-सा है तो मैंने कहा था कि धर्म ही महाबल है और महाबल ही धर्म है। बस इतनी-सी बात थी।"

"इतनी-सी बात पर इस रानी ने तो तूफान खड़ा कर दिया।" महाराज वीर-धवल बोले—"अब जय-विजय को भी बुलवा लीं। वे दोनों मलया के महल के पिछवाड़े वातायन के नीचे खड़े हैं।"

महारानी सौदामिनी ने एक परिचारक से जो जाग कर आ गया था, कहा—"जा नीचे से जय-विजय को बुला ला। अभी तो डेढ़ प्रहर रात बाकी है।"

× × ×

एक बार जब पुनः सन्नाटा हो गया तो मलया महाबल के वक्ष से लिपट गई—

"स्वामी ! आपकी गुटिका ने संकट से उबार लिया ।"

"गुटिका ने नहीं नवकार मंत्र के जाप ने उबार लिया ।" महाबल बोला—"मंत्र की कृपा से मेरे अन्दर यह प्रेरणा उठी कि यहीं की किसी स्त्री का रूप धारण कर लूँ । अगर अनंगवती का रूप धारण करता तो आमने-सामने दो अनंगवती हो जातीं । यही सोचकर मैंने तुम्हारे पिता का रूप नहीं बनाया कि उन्हें लेकर ही अनंगवती आयेगी, यह मैंने अनुमान से समझ लिया था । मैंने राजसभा में तुम्हारी माता महारानी सौदामिनी को देखा था, गोली मुँह में गुटिका रखकर उन्हीं के रूप का स्मरण किया और मैं महारानी सौदामिनी बन गया ।"

"अब मुझे यहाँ से जाने दो ।" महाबल ही बोला—"कैसे ही रेशम डोर—रस्सी की व्यवस्था करो । मैं बालकनी से नीचे उतर आऊँगा । और कोई उपाय नहीं है ।"

"रस्सी ?" मलया खिलखिलाई—"रस्सी के लिए साड़ियों को जलाना पड़ेगा । ठहरो, मैं व्यवस्था करती हूँ । मेरे पास यहाँ कई साड़ियाँ हैं । सबको जोड़कर लम्बी रस्सी बनाती हूँ ।"

मलया ने गाँठ बाँधकर धोती में धोती जोड़कर पाँच धोतियों की रस्सी बनाकर खिड़की से बाँध दिया । महाबल नीचे सरकने लगा । चलती बार मलया ने कहा—"स्वयंवर में अवश्य आना ।"

"तुम भी पहचान लेना ।" महाबल ने कहा—"आऊँगा । वचन देता हूँ ।"

महाबल नीचे उतर गया और फिर मलया ने धोतियों की रस्सी ऊपर खींच ली । महाबल जल्दी-जल्दी चलकर अतिथि गृह में पहुँच गया । वहाँ सब जाग गए थे । रात्रि का चौथा—अंतिम प्रहर चल रहा था और यही समय शय्या त्याग का होता है । महाबल गुणसेन को एकान्त में ले गया और बोला—

"मलया मुझे मिल गई । वह मेरे समक्ष समर्पित हो गई है । उसका चित्र तो उसकी जूठन था । उस जैसी सुन्दरी स्वर्ग में ही हो सकती है । उसने अपने कंठ से लक्ष्मीपुंज हार उतारकर वरमाला के रूप में मेरे कंठ में डाला और मेरा वरण कर लिया । अब तो विवाह हुआ ही समझो ।"

"इस सफलता की बधाई देता हूँ युवराज !" गुणसेन बोला—"मेरा मुँह मीठा कब करोगे ?"

"अब चलने की तैयारी करें ।" महाबल बोला—यहाँ अब रहना ठीक नहीं । कई दिन हो गए । यदि मुझे सफलता न मिलती तो महीनों रहता ।"

महाबल ने पुनः श्रेष्ठिपुत्र विमलकुमार का रूप धारण किया और सब साथियों के साथ वीरधवल की राजसभा में पहुँचा। मंत्रियों ने राजा से अनुमति प्राप्त की और पृथ्वीस्थानपुर की ओर प्रस्थान कर दिया।

घर पहुँचकर महाबल ने लक्ष्मीपुंज हार अपनी माता महारानी पद्मावती को दे दिया और चन्द्रावती नगरी के समाचार माता-पिता को सुना दिये।

उधर प्रातःकाल महारानी सौदामिनी महाराज वीरधवल की चरणवंदना करने पहुँची तो महाराज बोले—

"देखा महारानी रात तुमने? छोटी रानी ने कैसा तमाशा किया? तुम मलया के पास बैठी थीं और उसने मुझ से आकर कहा कि उसके कक्ष में कोई पुरुष है। तुम फिर भी उसे छोटी बहन कहकर बुला रही थीं।"

राजा वीरधवल की बात सुनकर महारानी सौदामिनी चकराई। उसने सोचा कि मैं तो रात कहीं गई नहीं, फिर महाराज कैसे कह रहे हैं कि रात मैं मलया के कक्ष में थी। उसकी बेटी पर कोई संकट न आये। पहले पूरी बात मालूम हो, तब कुछ कहूँगी, यह सोच महारानी सौदामिनी बोली—

"जो बीत गया, सो बीत गया, अब इसकी क्या चर्चा करें। आप भी भूल जाइए।"

"यह भी कोई भूलने की बात है?" राजा वीरधवल बोले—"अनंगवती ने मुझे सोते से जगाया। कहने लगी कि मलया के कक्ष में महाबल नाम का कोई पुरुष है। उसने हमारे कुल की नाक जड़ से काट दी है। मैं अनंगवती के साथ मलया के कक्ष में गया तो देखा कि मलया के पास तुम बैठी थीं।"

रानी सौदामिनी कुछ नहीं बोलीं। वह उठकर सीधी मलया के पास गई और पूछा—

"बेटी! सच-सच बताना क्या बात थी? रात क्या हुआ था?"

मलया ने कहा—

"माँ! मैं तुम्हारी बेटी हूँ। इस समय इतना ही बताये देती हूँ कि तुम्हारी बेटी मलया ऐसा कोई काम नहीं करेगी, जिससे तुमको या पिता को नीचा देखना पड़े। रात हमारी कुल-देवी मलया मेरे पास आई थीं। यह बात किसी के विश्वास-योग्य नहीं है। उन्हीं से विमाता अनंगवती को यह भ्रम हुआ कि मेरे कक्ष में कोई पुरुष है। अपनी महिमा दिखाने के लिए कुलदेवी तुम्हारा रूप बनाकर मेरे पास बैठ गई।"

"मुझे तेरी बात पर विश्वास है बेटी!" सौदामिनी बोली—"मैं अपने कक्ष में सो रही थी और यहाँ तेरे पास भी दूसरी सौदामिनी थी तो इसी से सिद्ध है

कि यह चमत्कार कुलदेवी ही कर सकती है। किसी मनुष्य में ऐसी शक्ति कहाँ कि वह मेरा रूप रखकर तेरे पास आवे।

"बेटी! अब तू किसी से मत कहना कि हमारी कुलदेवी मलयादेवी मेरी माँ का रूप रखकर आई थी। मैं भी अब यही कहूँगी कि रात मुझे नींद नहीं आ रही थी, सो मैं मलया के कक्ष में चली गई थी।"

धर्म का प्रभाव ऐसा अचिन्त्य होता है कि वह धर्मीजन के सब संकट टाल देता है। मलया बड़ी चिन्ता में थी कि मैं अपनी माँ सौदामिनी से कैसे कहूँगी कि रात आप मेरे पास थीं। नमस्कार मंत्र के प्रभाव ने महारानी सौदामिनी की बुद्धि को बदल दिया और वह भी बेटी की योजना के अनुकूल बन गई।

१२

रानी अनंगवती ने अपनी दासी तारिका से कहा—

"तारिका, अब या तो इस महल में मलया रहेगी या मैं रहूँगी। वह मुझे हर समय काँटे-सी कसकती है। अब तो तू भी मेरा विश्वास नहीं करेगी कि वह जादूगरनी है।

"इस महल में तो क्या, मलया तो इस राज्य में भी नहीं रहेगी।" तारिका बोली— "आपको वहाँ से कौन निकाल सकता है?"

"मलया को ही कौन निकाल पायेगा?" अनंगवती कहने लगी—"वह महाराज और सौदामिनी दोनों ने सिर चढ़ा रखी है। जादूगरनी ने मुझ सच्ची को तो झूठा बना दिया और स्वयं सच्ची बन गई।"

"महारानी!" तारिका बोली—"महाराज मलया के स्वयंवर पर विचार-विमर्श करते रहते हैं, यह बात तो आपको मालूम ही है। किसी-न-किसी दिन उसका ब्याह भी होगा। तब फिर वह इस महल में तो क्या इस राज्य में भी नहीं रहेगी।"

"अब तो मैं तुझे ताड़का जरूर कहूँगी।" महारानी अनंगवती को हँसी आ गई—"क्या यह बात मैं नहीं जानती कि इसका ब्याह होगा और वह उसी महाबल

के साथ चली जाएगी जो रात उसके कक्ष में आया था और उसे मलया ने अपने जादू से सौदामिनी बना दिया था।

"तारिका ! तुझे मेरी बात का विश्वास करना पड़ेगा। कल एक सुन्दर युवक मेरे कक्ष में आया था। तू पार्श्व-खण्ड में सो रही थी। मैंने तुझे नहीं जगाया। उस युवक ने कहा कि मैं मलया को संदेश देने आया हूँ। यह सोच कि दाल में कुछ काला है, मैं उस युवक को, जिसका कि नाम महाबल है, मलया के कक्ष में पहुँचा आई। उस युवक को मैंने मलया से बातें करते सुना। मैंने मलया के कक्ष की बाहर से सांकल लगा दी और महाराज को लेकर आई तो द्वार खुलने पर उस युवक की जगह सौदामिनी लक्ष्मीपुंज हार पहने बैठी थी। मुझे नीचा देखना पड़ा। अब मैं अब तक मलया को मरवा नहीं दूँगी, चैन से नहीं रह सकती।"

"ऐसा हो कैसे गया कि महाबल की जगह सौदामिनी हो गई ?" तारिका ने कहा—"फिर भी हुआ तो है ही। महारानी जी ! आप निश्चिन्त होकर रहें। मैं ऐसा उपाय करूँगी कि आप मलया से अपने अपमान का बदला ले सकें। बस, आपको कुछ दिन धैर्य धारण करना है।"

धीरे-धीरे इस घटना को पन्द्रह दिन बीत गए। रानी अनंगवती मलया से बदला लेने की बात भूल नहीं पा रही थी। क्रोध तो कभी-न-कभी समय पाकर शान्त हो जाता है, पर वैर की अग्नि तो वैरी को जलाकर ही शान्त होती है या फिर उपशम के जल से सदैव के लिए बुझ जाती है। वैर और उससे जन्मी बदले की भावना संसार बनाती है। अनन्त जन्मों तक प्रतिशोध का क्रम चलता रहता है। पर मुनियों द्वारा दिया गया उपशम का जल वैरभाव की शृंखला को नष्ट कर संसार को ही मिटा देता है।

अनंगवती के हृदय में मलया के प्रति वैर था और था प्रतिशोध का संकल्प। ये दोनों मलया को भविष्य में जलाना चाहते थे पर वर्तमान में तो रानी अनंगवती को ही तिल-तिल कर जला रहे थे।

× × ×

लक्ष्मीपुंज हार महाबल ने अपनी माता पद्मावती को यह कहकर दिया था कि यह हार मुझे युवराज मलयकुमार ने भेंट में दिया है। उससे मेरी मित्रता हो गई है। उसने मुझसे यह भी कहा है कि मैं जब भी कहीं बाहर जाऊँ, इस दिव्य हार को पहनकर ही जाऊँ, क्योंकि यह हार पग-पग पर सफलता देने वाला और मंगलकारी है। हार पहनने के बाद रानी पद्मावती ने महाबल से कहा—

"वत्स ! तू जब भी कहीं जाएगा, मैं नवकार मंत्र का स्मरण कर यह हार तुझे पहनाऊँगी । लेकिन जब घर में बहू आयेगी, तब मैं इसे बहू को दे दूँगी । फिर वही यात्रा के समय तुझे पहनाया करेगी ।"

महाबल कैसे कहता कि यह हार मुझे तेरी होने वाली बहू ने ही पहनाया है । उसने हार देने वाले के रहस्य को भी छिपाया और यह सब भी छिपाया कि चन्द्र-कान्ता नगरी में मैं श्रेष्ठिपुत्र बनकर गया था—महाबल के रूप में नहीं । महाबल ने चित्र दर्शन से लेकर मलया से भेंट होने तक की सभी बातों को माता-पिता से पूर्णतः छिपा लिया ।

महाबल रात को शय्या पर लेटा-लेटा मलया के बारे में ही सोचता रहता । उसके विषय में कल्पनाएँ करता रहता । कभी सोचता कि एक बार पुनः चन्द्राकान्ता नगरी पहुँच जाऊँ और मलया से मिलकर आऊँ । लेकिन फिर सोचता—इस तरह जाने से तो मलया पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा । उसे स्वयंवर में वरण करके ही लाऊँगा । अभी उसका प्रेम पकना चाहिए । प्रेमियों का प्रेम विरह में ही पक्का होता है, जैसे कि कच्चा घड़ा आग में पककर लाल हो जाता है । यों ही समय बीतता जा रहा था ।

चन्द्राकान्ता नगरी से लौटे महाबल को छह माह बीत गए थे । एक दिन राजा वीरधवल का दूत चन्द्रकान्ता नगरी से पृथ्वीस्थानपुर आया ।

राजा सुरपाल की सभा में उपस्थित होकर उसने अपने राजा का संदेश दिया—

"पृथ्वीनाथ ! महाराज वीरधवल की कन्या मलयासुन्दरी चौंसठ विद्याओं में निपुण, गीत-संगीत, नृत्य, पाक, चित्रकारी आदि में अग्रसर और गुणों की आगार अब विवाह योग्य हो गई है। सुन्दरता में वह देवकन्या की कल्पना को साकार करती है । धर्म में उसकी न केवल रुचि है, उसमें पैठ भी है ।

"पृथ्वी पालक ! मेरे स्वामी महाराज वीरधवल ने उसका स्वयंवर रचाने का निश्चय किया है । स्वयंवर में वह वीर शिरोमणि ही उसे प्राप्त कर सकेगा, जो महाराज वीरधवल की शर्त पूरी कर पायेगा ।

"नरेश्वर ! हमारे नराधिप की आयुधशाला में वज्रसार नाम का एक प्राचीन धनुष है । जब राजा वीरधवल युवा थे, तब वे उसकी प्रत्यंचा चढ़ाया करते थे । वह धनुष वीरों की कसौटी है । मलयासुन्दरी के स्वयंवर में जो वीर उस धनुष की प्रत्यंचा चढ़ायेगा, वही उसे प्राप्त करेगा ।"

यह कहने के बाद चन्द्रावती नगरी के दूत ने महाराज वीरधवल का पत्र राजा सुरपाल को दे दिया। रेशम के वस्त्र पर लिखा पत्र सिरों पर लगे दो गोल डंडों से लिपटा हुआ था। उसमें स्वयंवर के बारे में विस्तार से लिखा था। यह भी अंकित था कि कोई भी राजा या राजकुमार सौ से अधिक सैनिक साथ नहीं लायेगा। स्वयंवर की तिथि भी अंकित थी। सौ से अधिक सैनिक न लाने की व्यवस्था इस कारण की गई थी कि स्वयंवर में हारे हुए राजा जीते हुए राजा से युद्ध करने को तत्पर हो जाते हैं।

दो दिन ठहरने के बाद चन्द्रावती नगरी का दूत चला गया। एक दिन प्रातःकाल महारानी पद्मावती, महाराज सुरपाल और युवराज महाबल कलेवा करने बैठे थे। राजा सुरपाल ने बात छेड़ी—

"महारानी! वीरधवल हमारे मित्र राजा हैं। उन्होंने हमारे महाबल को देखा भी है। यदि उन्हें महाबल जामाता के रूप में पसंद आ जाता तो वे स्वयंवर के झंझट में न पड़ते। महाबल के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर देते।"

"यह तो उन्होंने अच्छा ही किया, जो ऐसा नहीं किया।" महारानी बोली—"अब महाबल स्वयंवर में जीतकर मलया को लायेगा तो यह अधिक गौरव की बात होगी।"

"स्वयंवर में यह मलया को जीत ही लेगा, इसका दावा तुम कैसे कर सकती हो?"

महारानी पद्मावती कुछ उत्तर देती कि उससे पहले महाबल कुछ लेने के बहाने बाहर उठ गया। उसके जाने के बाद महारानी बोली—

"महाबल कितना संस्कारी है कि विवाह की बात चलते ही उठ गया। हाँ, मैं अब आपकी बात का जवाब देती हूँ। महाबल केवल नाम का ही महाबल नहीं है। उसमें मेरु जैसा बल है। आपको याद है न? बचपन में हम उसका नाम मेरुबल रख रहे थे। मेरु पर्वत का स्वप्न देखकर मैंने गर्भ धारण किया था। वह निश्चित वज्रसार धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर वीरों के मान का मर्दन करेगा।

"स्वामी! बचपन में एक नैमित्तिक ने मुझे बताया कि उसकी पत्नी का नाम सिंह राशि पर होगा। मलया की राशि भी सिंह है। इससे भी मुझे यह प्रतीति होती है कि महाबल-मलयासुन्दरी की जोड़ी हमारे घर आंगन की शोभा होगी।"

"यह तो कोई बात नहीं।" राजा सुरपाल बोले—"सिंह राशि पर तो और भी नाम हो सकते हैं, जैसे मदनसुन्दरी, मृगांकलेखा आदि।"

"मेरे विश्वास का आधार यह लक्ष्मीपुंज हार भी है।" महारानी पद्मावती ने कहा—"देवाधिष्ठित यह दिव्य हार पहनकर जायेगा महाबल तो स्वयंवर में विफल हो ही नहीं सकता।"

तभी महाबल भी आ गया। बैठकर वह पुनः कलेवा करने लगा। महाराज सुरपाल ने कहा—

"उठ क्यों गए थे महाबल ? मुझे तुमसे भी कुछ पूछना था।"

"दांत में कुछ फँस गया था।" महाबल ने बहाना किया—"उसे निकालने गया था।"

"जब तुम चन्द्रावती नगरी गए थे तो क्या महाराज वीरधवल ने तुम्हें अपना वज्रसार धनुष दिखाया था ?"

महाबल कैसे कहे कि मैं श्वेतभिक्षुक बनकर गया था ? कुछ तो कहना ही था। अतः उसने कहा—

"उनकी आयुधशाला तो मैंने नहीं देखी। पर युवराज मलयकुमार ने यह तो कहा था कि हमारी आयुधशाला में वज्रसार नाम का एक पुराना धनुष है। मैंने उसे देखना भी चाहा तो युवराज ने कहा कि उसे तो बहन मलयासुन्दरी के स्वयंवर में रंगभूमि में ही दिखाया जाएगा।"

ये सब बातें महाबल ने मनगढ़न्त—बनाकर कह दीं। पिता सुरपाल ने विश्वास कर लिया। उन्होंने पुनः पूछा—

"क्या तुम उस धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा सकते हो ? स्वयंवर में अभी तीन माह हैं। तब तक कुछ अभ्यास करो।"

"भाग्योदय अभ्यास से नहीं होता पिताजी।" महाबल ने कहा—"वह तो अवसर आने पर होता ही है। फिर आत्मविश्वास तो सबसे बड़ा बल है। मैं यह नहीं कहता कि मैं वज्रसार धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा सकता हूँ, बल्कि मेरा कहना यह है कि मैं उस धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाऊँगा।"

यह सुनते ही महाराज सुरपाल ने महाबल की पीठ ठोकी और बोले—

"मैं यह कहूँगा, इस कथन का ही नाम आत्मविश्वास है। मुझे तुम पर गर्व है। मैं भी तुम्हारी माँ को स्वयंवर में जीतकर लाया था। तब राजा वीरधवल भी अन्य निराश राजाओं में थे। तुम उनकी बेटी को स्वयंवर में जीतो, यह मेरा आशीर्वाद है।"

"आपने मुझे कब जीता था ?" महारानी पद्मावती ने हँसकर कहा—आपने कौनसा धनुष तोड़कर मुझे स्वयंवर में जीता था ? वह तो मैंने ही आपके गले में वरमाला डाली थी।"

"गले में वरमाला नहीं डाली, तुम्हीं मेरे गले पड़ गई थी।" राजा सुरपाल हँसकर विनोद करते हुए बोले—"तभी तो मैं तुम्हें ले आया। वरना वीरधवल ले जाते तो सौदामिनी सी सौत मिलती।"

× × ×

महारानी पद्मावती को रात के समय ऐसा आभास होता कि उनके शयन कक्ष में कोई स्त्री टहल रही है। उसकी पदचाप के साथ उसके नूपुरों की रुन-झुन सुनाई देती। जब उठकर बैठी होतीं तो कुछ भी सुनाई और दिखाई नहीं देता। कभी वे यह भी अनुभव करतीं कि सोते हुए उनके गले पर कोई हाथ फेर रहा है। जब वे चौंककर उठतीं तो कहीं कुछ भी नहीं होता। यह बात उन्होंने राजा सुरपाल से कही तो उन्होंने कहा—"मन का संशय मात्र है। कुछ दिन नवकार मंत्र का जाप करो। सब ठीक हो जाएगा।"

महारानी कुछ करतीं-करातीं कि एक रात वे सोते-सोते चीखीं—

"हाय ! कोई मेरा लक्ष्मीपुंज हार ले गया।"

उनके चीखते ही दासियाँ दौड़ी आईं। महाराज सुरपाल भी आ गए। महारानी डरी-डरी, सहमी-सहमी कहने लगीं—

"मैं कहती थी कि रात को कोई स्त्री मेरे शयन कक्ष में आती है और छलावे की तरह गायब हो जाती है। जरूर वह कोई व्यन्तरी या प्रेतनी है। वही सोते हुए मेरे गले पर हाथ फेरती थी। उसी ने मेरे गले से लक्ष्मीपुंज हार उतारा था और गायब हो गई। आप कहते थे कि मन का संशय है। लक्ष्मीपुंज हार की चोरी किसी अमंगल का सूचक है।"

राजा सुरपाल के महल में फिर कोई सो नहीं पाया। पूरी रात हार-चोरी की चर्चा और उसकी खोज में बीती। परिणाम कुछ न निकला।

मलया के स्वयंवर के पन्द्रह दिन शेष रह गए थे। महारानी पद्मावती ने महाबल से कहा—

"पुत्र ! स्वयंवर में तू क्या पहनकर जाएगा ? लक्ष्मीपुंज हार शक्ति सम्पन्न दिव्यहार था। अब क्या होगा ?"

"मैं भी बड़े असमंजस में हूं।" महाबल ने कहा—"रात मैंने भी अपने कक्ष में किसी स्त्री की छाया को देखा था। वह व्यंतरी हो या कोई और उस में पकड़कर तुम्हारे सामने ला दूंगा।"

"उसके लाने से क्या लक्ष्मीपुंज हार मिल जाएगा?" महारानी पद्मावती बोलीं—"लक्ष्मीपुंज हार के बिना मैं जीवित नहीं रह सकती।"

"यदि मैं तुम्हारा पुत्र हूं तो मैं लक्ष्मीपुंज हार लाकर तुम्हें दूंगा।" महाबल बोला—"क्षत्रिय-पुत्र जो प्रतिज्ञा कर लेते हैं, उसे पूरा करके दिखाते हैं।"

"मैं नहीं चाहती कि हार के लिए तू अपने को संकट में डाले।" पद्मावती बोली—"न मिले हार। पहले क्या मैं लक्ष्मीपुंज हार के बिना नहीं रहती थी?"

"प्रतिज्ञा पूर्ति में आने वाले संकट मेरी शक्ति को बढ़ायेंगे मां!" महाबल बोला—"तुम चिन्ता मत करो। मैं लक्ष्मीपुंज हार लाकर रहूंगा।"

महाबल की प्रतिज्ञा से महारानी पद्मावती आश्वस्त तो हुई, पर चिन्ता बनी रही।

महाबल ने अनुभव किया कि कोई स्त्री उसके शयन कक्ष में टहल रही है। वह जब उठकर बैठा हुआ तो वही स्त्री गायब हो गई।

अब तो महाबल ने निश्चय कर लिया कि मैं रात को सोऊंगा ही नहीं। एक रात उसने देखा कि खिड़की से किसी स्त्री का हाथ भीतर आ रहा है। धीरे-धीरे हाथ लम्बा होने लगा। महाबल ने दोनों हाथों से वह हाथ मजबूती से पकड़ लिया। हाथ ने जोरों का झटका दिया, पर महाबल ने उसे नहीं छोड़ा। तब वह हाथ महाबल को लेकर आकाश में उड़ने लगा। महाबल को केवल हाथ दिखाई दे रहा था, जिसका वह हाथ था, वह स्त्री दिखाई नहीं दे रही थी।

कुछ दूर तक तो वह स्त्री महाबल को लेकर उड़ी। फिर बोली—

"महाबल मेरा हाथ छोड़ दे।"

"नहीं छोड़ूंगा।" महाबल ने दृढ़ता से कहा—"पहले तू यह बता कि तू कौन है।"

"मैं व्यन्तरी हूं।" उस हाथ वाली स्त्री ने कहा—"बस अब मुझे छोड़ दे। तू जहां कहेगा, मैं तुझे पहुंचा दूंगी।"

"अब यह भी बता कि लक्ष्मीपुंज हार तूने क्यों चुराया था।" महाबल ने कहा—"और यह भी बता कि वह कहां है।"

"हार मुझे अच्छा लगा, इसलिए चुराया। वह मेरी सौत के पास है। उससे तू नहीं ले सकता।" व्यन्तरी ने कहा—"बता मैं तुझे कहां उतारूं। अब तो छोड़ दे मेरा हाथ।"

महाबल ने कहा—

"जब तक तू मुझे लक्ष्मीपुंज हार लाकर नहीं देगी मैं तेरा हाथ नहीं छोड़ूंगा।"

"तेरे भाग्य में होगा तो वह हार तुझे अवश्य मिलेगा।" व्यन्तरी बोली—"मैं वह हार अब वापस नहीं ला सकती। मैं विवश हूं। मेरा विश्वास कर और बता तुझे कहां उतारूं।"

महाबल ने सोचा कि अब कुल पांच ही दिन मलयासुन्दरी के स्वयंवर के शेष हैं। अतः इससे कहूं कि चन्द्रावती नगरी के निकट उतार दे तो ठीक रहेगा। यह सोच महाबल ने व्यन्तरी से कहा—

"मुझे चन्द्रावती नगरी के निकट उतार दे।"

व्यन्तरी ने महाबल को चन्द्रावती नगरी के निकट एक वन में छोड़ दिया। जाते-जाते व्यन्तरी कहती गई—

"जिसे मलया को तू पाना चाहता है, उसे उसकी सौत तुझे मिलने नहीं देगी।"

वन में बैठा महाबल सोचता रहा—'आखिर यह व्यन्तरी कौन थी? उसने लक्ष्मीपुंज हार क्यों चुराया? मेरे कक्ष में वह क्यों आती थी? मुझे लेकर क्यों उड़ी? उसने कहा था कि लक्ष्मीपुंज हार उसने अपनी सौत को दिया है। व्यंतरी की सौत भी व्यंतरी होगी। चलते समय व्यंतरी ने यह भी कहा कि जिस मलया को तू पाना चाहता है, उसे उसकी सौत तुझे मिलने नहीं देगी। मलया की सौत तो कोई नहीं है। अभी न तो मेरा विवाह हुआ न मलया का। फिर मलया की सौत? हो सकता है कि व्यंतरी मेरे दूसरे विवाह के बारे में जानती हो, मेरी होने वाली दूसरी पत्नी को ही मलया की सौत कहा हो व्यंतरी ने। पर मैं तो दूसरा विवाह करूंगा ही नहीं।

महाबल ने बहुत सिर मारा, पर व्यंतरी और उसकी बातें उसके लिए रहस्य ही बनी रहीं। अभी रात शेष थी। एक पेड़ के नीचे बैठ महाबल नवकार मंत्र का जाप करने लगा।

१३

महाबल आम्रवृक्ष के नीचे बैठा प्रातः काल होने की प्रतीक्षा कर रहा था कि सवेरा हो तो इस वन से आगे चलूँ। पता नहीं वन कितना लम्बा होगा। वन में छनी हुई चाँदनी के धब्बे से दिखाई पड़ रहे थे। पक्षी सो रहे थे। कभी कोई पखेरू पंख फड़फड़ा देता था।

महाबल ने धीमे स्वर में किसी के सिसकने की आवाज सुनी तो वह चौंका पुनः ध्यान से सुना तो लगा कि सचमुच कोई विवश होकर सिसक रहा है। महाबल आवाज की दिशा में कुछ ही कदम आगे बढ़ा तो देखा एक अजगर किसी मनुष्य को को मुँह में दबाये धीरे-धीरे उदरस्थ कर रहा है। अजगर के मुँह में मनुष्य की घुटनों तक टाँगें दबी हुई थीं। उसके हाथ, मुँह और पेट धरती पर पड़े थे। अँधेरे में कुछ स्पष्ट दिखाई नहीं दे रहा था।

"मैं स्वयं आज मौत के मुँह से बचा हूँ।" महाबल ने सोचा, व्यंतरी मुझे खाई-खड्डे में पटक देती तो मेरी हड्डियों का चूर्ण बन जाता। पुण्यों के प्रताप से उसने मुझे यहाँ वन में उतार दिया। जब मैं स्वयं मौत से बचा हूँ तो इस व्यक्ति को भी बचाऊँगा। प्राणदान सबसे बड़ा दान है।

यह सोच महाबल अजगर की ओर बढ़ा। अंगारे-सी दहकती अजगर की आँखें महाबल को घूरने लगीं। पर महाबल ने आव देखा न ताव, अजगर के दोनों जबड़ों को पकड़कर पूरी शक्ति लगाकर उसे बीच से चीर दिया। उसके मुँह में दबा व्यक्ति उचट कर अलग जा गिरा। उसके मुँह से शब्द निकले—महाबल मुझे क्षमा करना और वह व्यक्ति बेहोश हो गया।

अपना नाम सुनते ही महाबल चौंका और लपककर उस व्यक्ति के पास पहुँचा। किन्तु अँधेरे में स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ा कि यह कौन है। महाबल उसे होश में लाने का प्रयास करने लगा। कुछ देर बाद वन में पक्षी चहचहाने लगे, अब सवेरा होने वाला था। प्राणदायिनी हवा चलने लगी।

सवेरा हो ही गया। जिस व्यक्ति को महाबल ने अजगर से बचाया था, वह मलयासुन्दरी थी। यह देख महाबल आश्चर्य में भर गया। मलया होश में आ गई थी। वह कराह रही थी। महाबल ने उसे पुकारा—

"मलया ! आँखें खोल । देख, मैं महाबल हूँ ।"

महाबल का नाम सुनते ही मलया में जाने कहाँ से ऐसी शक्ति आई कि वह उठकर बैठ गई और महाबल से लिपटकर रोने लगी । महाबल ने उसे शान्त किया किया और बोला--

"यह सब क्या हुआ मलया ? तू राजभवन छोड़कर यहाँ वन में ? पाँच दिन बाद तेरा स्वयंवर होने वाला है और तू.....?"

"स्वयंवर में आने वाले आज भी यहाँ वन में कैसे ? मेरी भी कुछ समझ में नहीं आ रहा ।" मलया ने कहा—"अब कुछ समझ में आया कि कर्म का विधान कितना रहस्यमय होता है ।"

"मैं भी कैसे विचित्र संयोग से ऐन वक्त पर यहाँ आया ।" महाबल ने कहा—"संयोग कर्मोदय का बड़ा सुन्दर बहाना है। पहले मुझे पूरी बात बताओ कि तुम यहाँ कैसे और क्यों आई ?"

"बस यह समझलो कि मैं मर चुकी थी ।" मलया बोली--"दो बार मरी हूँ और दोनों बार बची हूँ । जब मुझे मरना नहीं था तो मौत आई ही क्यों ? जब मौत आई तो मरी क्यों नहीं ?

"स्वामी ! मेरी कहानी तो लम्बी है। पहले आप मेरे आश्चर्य का समाधान करें कि आप यहाँ कैसे आ पहुँचे । क्या आपको स्वप्न में ऐसा कुछ आभास हुआ था कि.....?"

"मुझे तो लक्ष्मीपुंज हार यहाँ ले आया ।" मलया की बात पूरी होने से पहले ही महाबल बोला—"दत्त-स्वप्न में कुछ नहीं देखा ।"

"मेरे यहाँ आने का निमित्त भी लक्ष्मीपुंज हार ही बना ।" मलया बोली—"कर्म का कैसा खेल है कि लक्ष्मीपुंज हार ने हमें यहाँ मौत के दुराहे पर मिला दिया । तो क्या आपके पास नहीं है लक्ष्मीपुंज हार ?"

"मैं तुम्हें पूरी बात सुनाता हूँ कि यहाँ कैसे आया ?" महाबल बोला—"फिर तुम आपबीती बताना ।"

लक्ष्मीपुंज हार की चोरी, माता पद्मावती की चिन्ता और व्यंतरी का हाथ पकड़कर आकाश मार्ग से यहाँ तक आने का पूर्ण वृत्तान्त महाबल ने मलयासुन्दरी को सुना दिया । अब मलयासुन्दरी आपबीती महाबल को सुनाने लगी ।

+ + + +

रानी अनंगवती अपने शयन कक्ष में शय्या पर लेटी थी। उसे नींद नहीं आ रही थी। पास में उसकी दासी तारिका बैठी हुई थी। अनंगवती ने कहा—

"मलया के स्वयंवर में दस दिन बाकी हैं। रंगभूमि की सजावट में करोड़ों का व्यय हुआ है। सैकड़ों राजा आ चुके और बाकी स्वयंवर की तिथि तक आ जायेंगे। महाबल आकर मलया को ले जायेगा और तू कहती है कि समय की प्रतीक्षा करो।"

"मलया के पुण्य प्रबल हैं महारानी !" तारिका बोली— "जिस दिन उसका पाप उदय में आयेगा, आप उससे अपना बदला ले लेंगी।"

"पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म—ये सब बातें तू मुझसे मत किया कर।" अनंगवती बोली—"तू एक काम कर दे, मेरा ! कहीं से विष लादे, जिसे खाकर मैं मर जाऊँ। मैं अपनी आँखों से मलया का विवाह नहीं देख सकती।"

तारिका रानी अनंगवती की बात का कुछ उत्तर देती कि लेटी हुई रानी के वक्ष पर दमकता हुआ एक हार गिरा। रानी हार को हाथ में ले लेकर बैठी हो गई और हर्ष मिश्रित आश्चर्य से बोली —

"अरी देख ! यह तो लक्ष्मीपुंज हार है। इसे कौन लाया मेरे पास ? मेरा भाग्य, मेरा देव और मेरा पुण्य ही इसे मेरे पास लाया है। जिसके पास यह लक्ष्मीपुंज हार रहता है, वह कभी असफल नहीं होता। अब मैं मलया से बदला ले लूँगी।"

"आप तो धीरज खो रही थीं महारानी !" तारिका बोली—"मैंने तो पहले ही कहा था कि आप धीरज रखें। यह लक्ष्मीपुंज हार ही है, इसका निश्चय....?"

"क्या तुझे संदेह है तारिका ?" रानी अनंगवती बोली—"इसे मेरे सामने वर्षों तो मेरी सौत सौदामिनी ने पहना है। मेरे सामने ही सौदामिनी ने यह मलया को दिया था। अब मैं ऐसी कहानी गढ़ूँगी कि महाराज अपनी लाड़ली बेटी को बड़ा कठोर दण्ड देंगे। तभी मेरी छाती ठंडी होगी।"

यह कह रानी अनंगवती ने लक्ष्मीपुंज हार सम्हाल कर रख दिया और मंत्रणा देने बैठ गई। फिर तो वह सोई ही नहीं। पूरी रात मलया के विरुद्ध षड्यंत्र बनाने में लगा दी। बीच-बीच में तारिका भी उसे सुझाव देती थी।

लक्ष्मीपुंज हार व्यंतरी ने महारानी पद्मावती के कंठ से उतारा था और उसी ने उसे रानी अनंगवती के वक्ष पर पटका था। यह सब रहस्य अनंगवती नहीं जानती थी। वह तो बस इतना जानती थी कि मेरे भाग्य ने अनायास ही छप्पर फाड़ कर लक्ष्मीपुंज हार मुझे दिया है और इसी के सहारे मैं मलया से बदला लूँगी।

प्रातःकाल उठकर अनंगवती सीधी महाराज वीरधवल के कक्ष में पहुँची। संयोग से वे अकेले थे। महारानी सौदामिनी अभी उनकी पदवंदना करने नहीं आई थीं। अनंगवती ने महाराज वीरधवल की पद वंदना करके कहा—

"आर्यपुत्र! मैं एक महत्वपूर्ण रहस्य बताने आई हूँ। जब तक मेरी आपसे बात हो यहाँ कोई न आने पाये।"

"ऐसी क्या बात है अनंग?" महाराज बोले—"यदि तुमने पहले—जैसी बात बताई तो अच्छा न होगा।"

"मैं भी दो इरादे लेकर आई हूँ।" रानी अनंगवती ने दर्प से कहा—"या तो मैं अपनी बात प्रमाणित करूँगी या अपने वध के लिए प्रस्तुत रहूँगी।"

"ऐसी बात!" महाराज ने आश्चर्य से कहा—"यहाँ कोई नहीं आयेगा।"

यह कह महाराज ने ताली बजाई। एक दासी तुरन्त आई। महाराज ने आदेश दिया—

"जब तक हम न कहें, हमारे कक्ष में कोई न आये। कौन आया है, यह बताने तुम भी यहाँ नहीं आओगी।"

आदेश प्राप्त कर दासी चली गई। महारानी सौदामिनी पति की पद-वंदना करने आईं तो दासी ने उन्हें महाराज का आदेश बता दिया। महारानी द्वार की चौखट को वंदना करके लौट गईं। अब अनंगवती ने कहना शुरू किया—

"स्वामी! मैं दुष्टा हूँ। मैं ईर्ष्या करती हूँ मलया से—ये सब बातें मेरे बारे में कही-सुनी जाती हैं। लेकिन मैं अपने पति का—आपका, आपके राज्य का विनाश होने देना नहीं चाहती। यह सब होने वाला है। आप चाहें तो इसे रोकें, चाहे होने दें।

"दैव मेरी बात को गलत सिद्ध कर दे। पर सचाई यह है कि आपकी बेटी मलया ही आपका, और आपके राज्य का सर्वनाश करेगी।

"स्वामी! मलया ने पूर्वोत्थानपुर के राजा सुरपाल के पुत्र महाबल से मिलकर यह षड्यन्त्र रचा है कि स्वयंवर वाले दिन वेपुल सेना लेकर आये और आपको मारकर या पराजित करके आपके राज्य का राजा बने और मलया महाबल की रानी बनकर राज सुख भोगे।

"स्वामी! मुझे पूरी बात कह लेने दीजिए। फिर मैं प्रमाण दूँगी। मैं पिछले तीन दिन से लगातार देख रही हूँ कि महाबल का दूत वातायन से कूद कर मलया के

खण्ड में आता है। मलया उसे महल के गोपनीय भेद बताती है। अन्तिम निर्णय पर मैं तब पहुँची, जब उसने महाबल के दूत को लक्ष्मीपुंज हार दिया और कहने लगी कि महाबल से कहना कि इस हार को पहनकर आये। युद्ध में उसे विजय मिलेगी और पिताजी, यानी आप पराजित होंगे। यह सुनकर मैं तो सन्न रह गई। अब आप मुझे मारें या छोड़ें, पर सचाई यही है, जो मैंने आपको बताई है।"

महाराज वीरधवल कुछ नहीं बोले और कक्ष में टहलने लगे। फिर क्रोध में फुंकारते हुए बोले—

"यदि यह सच है तो मैं मलया के टुकड़े कर दूंगा। यदि उस दिन की तरह झूठ निकला तो तुम्हारे……।"

"मैं अपने वध के लिए प्रस्तुत हूँ स्वामी!" अनंगवती बोली—"मेरे मर जाने के बाद आप याद तो करेंगे कि एक रानी फूल को बचाने का रहस्य खोलने के कारण बलिदान हो गई।"

"तुम्हारा कथन मुझे सच जान पड़ता है रानी!" राजा वीरधवल बोले—"यदि झूठ होता तो तुम अपने वध के लिए क्यों सहज में प्रस्तुत न हो जातीं। हाँ, तो तुम प्रमाण क्या देती हो?"

"लक्ष्मीपुंज हार मेरे कथन का प्रमाण है।" रानी अनंगवती बोली—"मैंने अपनी आँखों से देखा है कि मलया ने महाबल के दूत को लक्ष्मीपुंज हार दिया था। लक्ष्मीपुंज हार मलया के पास है ही नहीं तो वह आपको देगी कहाँ से? आप उससे लक्ष्मीपुंज हार माँगकर देखिए कि वह क्या कहती है।"

महाराज वीरधवल ने पुनः ताली बजाई। दासी तुरन्त आ गई। महाराज ने उसे आदेश दिया कि बड़ी रानी सौदामिनी और मलया को लेकर आओ। थोड़ी ही देर बाद दोनों आ गईं। महाराज ने मलया से कहा—

"मलया! मुझे इसी समय लक्ष्मीपुंज हार चाहिए।"

सुनते ही मलया के रोंगटे खड़े हो गए। वह भय से काँपने लगी। उसका चेहरा पीला पड़ गया। मलया ने लक्ष्मीपुंज हार महाबल को पहनाकर उसका वरण किया था। उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि मुझसे हार के बारे में पूछताछ होगी। उससे कुछ कहते नहीं बना। महाराज वीरधवल ने उसकी भयाक्रान्त स्थिति को देखकर समझ लिया कि अनंगवती का रहस्योद्घाटन पूर्णतः सत्य है। वे क्रोध में पुनः बोले—

"मलया, मैं जानता हूँ कि वह हार कहाँ है? लेकिन मैं तेरे मुँह से सुनना चाहता हूँ कि कहाँ है हार। बता किसको दिया है हार।"

"चोरी हो गया।" मलया धीरे से बोली।

"कब हुआ चोरी ?" महाराज बोले—"तूने बताया क्यों नहीं कि हार चोरी हो गया ?

"मलया ! तू झूठ बोलती है। मैं नहीं जानता था कि पुत्री के रूप में तू मेरी शत्रु निकलेगी। मैंने सर्पिणी को दूध पिलाकर पाला, यह मेरी भूल थी।

"महाबल के पास हार पहुँचाकर तू मेरा विनाश कराना चाहती थी ? यदि तू पितृ-द्रोहिणी होती तो मैं तुझे क्षमा भी कर देता। पर तू राज्यद्रोहिणी है। मैं राज्य का संरक्षक हूँ। मेरा न्याय पिता का न्याय नहीं, एक राजा का न्याय होगा। मेरे यहाँ राज्यद्रोही को प्राण दण्ड दिया जाता है। मैं तेरी अब कुछ भी सुनना नहीं चाहता।"

महाराज वीरधवल ने मलया को कारागार में डलवा दिया और तीन दिन बाद वध की घोषणा भी कर दी। नगर भर में हाहाकार मच गया। रानी सौदामिनी में इतना साहस नहीं था कि पति से कुछ कहती। अब तो कनकवती ही महाराज की नाक का बाल बनी हुई थी। महाराज का हृदय जीतने के लिए उसी ने मलया के प्रति झूठी सहानुभूति दिखाई—

"स्वामी ! मलया नादान है। उसका अपराध क्षमा कर दीजिए। उसके करने से कुछ न होगा। महाबल कितनी ही बड़ी सेना लेकर आये, आपका क्या बिगाड़ पायेगा ?"

"तुम मोहवश मुझे न्याय-पथ से डिगा रही हो।" वीरधवल बोले—"मेरा निर्णय अटल है।"

अन्त में नगर-रक्षक और मंत्री आदि राजा से मिले और बोले—

"कृपावतार ! आपके आदेशानुसार कल वन में मलया का वध कर दिया जाएगा। लेकिन आप उसकी अन्तिम इच्छा जानने का प्रयत्न तो कीजिए। यह तो हर युग के न्याय-निर्णय की परम्परा है कि वध्य अपराधी की अन्तिम इच्छा पूछी जाती है।"

महाराज वीरधवल ने मलया की अन्तिम इच्छा जानने की अनुमति दे दी। महामात्य स्वयं मलया के पास पहुँचे। वह नवकार के ध्यान में डूबी हुई थी। महामात्य उसके सौम्य और निर्भीक मुख मण्डल को देखकर प्रभावित हुए और सोचने लगे—'राज्यद्रोही जैसे अपराधी का चेहरा तो कलुषित होता है। धर्म को समर्पित मलया दोषी नहीं हो सकती। महाराज बाद में क्रुद्ध पछतायेंगे। यह सब छोटी रानी की चाल है। उसने स्वयं हार चुराया होगा और मनगढ़न्त कहानी बनाकर महाराज पर सिक्का जमा दिया। राजा लोग भी कान के कच्चे होते हैं।'

महामात्य मतिसेन सोच में डूबे हुए थे कि तभी मलया ने अपना ध्यान पूरा किया और सामने खड़े महामात्य को प्रणाम कर बोली—

"कर्मों का भोग हँसते-हँसते सहना चाहिए। जब कर्मों का बंध मैंने किया है तो उन्हें भोगेगा कौन ? मैं वध के लिए तैयार हूँ।"

"कर्म बड़े क्रूर होते हैं राजकुमारी !" महामात्य बोले—"मैं तो तुम्हारी अन्तिम इच्छा जानने आया हूँ।"

"मरते समय भी यदि इच्छा रहे तो जीव को पुनः संसार में आना पड़ता है। कर्मों के दुस्सह बंध का कारण इच्छा ही तो है। इच्छा वह वस्तु है जो कभी पूरी नहीं होती। जो पूरी होती है, वह इच्छा नहीं आवश्यकता होती है। आवश्यकता वह है, जो पूरी होगी और इच्छा वह, जो कभी पूरी नहीं होती। लेकिन जीव इच्छा के पीछे इतना पागल है कि उसका अन्त आ जाता है, पर उसकी इच्छा पूरी नहीं होती।"

"तुम्हारा धर्मानुराग श्लाघ्य है राजकुमारी !" महामात्य बोले—"इच्छा न होना और उसका दमन करना—दोनों अलग हैं। मरते समय भी कोई-न-कोई इच्छा रहती ही है। मरने से सम्बन्धित ही तुम्हारी कोई इच्छा हो तो बताओ।"

"मरने से पहले मैं अपने माता-पिता के दर्शन करना चाहती हूँ।" मलया बोली—"बस, यही इच्छा है।"

"लेकिन महाराज वीरधवल आपका मुँह तक देखना नहीं चाहते।" महामंत्री बोले—"वे यह भी नहीं चाहते कि आपकी माता भी आपसे मिलें।"

"तो फिर मेरी एक दूसरी इच्छा पूरी कीजिए।" मलया बोली—"मैं किसी और के हाथों अपना वध कराना नहीं चाहती। मैं स्वयं अपने ढंग से मरना चाहती हूँ। राजा का उद्देश्य तो मेरे मरने से है। मैं स्वयं मरूँ या कोई दूसरा मेरा वध करे, बात तो एक ही है।

"महामंत्री ! गोलानदी के पास 'पातालकूप' नामक एक भयंकर कूप है। मैं उसमें कूदकर प्राण देना चाहती हूँ।"

मलयासुन्दरी की इच्छा महामात्य ने महाराज वीरधवल को बता दी। महाराज वीरधवल ने अनुमति दे दी। अगले दिन पूरे जनसमूह के साथ सिर पर काला वस्त्र डाले मलया को पातालकूप के पास ले जाया गया। सबके देखते-देखते मलया ने कुएँ में छलाँग लगा दी। लोग चीखने लगे। हाहाकार मच गया। कौन आँख ऐसी थी, जिसमें आँसू न हों। उस दिन चन्द्रलान्ता नगरी में किसी ने खाना नहीं खाया। युवराज मलयकुमार तो इतना दुःखी हुआ कि मूर्च्छित हो गया। लेकिन आज केवल दो प्राणी खुश थे—रानी अनंगवती और उसकी दासी तारिका।

आम्र वृक्ष के नीचे महाबल और मलया बैठे थे। सूरज कुछ चढ़ आया था। जहाँ-तहाँ वृक्षों के पत्तों पर धूप पड़ रही थी। अभी धरती पर नहीं फैली थी। आप बीती सुनाते-सुनाते मलया कुछ देर मौन रही। फिर बोली—

"पापों के साथ पुण्य भी तो होते हैं स्वामी! अब तक मेरे पापों का—दुष्कर्मों का उदय था। अब मेरे पुण्यों की बारी थी। पाप-पुण्य की यह आँख मिचौनी ऐसे ही चलती रहती है। मेरे कुछ पुण्य शेष थे कि मैं भयंकर पातालकूप में भी नहीं मरी। बच तो गई, पर पुनः पाप उदय में आये तो फिर अजगर ने अपना ग्रास बनाया। फिर पुण्य प्रकटे तो आपने बचा लिया। जानें कब तक यह आँख-मिचौनी चलेगी?"

"यह तो चलेगी।" महाबल बोला—"हम भी उसके साथ चलेंगे। लेकिन यह तो बताओ कि पातालकूप से तुम बाहर कैसे निकलीं।"

"वह भी बताती हूँ।" मलया बोली—"मेरी जीवन-रक्षा में नवकार मंत्र ही मेरा सहायक रहा। अब मैं आगे की कथा कहती हूँ।

"महामंत्र नवकार का स्मरण कर मैंने पातालकूप में छलांग लगा दी। कुएँ में नीचे तल तक न जाकर मैं एक झाड़ी में अटक गई, फिर झाड़ी से नीचे गिरी तो रेत में गिरी, मुझे तनिक भी चोट नहीं लगी। कुएँ में मैंने एक द्वार देखा तो उसमें पैठ गई। वह द्वार एक सुरंग का था। सुरंग में सरकते-सरकते मैं यहाँ वन में निकल आई। मेरे प्राण बच गए। पर जाने कहाँ से अजगर आ गया। और उसने मुझे अपने जबड़ों में भींच लिया। उसके बाद क्या हुआ, सो सब आप जानते ही हैं।"

"हम दोनों की आपबीती रहस्य-रोमांच से भरी हुई है।" महाबल बोला—"जो हुआ सो हुआ। अब आगे के लिए सोचना है कि क्या करना है।"

"करना क्या है?" मलया बोली—"मैं आपके लिए जीवन हारा है। आप मिल गए। अब जहाँ भी आप मुझे ले जाओगे आपके साथ चलूँगी।"

"महाराज सुरपाल की पुत्रवधू ऐसे चोरी-चोरी नहीं जाएगी।" महाबल बोला—"जब तक तुम्हारे पिता तुम्हारा कन्यादान न करें, वहाँ तक मेरे साथ चलने में न तो तुम्हारी गरिमा रहेगी और न मेरा गौरव।

"प्रिये! तुम्हारी विमाता ने तुम पर जो आरोप लगाया कि तुम मेरे द्वारा अपने राज्य को अपहृत करना चाहती थीं, उस आरोप को मिथ्या सिद्ध करना है। दूसरी बात यह कि मुझे लक्ष्मीपुंज हार की खोज करनी है, क्योंकि उसके मिले बिना मेरी माता जीवित न रहेगी और तुम्हारे ऊपर लगा लांछन भी नष्ट नहीं होगा। उसके बाद स्वयंवर में डंके की चोट मान-सम्मान से तुम्हारा पाणिग्रहण करना है।"

"मेरा स्वयंवर अब कैसे होगा ?" मलया बोली—"अब इतना समय तो है नहीं कि पिताजी सभी राजाओं पर सूचना भिजवा दें कि मैं मर गई। काफी राजा आ चुके हैं, शेष स्वयंवर के दिन तक आ जायेंगे। उसी दिन मेरे पिता घोषणा करेंगे कि मलया मर चुकी है।"

"सत्य का सूर्य झूठ के बादलों से हमेशा नहीं ढँका रहता।" महाबल बोला—"अनंगवती के षड्यन्त्र का भण्डाफोड़ होगा। तुम्हारे पिता अपने कृत्य पर पछतायेंगे और वे तुम्हें जीवित पाने के लिए तड़पेंगे। तुम्हें जीवित पाकर वे स्वयंवर भी करेंगे। अभी तो पाँच दिन हैं, तुम्हारे स्वयंवर की। तब तक हमें मिलकर यही सब करना है कि सच्चे का बोलबाला और झूठे का मुँह काला।"

तभी मलया एकदम चौंकी और बोली—

"ठहरो। यह सुनो। लगता है कोई आ रहा है।"

"हाँ, घोड़ों की टाप सुनाई दे रही है। शायद राजा—तुम्हारे पिता के सैनिक ही आ रहे हों।"

"वे इधर क्यों आयेंगे ?" मलया बोली—"मैं तो कुएँ में कूदकर मर ही गई थी। फिर किसे ढूँढने आयेंगे ?"

"इसके बारे में सोचने से क्या लाभ कि तुम्हारे पिता के सैनिक—इधर क्यों आयेंगे।" महाबल बोला—"वे आ रहे हैं, इतना जानना तो स्पष्ट ही है।

"प्रिये ! यह भी कैसा विचित्र संयोग है कि हम फलदार आम्र वृक्ष के नीचे बैठे हैं। मैं तुम्हें अभी पुरुष बनाता हूँ।"

महाबल ने एक आम तोड़ा। अपने पास से जड़ी निकाल आम के रस में उसे पिसा और मलया के मस्तक पर तिलक लगा दिया। देखते-देखते मलया पुरुष बन गई। अपने उत्तरीय की महाबल ने धोती बनाकर मलया को पहना दी और कहा—

"अब तुम पुरुष बन गई। तुम्हें कोई नहीं पहचान सकेगा। जब मैं अपनी जीभ से तुम्हारा तिलक मिटाऊँगा, तभी तुम पुनः स्त्री रूप में आओगी। अब तुम्हारा नाम सुन्दरसेन रखता हूँ। अपने इस नाम को याद रखना।"

महाबल और मलया अब महाबल और सुन्दरसेन थे। उन्हें अब किसी के पहचानने का डर नहीं था। आगे क्या करना है, कहाँ जाना है, दोनों इसी पर विचार करने लगे।

१४

मलया ने पातालकूप में छलांग लगाकर प्राण दे दिये, यह जानकर वीरधवल के राजत्व और न्यायप्रियता के अहं को तो संतोष मिला, पर राजा होने के साथ-साथ वे एक वत्सल पिता भी तो थे; उनके पितृत्व को ठेस लगी और उनका पिता-हृदय हाहाकार कर उठा। वे यह सोचकर रानी अनंगवती के महल की ओर अकेले ही चल दिये कि हृदय की कुछ बातें करके अपना मन हल्का करूँगा। समय रात्रि का था। रानी सौदामिनी रोते-रोते बेहोश हो गई थीं। दासियाँ उनका शीतलोपचार कर रही थीं। राजा वीरधवल जैसे ही रानी अनंगवती के द्वार पर पहुंचे कि उन्होंने तारिका और अनंगवती की बात-चीत सुनी। वे कान लगाकर दोनों की बात-चीत सुनने खड़े हो गये। उनकी ओर एक दासी आ रही थी तो उन्होंने ओठों पर उँगली रखकर मौन रहने का संकेत कर दिया। रानी अनंगवती और उसकी दासी तारिका में इस प्रकार बातें हो रही थीं।

"महारानी! इस हार को आप न पहनें तो अच्छा है।" तारिका ने कहा—"यह बड़ा अनिष्टकारी है। मलया ने इसे पहना था तो बेचारी को प्राणों से हाथ धोने पड़े।"

"तू तो पागल है तारिका!" रानी अनंगवती बोली - "यह हार जब मलया से अलग हो गया, तभी तो उस पर मैं झूठा लांछन लगाने में सफल हो सकी। यह तो मुझे मेरे भाग्य ने छप्पर फाड़कर दिया है। एक बार पहनकर तो देखने दे।"

"इसे आप महलों में पहनेंगी तो पकड़ी जाएँगी।" तारिका बोली—"फिर तो महाराज हम दोनों का वध कर देंगे।"

"महाराज तो मेरी मुट्ठी में है।" रानी अनंगवती बोली—"अब तो मैं ऐसी चाल चलूँगी कि सौदामिनी का काँटा भी निकल जाएगा।"

"ठहर जा दुष्टे! मैं तुझे जिन्दा नहीं छोड़ूँगा।" महाराज वीरधवल द्वार पर खड़े-खड़े चीख उठे—"तूने मेरी निर्दोष बेटी के प्राण लिये हैं, मैं तेरे प्राण लूँगा।"

महाराज वीरधवल जोर-जोर से दरवाजा पीटने लगे। अनंगवती और तारिका ने भय के मारे चुप्पी साध ली। द्वार खुलता न देख महाराज वीरधवल अपने खण्ड की ओर भागे—"अभी मैं द्वार तुड़वाकर दुष्टा अनंगवती को बन्दी बनवाता हूँ।"

अनंगवती ने देखा कि अब बचना मुश्किल है तो तारिका से बोली—

"तारिका ! अब तो यहाँ से भागने में ही भलाई है। चल, जल्दी कर। जब तक द्वार टूटेगा, तब तक तो हम दोनों बहुत दूर निकल जायेंगी।"

लक्ष्मीपुंज हार को यत्न से कमर में लपेट कर अनंगवती ने कुछ और चीजें भी जल्दी-जल्दी समेट लीं। तारिका और वह दोनों रस्सी के सहारे वातायन से नीचे उतर गईं। उपवन की दीवार कूदकर दोनों अंधेरे में गायब हो गईं। आगे जाकर अनंगवती ने तारिका से कहा—

"दोनों साथ रहेंगी तो पकड़ी जायेंगी। मैं अपनी रक्षा कर लूँगी। यहाँ से हम दोनों अलग होती हैं। तू किसी गाँव में चली जाना। किसी से विवाह करके रहना।"

"ऐसे संकट में मेरा साथ छोड़ रही हैं?" तारिका बोली—"जहाँ आप रहेंगी, मैं भी आपके साथ ही रहूँगी।"

"हमेशा साथ कौन रहा है पगली?" रानी अनंगवती बोली—"यह देह भी तो हमेशा साथ नहीं रहती। तू जा मैं भी जाती हूँ। ज्यादा बात करने का समय नहीं है।"

कभी-कभी घोर नास्तिकों के मुँह से भी यथार्थ दर्शन की बात निकल जाती है। अनंगवती के मुँह से यह बात सुन कि हमेशा कौन साथ रहा है और यह कि यह देह भी तो हमेशा साथ नहीं रहती, तारिका सोचने लगी—'आज कैसी वैराग्य की बात कर रही है? मैंने हमेशा इसके षड्यंत्रों में साथ दिया और आज यह मुझे संकट में अकेला छोड़ रही है। पापी का साथ देने वाला सुख कैसे पा सकता है? मैंने बड़ी भूल की जो इस दुष्टा का साथ दिया।'

सोचते-सोचते तारिका ने इतना और पूछा—

"अच्छा तो मैं जा रही हूँ। पर इतना तो बता दें कि आप कहाँ जायेंगी। मैं कभी आकर मिल लूँगी।"

"चन्द्रावती नगरी में दो प्रसिद्ध वेश्याएँ हैं— एक है चन्द्रसेना और दूसरी है मगधा।" रानी अनंगवती बोली - "मगधा वेश्या मेरी पक्की सहेली है। मैं उसी के यहाँ रहूँगी। अज्ञातवास के लिए वेश्यागृह सबसे अधिक सुरक्षित स्थान है।"

"मगधा ?" तारिका ने आश्चर्य से पूछा—"मगधा वेश्या आपकी सखी कब कैसे बनी ?"

"आज अन्तिम बार तुझे ताड़का कहती हूँ।" रानी अनंगवती कुछ झल्लाकर बोली—"इतना समय कहाँ है कि मैं तुझे यह बताऊँ कि मगधा मेरी सखी कैसे बनी ?"

यह कह अनंगवती चल दी। तारिका भी अपने को छिपाते हुए भागने लगी।

उधर अनंगवती के द्वार पर महामात्य मतिसेन, कुछ अंगरक्षक और स्वयं महाराज वीरधवल खड़े थे, जो द्वार खुलवाने का प्रयास कर रहे थे। मगर द्वार कौन खोलता ? रानी अनंगवती और दासी तारिका तो कब की भाग चुकी थीं। आखिरकार द्वार तोड़ा गया। भीतर जाकर देखा तो वातायन से बँधी दो रस्सियाँ नीचे लटक रही थीं। अनंगवती और तारिका के भाग जाने की सफलता देख महाराज वीरधवल बड़बड़ाये—

"प्राणों से प्यारी सुता प्राणों पर खेल गई और उसके प्राण लेने वाली अनंगवती प्राण बचाकर चली गई, तो मैं अब किसके लिए जीवित रहूँ ?" यह कह महाराज वीरधवल धड़ाम से गिरे और मूर्च्छित हो गए। महामात्य मतिसेन ने अंगरक्षकों को आदेश दिया—

"तुम जाकर नगर रक्षक को सूचित करो कि अनंगवती का पीछा करें। जैसे भी हो उसे पकड़ना है।"

"और तुम ?" दूसरे सेवकों को महामात्य ने आदेश दिया—"राजवैद्य को इसी समय तत्काल लेकर आओ।"

पूरे राजमहल में हलचल मच गई। रानी सौदामिनी को होश आ गया था। उनकी दासी माधवी ने उन्हें बताया—

"सचाई सामने आ गई है महारानी जी ! लक्ष्मीपुंज हार रानी अनंगवती के ही पास था। उसी ने राजकुमारी पर षड्यंत्रपूर्वक लांछन लगाया था। अब वह लक्ष्मी पुंज हार लेकर भाग गई है।"

"मैं तो जानती थी कि मेरी बेटी निर्दोष है।" रानी सौदामिनी बोली—"अब सचाई सामने आने से क्या लाभ ?"

"आप से ज्यादा तो अब महाराज को दुःख है।" माधवी बोली—"राजवैद्य आये हैं। महाराज बेहोश हैं।"

"चल मुझे उनके पास ले चल।" रानी सौदामिनी उठकर चल दी।

महारानी सौदामिनी जब महाराज वीरधवल के पास पहुँची तब राजवैद्य उनको औषध दे रहे थे। थोड़ी देर बाद उन्हें होश आया तो उठकर बैठ गए और बोले—

"हमने भारी पाप किया है। हमारे हाथों निरपराध की मृत्यु हुई है और अपराधिनी अनंगवती बच गई है। हम अपने पाप का प्रायश्चित्त करेंगे। मंत्री; सवेरा होने के बाद हम चितारोहण करके प्राण त्याग करेंगे। तुम हमारे लिए चिता तैयार कराने की व्यवस्था करो।"

"आप अकेले ही क्यों ?" सौदामिनी रानी बोली—"मैं भी आपके साथ प्राणोत्सर्ग करूँगी।"

"लेकिन आत्महत्या तो और भी भयंकर पाप है राजन् !" महामात्य बोले—"आप-जैसे विवेकशील भी आत्महत्या का पाप करें तो औरों की क्या गति होगी ?"

"आत्म-हत्या पाप है।" राजा वीरधवल बोले— "पर मैं तो आत्म-त्याग कर रहा हूँ। आत्म-हत्या, आत्म-त्याग और आत्मोत्सर्ग—तीनों में बहुत अन्तर है महामंत्री, यद्यपि तीनों की क्रिया एक ही है।

"महामंत्री ! देश रक्षा, किसी के प्राण बचाने हेतु अथवा किसी बड़े उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्वयं को मार देना आत्मोत्सर्ग है, आत्म-हत्या नहीं। इसी तरह अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति के विफल होने पर या किसी भारी अन्याय के प्रायश्चित्तस्वरूप मरना आत्म त्याग है, आत्म हत्या नहीं।

"महामंत्री ! गृह क्लेश से तंग आकर, दुःखी जीवन से तंग आकर या ऐसे ही छोटे-मोटे सांसारिक मान-अपमानों को महत्व देकर जो लोग प्राण देते हैं, वे ही आत्म-हन्ता या आत्म-हत्या करने वाले होते हैं। आत्म-हत्या पाप है, वह कायरता है। लेकिन आत्म त्याग और आत्मोत्सर्ग—दोनों सोद्देश्य होते हैं।"

"इस समय आप विश्राम कीजिए।" महामंत्री बोले—"माधवी ! महारानी जी को भी विश्राम कराओ। क्या करना है, इस पर सवेरे विचार करेंगे।"

× × ×

महाबल और मलया सुन्दरसेन के रूप में—आम्र वृक्ष के नीचे बैठे थे। तभी एक स्त्री हाँफती हुई आई। मलया ने उसे पहचान लिया कि यह तो तारिका है। लेकिन वह बोली नहीं। महाबल ने इससे पूछा—

"तुम घबरा क्यों रही हो ?"

"राजा के सैनिक मेरा पीछा कर रहे हैं ?" तारिका बोली—"करने वाली तो गणिका वेश्या के यहाँ निश्चिन्त बैठी है और मैं मारी-मारी फिर रही हूँ। लेकिन आप दोनों कौन हैं ?"

"हम तो परदेसी हैं।" महाबल ने कहा—"इधर मार्ग भूल गए हैं। अपनी बात समझाकर कहो, शायद हम तुम्हारे कुछ काम आ सकें।"

तारिका ने जो वह जानती थी, सब बातें बता दीं और वन में ही दूसरी ओर चली गई। उसके जाने के घड़ी भर बाद राजा वीरधवल के आठ सैनिक, जो घोड़ों पर सवार थे, आये और महाबल से पूछा—

"आपने यहाँ किसी सुन्दर-सी स्त्री को तो नहीं देखा?"

"मेरे पास तो मेरा मित्र सुन्दरसेन है।" महाबल ने कहा—"कुछ देर पहले एक स्त्री आई तो थी, पर वह सुन्दर नहीं थी।"

"तो वह रानी की दासी तारिका होगी।" सैनिकों ने आपस में बात की—"तारिका मिले या न मिले। हमें तो रानी अनंगवती से काम है। राजा वीरधवल की अन्तिम इच्छा है कि अनंगवती को प्राणदण्ड देकर चिता में जलेंगे। पुत्री के शोक में उन्होंने प्राण त्यागने का निश्चय किया है।"

एक सैनिक ने महाबल से पूछा—

"सो वह स्त्री जो तुमने देखी थी, किधर गई है?"

तारिका को बचाने के उद्देश्य से महाबल ने तारिका के जाने की विपरीत दिशा बता दी कि इधर गई है। आठों सैनिक उसी ओर चले गए। उनके जाने के बाद महाबल ने मलया से कहा—

"सुन्दरसेन, जो काम हमें करने थे, उनमें एक काम यह भी है कि हमें तुम्हारे पिता के प्राण बचाने हैं। चलो, अब यहाँ से चलो।"

महाबल और मलया वन में आगे गोला नदी की ओर बढ़ गए।

१५

गजपुर के राजा चन्द्रयशा के एक सामन्त थे वीरसेन। वीरसेन के एक पुत्री हुई। नाम रखा गया मागधी। मागधी छह साल की हुई कि उसकी माँ का देहान्त हो गया। तब वीरसेन ने दूसरा विवाह कर लिया। दूसरे विवाह से सामन्त वीरसेन

का जीवन तो सुखी हो गया, पर मागधी के जीवन में काँटे बिछ गए। सौतेली माँ मागधी को जितने कष्ट दे सकती थी, देती थी।

कष्टों में ही सही, मागधी के दिन भी कटने ही थे। उसके दिन फटते गए और वह बड़ी होती गई। उसके रूप में निखार आया। सुन्दर तो वह थी ही, यौवन ने उसे और भी आकर्षक बना दिया। सामंत-पुत्री होने के कारण मागधी का राजमहल में आना-जाना रहता था और इसी आने-जाने में उसका राजकुमारी अनंगवती से मेल-जोल हो गया। समान वय की होने के कारण दोनों में बहनापा हो गया। मागधी और अनंगवती—दोनों पक्की सहेली बन गईं। अनंगवती उसे अपने पास से वस्त्र दे देती थी। कुछ वस्त्राभूषण भी उसने उसे दिये थे। प्यार से अनंगवती मागधी को मगधा कहती थी और अब उसका मगधा नाम ही प्रसिद्ध हो गया।

वीरसेन के घर में उसकी दूसरी पत्नी का ही राज्य था। उसने मगधा को ब्याह के नाम पर एक सौदागर को बेच दिया। सौदागर ने मगधा का भोग किया और उसे चन्द्रावती नगरी की वेश्या कामलता के हाथों बेच दिया। मगधा के भाग्य से कामलता बुढ़ापा आने से पहले ही मर गई। अब कामलता के विलास भवन की एक मात्र स्वामिनी मगधा थी। मधूलिका, हिरण और चम्पा मगधा की मुख्य दासियाँ थीं, जो मगधा के संकेत पर प्राण देने को तत्पर रहती थीं। मगधा का स्वयं एक रथ था। बाजार और दास थे। श्रेष्ठि-पुत्र और धनी लोग मगधा के यहाँ आते थे।

गजपुर के राजा चन्द्रयशा की पुत्री अनंगवती का विवाह चन्द्रावती के राजा वीरधवल से हो गया। एक दिन राजा-रानी की शोभा यात्रा निकल रही थी। अपने भवन से मगधा ने सजी-धजी अनंगवती को राजा वीरधवल के साथ खुले रथ में देखा तो देखती रह गई। मगधा ने अनंगवती को पहचान लिया और खड़ी-खड़ी सोचने लगी—"तो मेरी सखी अनंगवती यहाँ की रानी बन गई है। इससे पहचान करनी चाहिए। कभी काम आ सकती है। मैं भी इसके काम आ सकती हूँ। लेकिन यह जानने पर कि मैं वेश्या हूँ, कहीं यह घृणा न करने लगे। जो होगा देखा जाएगा।"

दूसरे दिन मगधा ने एक सेठानी का वेश बनाया। मधूलिका को साथ लिया। एक पालकी मँगवाकर उसमें बैठी और राजमहल को चल दी। अगली ड्योढ़ी पर पहुँच उसकी दासी मधूलिका ने पहरेदारनी को बताया—छोटी महारानी से सेठानी भानुमती मिलना चाहती है। ये उनके पीहर गजपुर की हैं और यहाँ चन्द्रावती नगरी में सेठानी हैं।"

पहरेदारिनी ने छोटी रानी अनंगवती को सब बातें बता दीं तो वह चकरा में

पड़ गई कि मेरे यहाँ की भानुमती कौन है। फिर अपनी दासी तारिका से कहा--- "तारिका ! जा तू भानुमती को साथ ले आ।। देखूँ कौन है।"

तारिका मगधा को जानती थी। उसने देखते ही पहचाना --"अरे तुम हो, वीरसेन सामंत की पुत्री मग····धा।"

तारिका मगधा कहते-कहते अटक गई, क्योंकि मगधा ने आँख मार दी थी और बीच में ही बोल पड़ी ---

"चलो, तुमने भानुमती को पहचान तो लिया। देखती हूँ कि वे भी पहचानती हैं या नहीं।"

मगधा और मधूलिका दोनों तारिका के साथ अनंगवती के पास पहुँच गई। मगधा से मिलकर अनंगवती ने प्रसन्नता प्रकट की। उसके कक्ष में अब चार थी— स्वयं अनंगवती, मगधा, तारिका और मधूलिका। मगधा ने संक्षेप में आप-बीती सुनाकर कहा---

"राजकुमारी जी ! भाग्य ने सामंत की बेटी को वेश्या बना दिया।"

"तू यहीं आ जा।" अनंगवती ने कहा--- "यहाँ तू तारिका के साथ रहना। छोड़ दे अपने विलास भवन को।"

"जो जीव जिस योनि में जन्म लेता है, वह उसी योनि में सुख रहता है।" मगधा ने कहा---"मैं वहीं ठीक हूँ। तुम्हें पाकर मैं बड़ी खुश हूँ कि चलो कोई अपना तो मिल गया।"

प्रकट में यह कहने के बाद मगधा सोचने लगी---'इसके यहाँ आ जाऊँ तो रहूँगी तो दासी ही। वहाँ मैं अपने विलास भवन की रानी हूँ। इससे तो दूर ही रहना अच्छा। गजपुर में इसने मेरी चोरी पकड़कर खींची थी। तारिका की भी खींची थी। इसने तारिका का नाम बिगाड़ कर ताड़का कर दिया और मैं मागधी से मगधा बना दी···।'

मगधा को सोचने में मौन देख अनंगवती बोली---

"अच्छा छोड़ इन बातों को। क्या सोच रही है ? यह बता मैरेय लेगी ? यहाँ मैरेय पीना निषिद्ध है। पर मैं तो रखती हूँ। कभी-कभी लुक-छिपकर चलता है। आज तेरे साथ पीऊँगी।"

दोनों ने मैरेय पान किया। काफी देर मगधा बैठी। फिर चलने को हुई तो अनंगवती ने कहा---

"कभी-कभी यहाँ हो जाया कर। मैं पहरेदारी से तेरी पहचान करा दूँगी। फिर तू सीधी यहाँ चली आना। तुझे कोई नहीं रोकेगा।"

× × ×

रानी अनंगवती को मगधा वेश्या के यहाँ जाना पड़ेगा, यह उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। रात काफी हो गई थी। मगधा गा-बजाकर लेट चुकी थी। दासियाँ सो रही थीं। विलास भवन पर एक बूढ़ा प्रहरी बैठा ऊँघ रहा था। रानी अनंगवती ने उसे जगाया और कठोर स्वर में कहा—"ए! उठ। जाकर मगधा को सूचना दे कि मुझे अभी इसी वक्त मिलना है। कहना—तुम्हारे गजपुर से सेठानी भानुमती आई है।"

पहरेदार ने पहले मधूलिका से सब बातें कहीं। मधूलिका सोचने लगी—"भानुमती तो मेरी स्वामिनी मगधा बनी थीं, जब रानी अनंगवती के यहाँ गई थीं। यह नाम भी रानी ही जानती है। क्या रानी अनंगवती ही तो नहीं हैं?"

मधूलिका ने मगधा को बताया तो मगधा भी समझ गई कि रानी अनंगवती ही हो सकती हैं। उसने सोचा मेरे छद्म नाम का प्रयोग करके उसने मुझे अच्छा संकेत दिया।

दासी मधूलिका अनंगवती को लेकर मगधा के पास पहुँची तो मगधा दंग रह गई। उसने आश्चर्य से कहा—

"आधी रात गए आप और यहाँ?"

"आधी रात अपनों के घर ही जाया जा सकता है।"

"तुम्हारा ही घर है।" मगधा बोली—"बैठकर बताओ क्या बात है। मधूलिका जा दो चषक तैयार कर।"

अनंगवती सुखासन पर बैठ गई। संक्षेप में उसने आप-बीती सुना दी। मधूलिका मदिरा के दो चषक देकर बाहर चली गई तो मगधा ने कहा—

"तुम यहाँ पूरी तरह सुरक्षित हो। यहाँ तुमको कोई नहीं जानेगा। लेकिन तुमको मेरे नृत्य भवन में कभी नहीं जाना है क्योंकि मेरा नृत्य देखने नगर के लोग आते हैं। किसी ने तुम्हें पहचान लिया तो अनर्थ हो जाएगा।"

"मुझे तो एक और भी डर है।" अनंगवती बोली—"राजा वीरधवल ने हर घर की तलाशी जारी कर दी तो?"

"तो देखा जाएगा।" मगधा बोली—"अभी तो तुम निश्चिन्त रहो।"

इस प्रकार अनंगवती मगधा के यहाँ सुरक्षित पहुँच गई। तारिका ने भी लुक-छिपकर प्राण बचा लिये। मलया को अजगर द्वारा निगलने के लिए मुँह में दबाना, महाबल का व्योमरी द्वारा आकाश मार्ग से वन में उतरना और मलया को बचाना, अनंगवती का मगधा के यहाँ पहुँच जाना, राजा वीरधवल को सचाई का पता चलना और प्राण देने का संकल्प करना—इतनी सारी घटनाएँ जिस एक रात में घटी थीं, वह रात बीत गई। उस रात के बाद जो सवेरा हुआ, उस दिन के प्रातःकाल महाबल ने जड़ी के तिलक से मलया को सुन्दरसेन बना लिया और अब महाबल तथा

सुन्दरसेन अपने उद्देश्य को पूर्ण करने की योजना लेकर गोला नदी के निकट पहुँच गए।

× × ×

महाबल और मलया उर्फ सुन्दरसेन—दोनों ने पहले गोला नदी में स्नान किया। विवशता में वही वस्त्र धारण किये। फिर दोनों आगे बढ़े तो उन्हें एक अत्यन्त प्राचीन मन्दिर मिला, जो भट्टारिका देवी का मन्दिर था। महाबल और मलया जैसे ही मन्दिर में अन्दर गए तो चिमगादड़ें उड़कर भागने लगीं। नीचे फर्श पर ढेरों चिमगादड़ों का दल पड़ा था। जहाँ-तहा बैठे कबूतर भी गुटरगूँ कर रहे थे और दीवारों पर मकड़ी के जाले लगे थे। मन्दिर की दशा – दुर्दशा देखकर मलया बोली—

"इससे तो अच्छा है किसी वृक्ष के नीचे बैठें। यहाँ तो बहुत गन्दगी है।"

"यहाँ की गन्दगी ही तो हमारे लिए वरदान है।" महाबल बोला—"चिमगादड़ों के बसेरे और मकड़ी के जालों से यह सुनिश्चित है कि यहाँ कोई आता जाता नहीं है। हमें छिपकर अपना काम करने के लिए यह मन्दिर पूर्ण निरापद है। तुम यहीं बैठो। मैं नगर होकर आता हूँ।"

"मैं अकेली?" मलया ने कहा—"मैं भी साथ चलूँगी।"

"मैं अकेली नहीं, मैं अकेला।" महाबल हँसकर बोला—"तुम्हें कहना चाहिए कि मैं साथ चलूँगा। भूलो मत कि तुम मलया नहीं, सुन्दरसेन हो और हो पुरुष। तुम्हें अपने यौवन से एक स्त्री को वश में करना है।"

महाबल की बात पर मलया भी हँस दी और बोली—

"स्त्री को तो मैं वश में कर लूँगी, नहीं-नहीं, कर लूँगा। पर आपका क्या होगा?"

"मेरे लिए ही तो उसे वश में करना है।" महाबल बोला—"हम दोनों के लिए वन में करना है। देखो, तुम्हें जाना है मगधा वेश्या के यहाँ। वहाँ तुम्हारी विमाता अनंगवती छिपी हुई है। अनंगवती वासना की पिटारी है। जब मैं श्रेष्ठिपुत्र विमलकुमार के रूप में तुम्हारे महल में गया था तो धोखे से अनंगवती के कक्ष में पहुँच गया था। वह मुझ पर बुरी तरह आसक्त हुई थी। वह सब मैंने तुम्हें बताया था। पुरुष की भूखी अनंगवती तुम पर भी रीझेगी। उसके रीझने का लाभ उठाकर तुम्हें उससे लक्ष्मीपुंज हार लेना है। लक्ष्मीपुंज हार से मेरी माता के प्राण बचेंगे और तुम पर लगा लाछन भी मिटेगा।

"मलया! मैं पहले नगर में जाता हूँ। तुम्हारे लिए पुरुषोचित सुन्दर पोशाक, कुछ मिष्टान्न और कुछ धन मैं भेजूँगा। आज रात तुम्हें मगधा के विलास भवन में रहना है। कल संध्या को उसी मन्दिर में हमारी भेंट होगी।"

"तो मेरी अँगूठी लेते जाओ। इसे बेच देना।" मलया ने कहा—"वस्त्रों के लिए धन की जरूरत तो पड़ेगी?"

"हाँ अपनी अँगूठी मुझे दो।" महाबल बोला—"लेकिन इसे बेचना नहीं है। बेचने के लिए मेरे पास मेरा रत्न हार है।। यह अँगूठी तुम्हारे पास रहेगी तो तुम्हें कोई चोर समझेगा।"

महाबल चल दिया। चलते-चलते इसने वृक्ष का एक तना देखा, जो पोला था और दो भागों में बँटा था। महाबल ने उसे देखकर कहा—

"यह तना हमारे बड़े काम में आयेगा। उसके एक भाग में एक व्यक्ति बड़े आराम से सो सकता है, बैठ सकता है और खड़ा भी हो सकता है। दूसरा भाग जोड़ देने से अन्दर का व्यक्ति उसमें पूरी तरह छिप जायगा। इसमें भीतर से बन्द करने की साँकल भी लगी है। लेकिन यह आया कहाँ से?"

"इसके बारे में फिर सोचेंगे।" मलया बोली, "अब तो जाओ।"

महाबल ने गुटिका के प्रयोग से एक ज्योतिषी का रूप बना लिया। सिर पर पीली पगड़ी, माथे पर तिलक और बगल में पोथी तथा गणित करने के लिए काले पत्थर का एक खण्ड। इस वेश में वह चन्द्रावती नगरी की ओर चल दिया। नगरी में प्रवेश करने से पूर्व ही उसने देखा कि एक हाथी खड़ा है और उसके आस-पास दस-बीस व्यक्ति भी उसे घेरे खड़े हैं। कुछ व्यक्ति हाथी की लीद पानी-भरी नाद में घोलकर उसमें से स्वर्णमुद्राएँ निकाल रहे हैं। यह सब देखकर महाबल को बड़ा कुतूहल हुआ कि हाथी की लीद में से स्वर्णमुद्राएँ क्यों निकाली जा रही हैं। उसने एक से पूछा—

"क्या यह कोई दिव्य हाथी है जो लीद में स्वर्ण-मुद्राएँ देता है?"

"हाथी तो साधारण ही है।" एक ने कहा—"पर चोरों की पोल खोली जा रही है?"

"कैसी पोल?" महाबल ने पूछा—"क्या किया चोरों ने?"

एक व्यक्ति महाबल को विस्तार से बताने लगा। उसने जो कहानी बताई, वह इस प्रकार थी।

कुछ चोरों ने राजा वीरधवल के कोष से स्वर्णमुद्राएँ चुराईं और हाथी के मोदकों में मिलाकर उसे खिला दीं। ये चोर शहर के नहीं, राजा की गजशाला के ही कुछ सेवक थे। आटे में मुद्राएँ मिलाकर उन्होंने मोदक बनाये और इस हाथी को खिला दिये। यह हाथी राजा को प्राणों से प्रिय है। इसने कई युद्धों में उनको विजय दिलाई है। मोदक में स्वर्णमुद्राएँ जब इसके पेट में पहुँचीं तो इसे असह्य पीड़ा हुई। गज चिकित्सक ने इसे रेचक औषध दी। इसे ढीला गल आया और साथ में

स्वर्णमुद्राएँ निकलीं। हम सब सेवक राज 'चिकित्सक के आदेश' से यहाँ इसकी लीद पानी में घोल-घोल कर स्वर्णमुद्राएँ निकाल रहे हैं।

"हाथी तो बच जाएगा।" एक राज सेवक ने कहा—"पर हमारे महाराज तो पुत्री मलया के शोक में आज चिताशयन करके प्राण दे देंगे। उनके साथ-साथ रानी सौदामिनी भी जलकर मर जाएँगी।"

"उनके मरने का योग तो अभी है नहीं।" महाबल बोला—"मुझे अपनी ज्योतिष पर अटूट विश्वास है। यदि मेरी बात गलत निकले तो मैं स्वयं प्राणोत्सर्ग कर दूँगा। मेरा दावा है कि मलया को श्री कामदेव ने पाताल कूप में से निकाल-कर बचा लिया है। वह स्वयंवर के दिन प्रकट भी होगी।"

"क्या तुम्हारी ज्योतिष से असंभव बातें भी सत्य हो जाएँगी?" राजसेवक महाबल के निकट खिसक आये और बोले—"यदि तुम्हें अपनी ज्योतिष का ऐसा भरोसा है तो ये सब बातें हमारे राजा को बताकर उन्हें बचा लीजिए।"

"यदि मैं राजा वीरधवल को न बचा लूँ तो मेरा नाम आचार्य बलदेव नहीं।" अपना नाम आचार्य बलदेव बताकर महाबल ने आगे कहा—"मैं महाराज वीरधवल के पास जा रहा हूँ। पर तुम भी मेरा एक छोटा-सा काम कर दो। यह मेरा रत्न हार ले लो। इसे बेचकर मेरा कुछ सामान खरीदकर मेरे साथी के पास पहुँचा दो।"

"आचार्य जी! तुम हमारे राजा को बचाने किसी अज्ञात शक्ति ने भेजे हो।" एक राजसेवक बोला—"क्या हम तुम्हारा यह छोटा सा काम भी नहीं करेंगे? अपना हार अपने पास ही रखो। यह बता दो सामान क्या-क्या लाना है और कहाँ पहुँचाना है।"

पुरुषोचित पोशाक, मिष्टान्न और कुछ नकद स्वर्णमुद्राएँ बताने के बाद महाबल ने बताया कि मेरा साथी सुन्दरसेन गोला नदी के किनारे भट्टारिका के मन्दिर में बैठा है। यह सुन एक सेवक सुन्दरसेन को सामान देने चला गया और महाबल ने चुपचाप मलया की अँगूठी घास में रखकर हाथी को खिला दी। इतना करने के बाद वह राजा वीरधवल के पास चल दिया।

मलया को वस्त्र मिल गए। उसने वस्त्र धारण किये। स्वर्णमुद्राएँ कमर में बाँधीं, जो पचास थीं। एक धनी श्रेष्ठी का पुत्र बनकर मलया सुन्दरसेन के रूप में सीधी मगधा वेश्या के घर पहुँच गई।

□

१६

महाबल ने देखा कि एक बड़े मैदान में चिता जल रही है। हजारों नर-नारी उस मैदान में हैं। एक विशाल मंच पर राजा वीरधवल, महारानी सौदामिनी और महामात्य मतिसेन आदि बैठे हैं। सभी शोकाकुल हैं। महाराज वीरधवल और उन्हीं की अनुगामिनी सौदामिनी रानी ने आत्मदाह का एक्का निश्चय कर लिया है।

राजा वीरधवल मंच से उठे। उनका एक हाथ मंत्री के कंधे पर रखा है। महारानी सौदामिनी भी उठकर चल दी। इसी समय महाबल चिल्लाया---

"चिता ठंडी कीजिए। राजा वीरधवल आत्मदाह नहीं करेंगे। राजकुमारी मलया जीवित है।"

महाबल की आवाज सुनकर सभी चौंककर उसकी ओर देखने लगे। मंत्री ने राजा को रोका---"बैठिये, अन्नदाता! इसे आने दीजिए।"

महाबल मंच के निकट पहुँचा और बोला---

"राजन्! जिस मलया के लिए आप प्राण दे रहे हैं, वह जीवित है।"

"यह आप किस आधार पर कहते हैं?" मंत्री ने पूछा—"जीवित है तो कहाँ है?"

"उसका जीवित बचना असम्भव है।" राजा वीरधवल बोले—"पाताल कूप में गिरने वाला कौन बचता है?"

"महामंत्री और राजन्! आप दोनों सुनें। मारने वाले से बचाने वाले की शक्ति अधिक होती है। संसार में बड़े-बड़े चमत्कार हो जाते हैं। मलया का बचना भी एक चमत्कार ही है, पर वह जीवित है। उसे बचाया है आपकी कुलदेवी मलया देवी ने या शासन देव ने—बचाया किसी दैवी शक्ति ने है। जिसके रक्षक प्रबल पुण्य होते हैं, उसे साक्षात् यमराज भी नहीं मार सकते।"

"क्या आपने देखा है मेरी बेटी को?" महारानी सौदामिनी बोलीं---"कहाँ है वह?"

"तुम मुझे बचाने के लिए बहका रहे हो भाई !" राजा बोले—"वह अब इस संसार में नहीं है।"

"मैंने उसे देखा तो नहीं है।" महाबल बोला—"पर मैं अपने निमित्त ज्ञान के आधार पर कहता हूँ कि वह दो दिन बाद, स्वयंवर के समय प्रकट होगी। राजन्! ज्योतिष भविष्य का नेत्र होती है। भविष्य की मैं प्रत्येक बात को बता सकता हूँ। यदि आपको मरना ही है तो दो दिन बाद भी मर सकते हैं। हाँ, यदि स्वयंवर के दिन मलया प्रकट नहीं हुई तो मैं अपने प्राण अवश्य दे दूँगा, बंगवासी आचार्य बलदेव की भविष्यवाणी आज तक मिथ्या नहीं हुई। आप चिता ठंडी करायें और महलों को चलें। मैं अपने कथन का प्रमाण भी दूँगा। भला आप ही सोचिए, झूठी दिलासा देने से मुझे क्या मिलेगा।"

"आचार्य बलदेव की जय" के साथ सैकड़ों व्यक्ति चिता ठंडी करने में लग गए। राजा वीरधवल भी हर्ष में विभोर हो गए, मानो सर्प को मणि अथवा तड़पती मछली को पानी मिल गया हो। सब राजमहल पहुँचे। महाबल आचार्य बलदेव के रूप में एक सुखासन पर बैठा। जब सब बैठ गए तो महामात्य ने कहा—

"आचार्य जी! आपकी ज्योतिष तो गलत नहीं हो सकती। फिर भी हमें तसल्ली के लिए कुछ प्रमाण तो दीजिए।"

"हाँ, कुछ प्रमाण देता हूँ।" महाबल बोला—"जब राजकुमारी पाताल कूप में गिरने गई थी, तब वह सब आभूषण उतार गई थी, क्या यह सच है?"

"हाँ बिल्कुल सच है।" मंत्री बोला—"वह केवल एक अँगूठी पहनकर गई थी, जिस पर मलयासुन्दरी नाम अंकित था।"

"तो आज रात्रि तक या कल प्रातःकाल आपको राजकुमारी की मुद्रिका प्राप्त होगी।" महाबल बोला—"मेरी ज्योतिष की सचाई का एक प्रमाण तो यही है। दूसरा प्रमाण यह है कि आपकी नगरी के पूर्वी द्वार के बाहर एक काष्ठ स्तम्भ पड़ा मिलेगा। इस स्तम्भ को आपकी कुलदेवी वहाँ स्वयंवर की रात रख जाएगी।

"महामंत्री! स्वयंवर में जो राजा आयेंगे उनकी परीक्षा के लिए आप वज्रसार धनुष तो रखेंगे ही, साथ ही यह भी करें कि वज्रसार धनुष को चढ़ाकर एक ही बाण जो उस स्तम्भ को बेध देगा, वही मलया का वरण करेगा।"

"धन्य है आपका ज्योतिष ज्ञान।" महामात्य ने कहा—"आचार्य वर! इतना भी बता दें कि मलया का पति कौन होगा।"

"बहुत-सी बातें बताने से हानि होती है।" महाबल बोला—"यदि मैं यह

बता दूँ कि मलया का पति कौन होगा तो स्वयंवर में आने वाले अन्य राजा निराश होंगे। लेकिन आपकी प्रतीति के लिए मैं भूर्जपत्र पर मलया के पति का नाम लिखकर उसे मुद्रांकित करके बन्द कर दूँगा। मलया के विवाह के बाद आप वह नाम पढ़ लेना।"

महामंत्री ने तुरन्त एक भूर्जपत्र मँगाया। महाबल ने उसमें लिखा—"मलया-सुन्दरी का वरण पृथ्वीस्थानपुर के नरेश सुरपाल का पुत्र महाबल करेगा।" यह लिखकर उसने उसे बन्द करके महामंत्री को दे दिया।

महाबल को अतिथि भवन में ठहरा दिया। उसने जो भी सुविधा चाही, जुटा दी गई। रात को लेटे-लेटे महाबल सोचने लगा—"मैं यहाँ आचार्य बलदेव बना हूँ और मलया श्रेष्ठिपुत्र सुन्दरसेन बनकर मगधा के यहाँ सो रही होगी। विधि की विडम्बना भी कैसी विचित्र है। मलया चतुर है। अनंगवती से वह लक्ष्मीपुंज हार अवश्य ले लेगी। हाँ, तब तक मैं अपने माता-पिता के लिए पत्र ही लिख दूँ। रातों रात मेरे अचानक गायब हो जाने से मेरे माता-पिता बहुत चिंतित हो रहे होंगे। मेरी खोज भी कराई होगी। यह बात उनकी कल्पना में भी नहीं होगी कि कोई व्यन्तरी रातों रात मुझे यहाँ लाकर पटकेगी।'

महाबल ने अपनी माता के नाम पत्र लिखा। उसमें इस बात पर जोर दिया था कि लक्ष्मीपुंज हार दो-एक दिन में मेरे हाथ में आ जाएगा, मैं उसे लेकर ही आऊँगा। पत्र लिखने के बाद महाबल सो गया।

प्रातःकाल उठकर महाबल नित्य कर्मों से निपटकर नवकार मंत्र का जाप करने बैठा। जाप से वह उठा ही था कि एक सेवक आया और बोला—

"महाराजश्री ने आपको अभी याद किया है।"

महाबल भी सेवक के साथ चल दिया। राजा के पास पहुँचा ही था कि उसकी जय-जयकार होने लगी। महाराज वीरधवल बोले—

"आचार्य बलदेव! आप तो सलमुच त्रिकालज्ञ हैं। जिस अँगूठी को मलया पहन कर पाताल कूप में कूदी थी, वह अँगूठी हमें एक हस्तिसेवक से अभी-अभी प्राप्त हुई है। स्वर्णमुद्राएँ तो हाथी को मोदक में रखकर खिलाई गई थीं, पर यह अँगूठी हाथी के पेट में कैसे पहुँच सकती है?"

"आपकी कुलदेवी क्या नहीं कर सकती?" महाबल बोला—"यह तो मैं भी नहीं जानता था कि मलया की अँगूठी कहाँ मिलेगी, पर इतना जानता था कि मिलेगी, सो मिल गई। अब तो आपको मेरी ज्योतिष विद्या पर विश्वास है न?"

"शत-प्रतिशत।" वीरधवल बोले—"अब आप स्वयंवर तक यहीं रहें।"

"मैं मलया के आने और उसका स्वयंवर होने तक यहां से कहीं नहीं जाऊँगा।" महाबल बोला—"पर मुझे मलया के लिए एक अनुष्ठान करना है। बुरे ग्रहों के प्रभाव से वह संकटों में फँसी हुई है। मुझे उसके अशुभ ग्रहों की शान्ति हेतु कुछ अनुष्ठान करना है। इसके लिए नगरी में जाना होगा।"

"आप कहीं भी जाइए।" राजा बोले—"चाहें तो दो-चार सेवक साथ ले जाइए।"

"मैं अकेला ही जाऊँगा।" महाबल बोला—"फिलहाल मेरा एक काम करा दीजिए। अपना एक दूत पृथ्वीस्थानपुर भेज दीजिए। मैं उसे एक पत्र दूँगा, वह उस पत्र को यथास्थान दे आयेगा। मैंने वहाँ के एक ज्योतिषी का भविष्य फल बनाया है। वह उसे पहुँचाना है।"

वीरधवल राजा के संकेत पर थोड़ी देर बाद एक अश्वारोही दूत आ गया। महाबल ने उसे अपना पत्र देकर अलग ले जाकर बता दिया कि इसे राजभवन में पहुँचा देना। जब वह पत्र दे चुका तो महामात्य ने कहा—

"आचार्य! आपने न केवल महाराज को, अपितु पूरी जनता को बचाया है। अब हमारी एक प्रार्थना स्वीकार करें कि जो भी हम दें, वह दक्षिणा अवश्य स्वीकार कर लें।"

महाबल को धन की जरूरत थी। उसको कई वस्तुएँ खरीदनी थीं। मलया को भी धन देना था। अतः उसने राजा की दी हुई स्वर्णमुद्राएँ स्वीकार कर लीं और फिर नगरी में घूमने चल दिया। उसने सोचा कि मलया से तो आज संध्या को मिलना है, तब तक कुछ और काम निपटा लूँ। महाबल की रात तो बीत गई। अब यह भी देखें कि जो रात महाबल की राजा वीरधवल के अतिथि गृह में बीती, वही रात मलया की सुन्दरसेन के रूप में मगधा वेश्या यहाँ कैसी बीती।

\+ × ×

सुन्दरसेन के रूप में मलया ने मगधा के कैलास भवन में प्रवेश पा लिया। गाँठ का पूरा युवक समझ मगधा की दासी मधूलिका ने उसे एक सजे हुए कक्ष में ठहरा दिया।

"मैं मगधा देवी के दर्शन करना चाहता हूँ।" सुन्दरसेन ने कहा—"कब मिल पायेंगी?"

"अभी तो आप थके-हारे हैं।" मधूलिका ने कहा—"संध्या तक विश्राम कीजिए। मगधा देवी भी इस समय विश्राम कर रही हैं। रात को वे आपसे आकर मिलेंगी। मैं सूचना भिजवाये देती हूँ। हाँ, आपका क्या परिचय दूँ?"

"मेरा नाम सुन्दरसेन है।" मलया ने कहा—"परदेसी हूँ। यहाँ व्यापार करने आया था। सोचा, एक रात मगधा देवी के यहाँ ही बिताऊँ।"

"एक रात ही क्यों, महीनों रहिये।" मधूलिका ग्राहक फँसाना जानती थी—"हमारी स्वामिनी तो आप पर बलिहार हो जायेंगी।"

यह कह मधूलिका मुस्कराई और सीधी मगधा के पास पहुँची। वहाँ अनंगवती भी बैठी हुई थी। दोनों के सामने मधूलिका ने कहा—

"देवी! एक श्रेष्ठिपुत्र आया है।। परदेसी है। जैसा नाम है, वैसा ही रूप भी है। साक्षात् अनंगरूप है।"

"अनंगवती के लिए अनंगरूप तो आयेगा ही।" मगधा रानी अनंगवती की ओर देख मुस्कराई—"क्यों सखी! जाओगी उसके साथ। यदि वह तुम्हें अपना ले तो तुम उसी की बन जाओ। शायद अपने साथ ले जाने को राजी हो जाए। यहाँ तो तुम कभी-न-कभी संकट में भी पड़ सकती हो।"

"तुमने मेरे मन की बात कह दी मगधा!" अनंगवती बोली—"पर मुझे शक है कि वह कहीं राजा वीरधवल का गुप्तचर न हो, जो श्रेष्ठिपुत्र बनकर मुझे देश्याओं के यहाँ खोज रहा हो।"

"गुप्तचर को मैं उड़ती निगाह से पहचान लेती हूँ।" मगधा बोली—"पहले उससे मैं मिलूँगी। गुप्तचर होगा तो तेरी परछाहीं भी उसे न देखने दूँगी। यदि परदेसी ही हुआ तो तेरी मुलाकात करवा दूँगी। मुझे तो उसके धन से मतलब है। रात भर में मैं उससे जो ऐंठ सकूँगी, सो ऐंठ लूँगी।"

रात हुई। सजधज कर मगधा सुन्दरसेन के पास पहुँची। मीठी-मीठी बातें करके उस पर अपना प्रभाव जमाया, पर सुन्दरसेन उसके प्रभाव में भला क्यों आता? पर दिखावटी रूप में वह उससे प्रभावित हुआ। अपने ऊपर मगधा का प्रभाव दिखाने के लिए सुन्दरसेन ने मगधा को पच्चीस स्वर्णमुद्राएँ दे दीं। मगधा अब उसके प्रभाव में आ गई और बोली—"हम वेश्याएँ मुफ्त में धन नहीं लेतीं। अब आपकी रात मेरे साथ बीतेगी।"

"ये स्वर्णमुद्राएँ तो मैंने आपके यहाँ ठहरने को दी है।" सुन्दरसेन रूपी मलया ने कहा—"भोग तो मैं उसी से करता हूँ, जो मेरे अलावा किसी और के साथ भोग न कर सके। तुम्हारे यहाँ ऐसी कोई सुन्दरी हो, जो मेरे साथ रह सके तो मैं उसके लिए कोई कसर नहीं छोड़ूँगा।"

मलया की ये बातें सुनकर मगधा सोचने लगी—'कैसी विचित्र बात है कि जो बात मैंने अनंगवती के लिए सोची थी, वही बात यह श्रेष्ठिपुत्र कह रहा है। अब मैं इसकी भेंट अनंगवती से अवश्य कराऊँगी।'

उधर अनंगवती झरोखे के पास खड़ी मगधा और सुन्दरसेन रूपी मलया की बातें सुन रही थी। उसे देख रानी अनंगवती उस पर आसक्त हो गई और सोचने

लगी—"कैसा सुन्दर युवक है, साक्षात् मदन है। निश्चित ही यह राजा का गुप्तचर न होकर परदेसी ही है।'

मगधा ने सुन्दरसेन से कहा —

"आप मेरे साथ भोग नहीं करना चाहते, यह मेरा दुर्भाग्य है। हम वेश्याएँ यह कैसे कर सकती हैं कि एक के बाद दूसरे से भोग न करें? हाँ, मेरी एक सखी बाहर से आई है, उसका नाम है वल्लभा। वह आपके साथ सदा रह सकती है।"

"तो मैं उससे मिलना चाहता हूँ।" सुन्दरसेन ने कहा—"वल्लभा नाम तो सुन्दर है। वह भी सुन्दर होगी।"

मगधा सुन्दरसेन को भीतर के निजी खण्ड में ले गई, जहाँ अनंगवती बैठी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। सुन्दरसेन रूपी मलया ने अनंगवती को देखते ही पहचान लिया और बोली —

"तो आप हैं वल्लभा। कितना अच्छा होता, मेरा नाम भी वल्लभ होता।"

"बातें आप बहुत अच्छी करते हैं।" मगधा बोली—"मैं विलासभवन में जाकर नृत्य की रूपरेखा बनाती हूँ। कुछ दर्शक आएँ होंगे। आप मेरी सखी वल्लभा से बातें कीजिए और इसकी यह रात भी सार्थक कीजिए।"

मगधा चली गई तो अनंगवती उसके निकट खिसक आई। उसने मन-ही-मन सोचा—'यह है तो पुरुष, पर इसकी छवि मलया से काफी मिलती है। कभी-कभी एक-सी शक्ल-सूरत के व्यक्ति भी मिल जाते हैं।'

"क्या सोच रही हो वल्लभा?" सुन्दरसेन रूपी मलया ने कहा—"इतना सुन्दर रूप पाकर तुम वेश्या के यहाँ? मुझे आश्चर्य हो रहा है तुम्हें देखकर। तुम्हें तो किसी राजा की रानी होना चाहिए था।"

जैसे चोर पकड़े जाने पर घबरा जाता है, वैसे ही सुन्दरसेन की बातें सुनकर अनंगवती भी घबरा गई। सोचने लगी—'कहीं यह कोई भेदिया तो नहीं है?' फिर मन को समझाया—'अरे मैं व्यर्थ ही घबरा रही हूँ। यह तो परदेसी है।'

प्रकट में अनंगवती ने कहा —

"कर्मों की गति बड़ी विचित्र होती है। मैं बचपन में ही अनाथ हो गई थी। यहाँ मगधा ले आई। यह तो मुझसे वेश्यावृत्ति ही करायेगी। पर मैं करना नहीं चाहती। आप चाहें तो मेरा उद्धार कर सकते हैं। मैं भी एक की होकर रहना चाहती हूँ। आपके साथ शेष जीवन कट जाएगा।"

सुन्दरसेन ने मन ही मन सोचा—'वेश्या तो तू नहीं है, पर वेश्या से कम भी

नहीं। तू छद्म वेश्या है। वेश्याएँ तुझसे अच्छी हैं, क्योंकि वे अपने को छिपाती नहीं हैं और शीलवती होने की चादर भी नहीं ओढ़तीं। मेरे पिता के रहते तूने मेरे प्राणेश्वर महाबल पर डोरे डाले, उनसे भोग की याचना की। अब मुझ पर डोरे डाल रही है। ईर्ष्या की आग में जलकर तूने न्याय नहीं किया। तू अच्छी-भली रानी थी दास-दासी तेरे संकेत पर नाचते थे और अब तू....?'

"आप क्या सोचने लगे?" अनंगवती बोली—"यह रात कोरी मत जाने दो।"

"मैं तुम्हारे बारे में ही सोच रहा था।" सुन्दरसेन ने कहा—"मैं स्पष्टवादी हूँ। विवाह तो मेरा हुआ नहीं है, लेकिन जल्दी ही हो जाएगा। अतः मैं तुम्हें अपनी पत्नी तो बना नहीं सकता। हाँ, तुम्हें अपनी प्रेयसी या प्रेमिका बनाकर रख सकता हूँ। राजगृह में मेरे कई मकान हैं। वहाँ मेरा बहुत बड़ा व्यापार है। मैं तुम्हें एक अलग मकान में रखूँगा। तुम्हारी सेवा में दासी भी रहेगी। तुम्हें किसी बात का कष्ट नहीं रहेगा। मैं सप्ताह में तीन दिन तुम्हारे पास रहा करूँगा।"

"मुझे यह प्रस्ताव सौ बार मंजूर है।" अनंगवती ने कहा—"इस नरक से तो निकल जाऊँगी।"

रानी अनंगवती को यहाँ के नरक का भय नहीं था। उसे भय था राजा के सैनिकों द्वारा पकड़े जाने का। फिर भी उसने नरक की बात कही। उत्तर में सुन्दरसेन ने भी रहस्यमय बात कह दी—

"कर्म ही नरक में ले जाते हैं। मुझे ही देख लो। मुझे भी तो वेश्या के यहाँ आना पड़ा। इसकी ग्लानि तुम मत करो।"

"बातें तो आपके साथ जीवन भर होंगी।" अनंगवती बोली—"अब इस रात को तो सार्थक करो।"

"नहीं प्रिये!" सुन्दरसेन बोला—"केलि-क्रीड़ा का आनंद निपट एकान्त में प्रकृति के अंचल में लिया जा सकता है। यहाँ की शय्याएँ भी तो दूसरों के भोग से जूठी हो चुकी हैं। कल तुम मेरे साथ जंगल चलना। जंगल के एकान्त में ....।"

अनंगवती घबराई। उसने कहा—

"कोई देख लेगा तो?"

"मैं तुम्हें बन्द रथ में ले जाऊँगा।" सुन्दरसेन बोला—"तुम्हें राजगृह ले जाने के लिए रथ तो मुझे लाना ही है। एक रात जंगल में बीतेगी। फिर शेष रातें राजगृह में बीता करेंगी। आज की रात तो सोने में बीतने दो। मैं थका-हारा हूँ।"

अनंगवती के पास से उठकर सुन्दरसेन अपने ठहरने के कक्ष में चला गया

और सोचने लगा —'अनंगवती तो मिल गई, पर लक्ष्मीपुंज हार अभी नहीं मिला। इससे हार लेने के लिए मुझे अपनी योजना को कार्यान्वित करना पड़ेगा। मैं यहां वेश्या के घर ठहरा हूँ, उधर महाबल राजभवन में ठहरा होगा। मुझे महाबल से कल संध्या को भट्टारिका देवी के मन्दिर में तो मिलना ही है, पर कल दिन में भी मिलना है। कहाँ ढूंढूँगा उसे ? राजमहल में ही जाऊँगा। वहाँ मुझे कौन पहचानेगा ? मैं तो पुरुष हूँ। पर मैं महाबल को भी कैसे पहचानूंगा ? वह जाने किस रूप में होगा ? मेरे पास धन भी नहीं रहा। अनंगवती के लिए बन्द रथ की व्यवस्था भी करनी है और उसके लिए कुछ उपहार भी खरीदने हैं।'

इस प्रकार सोचते-सोचते सुन्दरसेन सो गया। उधर रानी अनंगवती अपने बारे में सोच रही थी—'मैं क्या से क्या हो गई ! रानी थी, अब दासी भी नहीं रही। कोई भी स्त्री पत्नी तो जीवन में एक ही बार बनती है। मैं भी पत्नी बनी थी ? पर अब इस श्रेष्ठिपुत्र की प्रेयसी बनकर यहाँ से निकल चलूं। यहाँ तो बन्दीगृह में रह रही हूँ। कभी गवाक्ष में बैठकर नीचे झाँक भी नहीं सकती।'

अपने भविष्य के बारे में सोचते-सोचते रानी अनंगवती भी सो गई।

□

१७

हाथी की सीढ़ में मलयासुन्दरी की नामांकित मुद्रा मिलने के कारण महाबल का मान बहुत बढ़ गया था। वह एक सच्चा निमित्तज्ञ माना जा रहा था। राजा वीरधवल ने उसे बड़ा-सा थाल भर कर स्वर्णमुद्राएँ दक्षिणा में दी थीं। महाबल ने अपने माता-पिता को पत्र लिखकर एक अश्वारोही पृथ्वीस्थानपुर रवाना कर दिया था। फिर महाराज वीरधवल से ग्रह शान्ति हेतु अनुष्ठान करने की अनुमति लेकर वह आगे की योजना को पूरा करने बाजार में निकला था। साथ में उसने समस्त स्वर्णमुद्राएँ भी रख ली थीं।

उधर सुन्दरसेन ने भी प्रातःकाल उठकर मंगधा एवं अनंगवती से अनुमति ली-

"पांथागार में ठहरे मेरे साथी मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। उनको व्यापारिक बातें समझाकर मैं मध्याह्न के बाद आऊँगा।

"वल्लभा ! तुम तैयार रहना। तुम्हारे लिए मैं बन्द रथ लाऊँगा। तुम्हें मेरे साथ राजगृह चलना है। पर आज की रात तो वन के एकान्त और प्रकृति की रम्य गोद में बीतेगी।"

यह कह सुन्दरसेन चल दिया। वह सीधे राजभवन की ओर जा रहा था कि उसे एक व्यक्ति ने टोका—

"भाई साहब ! तनिक इधर···।"

सुन्दरसेन उस व्यक्ति के पास पहुँच नीचे ऊपर तक देखने लगा और बोला—

"मैंने आपको पहचाना नहीं।"

"लेकिन मैंने आपको पहचान लिया है।" व्यक्ति ने कहा—"आप सुन्दरसेन हैं। आप मगधा वेश्या के यहाँ से रात बिता कर आ रहे हैं। क्यों ठीक है न ?"

यह कह वह व्यक्ति हंसने लगा और हंसते-हंसते बोला—

"आश्चर्य मत करो। मैं बंगदेश का निमित्तज्ञ आचार्य बलदेव हूँ। अपने निमित्त ज्ञान से ही मैंने तुम्हारे बारे में बताया है। मैंने अपने ज्योतिष ज्ञान से यहाँ के राजा वीरधवल को भी मरने से बचाया है।"

अब तो सुन्दरसेन सब कुछ समझ गया। उसने इधर-उधर देखकर धीरे से कहा—

"मैं भी आपको जानता हूँ कि आप कौन हैं। आप पाखंडी हैं। आप सच्चे ज्योतिषी हैं तो बताइए मुझे क्या चाहिए।"

ज्योतिषी बगलें झाँकने लगा। इधर-उधर उसने भी देखा और बोला—

"एकान्त में चलिए। बताता हूँ कि तुम्हें क्या चाहिए, तुम स्त्री हो और तुम्हें पुरुष चाहिए।"

मलया ज्योतिषी को लेकर एकान्त में एक वृक्ष के नीचे बैठ गई और बोली—

"मैं तुम्हें ही ढूँढ़ने राजभवन की ओर जा रही थी। पर इस वेश में मैं तुम्हें हरगिज नहीं जान पाती। कैसा बड़ा पम्पड़ बाँधा है ! तिलक भी खूब बना है। महाबल ! मैं रे माता-पिता को तुमने कैसे बचाया ?"

"ज्योतिषी बनकर।" महाबल ने कहा—"तुम्हारी अँगूठी बड़े काम आई।"

महाबल ने मलया को पूरा वृत्तान्त बताने के बाद पूछा—

"तुम्हारी रात कैसी कटी ? रात्रि अनंगवती से हार लिया ?"

"अभी नहीं।" मलया बोली—"इसे लेकर मैं भट्टारिका देवी के मन्दिर पहुँचूँगी। मुझे कुछ धन चाहिए। एक बन्द रथ की व्यवस्था भी करो।"

"तुम्हारे पिता ने मुझे काफी धन दे दिया है।" महाबल ने कहा—"बन्द रथ दोपहर बाद मगधा के भवन पर पहुँच जाएगा। तुम्हें जो कुछ खरीदना है, खरीद लो। मैं धन देता हूँ। मुझे भी बहुत कुछ खरीदना है। अब हमारी भेंट भट्टारिका देवी के मन्दिर में ही होगी। संध्या से पहले मत पहुँचना। मैं भी संध्या को ही पहुँचूंगा।"

इसके बाद महाबल ने पर्याप्त स्वर्णमुद्राएं मलया को दे दीं। दोनों अलग–अलग दिशाओं में चले गए।

महाबल ने दो–चार ताले, सांकल, कुछ रंग तथा अपनी योजना से सम्बन्धित अन्य चीजें खरीदीं। मलया के लिए एक सुन्दर रथ किराये पर लिया। उसे अग्रिम किराया देकर सारथि से कहा कि तुझे मगधा वेश्या के यहां जाना है। वहां मगध की राजधानी राजगृह का श्रेष्ठि पुत्र सुन्दरसेन ठहरा है। वह जहां जाए, रथ तुम्हें वहीं ले जाना है। बाद में वह तुझे कुछ पुरस्कार भी देगा। किराया मैं दे ही चुका हूं।

उधर सुन्दरसेन ने अनंगवती के लिए मूल्यवान साड़ी और कंचुक खरीदे। कुछ आभूषण भी ले लिये। वह दोपहर को ही मगधा के यहां पहुंच गया। उसे देख अनंगवती को प्रतीति हुई कि परदेशी वादे का पक्का है। सुन्दरसेन ने अनंगवती के उपहार उसे सौंप दिये। धानी रंग की साड़ी और नीला कंचुक पाकर अनंगवती प्रसन्न हुई। सुन्दरसेन ने मगधा को कुछ स्वर्णमुद्राएं दीं और उसकी दासियों को भी एक-एक स्वर्ण मुद्रा बांट दी।

''वल्लभा ! मैं कुछ विश्राम कर लूं।'' सुन्दरसेन ने अनंगवती से कहा—''संध्या के झुटपुटे में यहां से चलेंगे।''

अनंगवती भी यही चाहती थी। सुन्दरसेन विश्राम करने लगा। दो घड़ी बाद दासी मधूलिका ने सुन्दरसेन को बताया कि आपका रथ आ गया है। नीचे खड़ा है।

''सारथि से कह दो कि घोड़े खोलकर विश्राम करे।'' सुन्दरसेन ने बताया—''उससे कहना, संध्या को चलेंगे।''

× × ×

अपना सामान लेकर महाबल महाकालिका देवी के मन्दिर पहुंच गया। मलया अभी तक नहीं पहुंची थी। महाबल ने सोचा, 'मलया अनंगवती को लेकर आयेगी तो मुझे देखकर वह अपनी एकान्त योजना कार्यान्वित नहीं कर पायेगी। मुझे छिपकर उसकी गतिविधि देखनी चाहिए।' यह सोचकर महाबल वट वृक्ष पर चढ़कर पत्तों में छिप गया। जैसे ही वह वट-वृक्ष पर चढ़ा कि पांच व्यक्ति एक बड़ी पेटी को पकड़े हुए मन्दिर में आये। उनमें से जो सरदार था, वह एक से बोला—

''भद्रक ! हम चारों चन्द्रावती नगरी में चोरी करने जा रहे हैं। हमें लौटने में देर हो या सबेर, तुम्हें इस पेटी की रखवाली करनी है। सो मत जाना।''

''नहीं सोऊंगा।'' भद्रक बोला—''ऐसे यहां आयेगा ही कौन ?''

''हम जैसा कोई चोर ही आ सकता है। पेटी तो उससे क्या उठेगी, पर पेटी का सामान तो तुम्हें सोते देखकर ले जा सकता है।''

यह कह सरदार अपने तीनों साथियों को लेकर चल दिया। उसके जाने के

बाद महाबल यह सोचकर नीचे उतरा कि किसी युक्ति से इस भद्रक चोर को यहाँ से टरकाना चाहिए। यह तो हम दोनों की योजना को ही चौपट कर देगा।

महाबल चुपके से नीचे आया और भद्रक के कन्धे पर हाथ रखा। चौंक कर भद्रक ने पूछा—

"कौन ? कौन हो तुम ?"

"तुम्हारा मौसेरा भाई।" महाबल ने हँसकर कहा—"यह कहाँ से ले आये ?"

"अच्छा तो तुम चोर हो।" भद्रक ने कहा—"बड़ी पुरानी कहावत है कि चोर-चोर मौसेरे भाई होते हैं। तुम क्या अकेले ही चोरी करने जाओगे ? मैं भी जानता, पर सरदार ने मुझे यहाँ पेटी की रखवाली के लिए छोड़ दिया है। बड़ा बदमाश है हमारा सरदार। जोखिम के काम मुझसे कराता है और कभी हिस्सा नहीं देता। बस, मजूरी देता है।"

"तो आज तुम भी मत चूको !" महाबल ने कहा—"इस पेटी का धन समेट कर भाग जाओ।"

"कैसे मानूं ?" भद्रक बोला—"सरदार के हाथ बहुत लम्बे हैं। वह मुझे पकड़ लेगा।"

"उसके हाथ मैं छोटे कर दूंगा।" महाबल ने कहा "आखिर तुम्हारा मौसेरा भाई हूँ, कोई गैर नहीं। तुम पेटी झोलकर सामान निकालो। अरे इसमें तो ताला लगा है। ठहरो, मैं खोलता हूँ।"

महाबल ने अपने हथौड़े से पेटी का ताला तोड़ दिया। भद्रक ने उसमें से आभूषण निकालकर पोटली बाँधली। तभी रथ की आवाज सुन महाबल नाटकीय ढंग से चौंका। वह जानता था कि मलया का रथ है। उसने चोर से कहा—"फिलहाल तुम मन्दिर के शिखर के पीछे छिप जाओ। लगता है कोई रथ आ रहा है। पहले देखें, रथ में कौन है।"

भद्रक को शिखर के पीछे छिपाकर महाबल पुनः वट वृक्ष पर चढ़ गया। थोड़ी ही देर में मलया का रथ आ पहुँचा। रथ से सुन्दरसेन के रूप में मलया और अनंगवती—दोनों उतरे। मलया ने सारथि को एक स्वर्णमुद्रा देकर कहा—

"यह तुम्हारा पुरस्कार है। रथ वापस ले जाओ। मेरा कोई साथी कल तुम्हें जब सूचना दे, तब रथ लेकर यहीं आना है।"

सारथि चला गया तो मलया ने अनंगवती से कहा—

"वल्लभा ! यह स्थान कितना एकान्त है। यहाँ हमारी रात सार्थक होगी।"

"यहाँ तो हमेशा एकान्त ही रहता है।" अनंगवती बोली—"वर्ष में एक

बार माघ पूर्णिमा को यहाँ भट्टारिका देवी का मेला लगता है। तभी भीड़-भाड़ होती है।"

वह कह अनंगवती सुन्दरसेन से लिपट गई। सुन्दरसेन ने भी उसे बाहुपाश में भर लिया। फिर उसने अस्पष्ट भाषा में महाबल को कुछ संकेत दिया, जिसे वह समझ गया। लेकिन अनंगवती कुछ नहीं समझी। सुन्दरसेन ने उससे कहा—

"वल्लभा! तुम्हारे वक्ष में जो यह पोटली है, इसमें ऐसा क्या है, जो हर समय साथ रखती हो? इसे अलग रख दो। यहाँ कौन लेगा? इससे आलिंगन में बाधा पड़ती है।"

अनंगवती एक कपड़े में लपेटकर लक्ष्मीपुंज हार को अपने वक्ष में छिपाये थी। सुन्दरसेन ने महाबल को संकेत कर दिया था कि मैं इससे हार की छोटी पोटली अलग रखवा दूँगा तुम उसे उठा ले जाना। इस संकेत के बाद सुन्दरसेन ने अनंगवती से कहा तो उसने लक्ष्मीपुंज हार की पोटली अलग रख दी और पुनः वह सुन्दरसेन से लिपट गई। तभी महाबल की आहट सुन सुन्दरसेन नाटकीय ढंग से चौंका और बोला—

"लगता है यहाँ कोई है। चलो उधर छिप जाएँ।"

अनंगवती को लेकर सुन्दरसेन दूसरी ओर चल दिया। अनंगवती हार उठाना भूल गई। तो बोली—

"प्राणेश! तुम मेरी पोटली ला दो। नहीं तो जो है, वह उठा ले जाएँगा।"

"अच्छा, तुम इस पेटी में छिप जाओ।" सुन्दरसेन बोला—"मैं तुम्हारी पोटली लाता हूँ और जो आ रहा है, उससे भी निपटता हूँ।"

अनंगवती पेटी में लेट गई। मलया ने ऊपर से ढक्कन बन्द करके साँकल लगा दी। तब तक महाबल आ गया। अनंगवती को सुनाते हुए सुन्दरसेन ने महाबल को ललकारा। दोनों में तू-तू-मैं-मैं हुई। अन्त में महाबल ने कहा—

"मैं राजा वीरधवल का सैनिक हूँ। तुझे पता चला है कि उनकी छोटी रानी अनंगवती इधर ही आई है। लेकिन जब तुम कहते हो कि यहाँ कोई स्त्री नहीं आई तो मैं तुम्हारी बात माने लेता हूँ। लेकिन झगड़ा क्यों करते हो?"

"मैं परदेसी तुमसे क्या झगड़ा करूँगा?" सुन्दरसेन ने कहा—"मुझे व्यापार में घाटा हुआ तो यहाँ देवी की पूजा करने चला आया।"

ये सब बातें अनंगवती ने भी सुनीं तो वह पेटी के भीतर लेटी-लेटी भय से काँपने लगी। सुन्दरसेन ने लक्ष्मीपुंज हार महाबल को सौंप दिया और पुनः पेटी के पास आकर अनंगवती से बोला—

"वल्लभा! हम बुरे फँसे। तुम पेटी में ही लेटी रहो। राजा के सैनिक को मैंने टरका दिया है; पर क्या पता वह पुनः लौट आये।"

"तुमने मुझे बचा लिया।" अनंगवती पेटी में से ही बोली—"जैसा कहोगे, वैसा करूँगी।"

अब मलया महाबल के पास पहुँची और बोली—

"यह पेटी भी तुम लाये थे? बड़ी दूर की सोची।"

"पेटी मैं नहीं, हमारा-तुम्हारा भाग्य लाया था।" महाबल बोला—"पाँच चोर हमारे भाग्य का रूप रखकर आये थे। उनमें एक अभी यहीं है। उसे भी ठिकाना है।"

"उसे भी ठिकाना।" मलया बोली—"पहले इस रानी का कुछ करो। हार तो हमको मिल ही गया।"

"अच्छा, मैं करता हूँ।" महाबल बोला—"तुम देखती जाओ, मैं क्या करता हूँ।"

महाबल अपने साथ ताले भी लाया था। सबसे पहले उसने पेटी का ताला बन्द किया। फिर शिखर पर चढ़कर भद्रक चोर से बोला—

"भद्रक, अपनी पोट लेकर चलो मेरे साथ। मैं तुम्हारी व्यवस्था करता हूँ।"

भद्रक को लेकर महाबल पेटी के पास पहुँचा और बोला—

"अपनी पोट इस पेटी पर रख दो। हम तीनों मिलकर इसे गोला नदी में बहा देंगे। तुम अपनी पोट लेकर नदी के बहाव की विपरीत दिशा में भाग जाना। मैं सरदार से कह दूँगा कि तुम नदी के बहाव की ओर पेटी पर बैठकर गए हो। वह तुम्हें कभी नहीं पकड़ पायेगा।"

मलया, महाबल और भद्रक—तीनों ने पकड़ कर पेटी को बीच धार में डाल दिया। भद्रक आभूषणों की पोट लेकर बहाव की विपरीत दिशा में भाग गया। मलया और महाबल लौटकर मन्दिर में आये। दोनों बैठे। मलया बोली—

"मैं तो थक गई हूँ। ये चोर अच्छे मिले। बाधक बनकर भी सहायक बन गए। बेचारी वल्लभा जाने कहाँ पहुँचेगी?"

"वल्लभा?" महाबल ने कहा—"अच्छा तो तुमने अनंगवती का नाम वल्लभा रखा है?"

"मैंने नहीं, उसी ने रखा होगा।" मलया बोली—"मुझे तो मगधा ने बताया था कि यह मेरी सखी वल्लभा है।"

"मगधा की सखी और तुम्हारी प्रेयसी वल्लभा बहते-बहते मेरे राज्य में कहीं पहुँचेगी। वह गोला नदी आगे जाकर मेरे राज्य में बहती है। चाहो तो पृथ्वीस्थानपुर पहुँचकर अपनी प्रेयसी वल्लभा को ढूँढ़ लेना।"

"अब यह मजाक छोड़ो।" मलया बोली—"मुझे सुन्दरसेन बनकर कब तक रहना पड़ेगा?"

"आज रात में ही मैं तुम्हें मलया बना दूँगा।" महाबल बोला—"तुम लेट जाओ। मैं कुछ काम करूँगा।"

मलया लेट गई। महाबल ने काष्ठ स्तम्भ—वृक्ष के तने को अन्दर से ठीक किया। उसकी साँकल को मजबूत किया और ऊपर से रंग करके उसे सजा दिया। आगे वह कुछ करता कि चारों चोर आ गए। महाबल ने संकेत से मलया को हट जाने को कहा। चोरों के सरदार ने महाबल से पूछा—

"तुमने मेरे साथी का क्या किया ?"

"मैंने तो कुछ नहीं किया।" महाबल बोला—"जो कुछ किया, उसी ने किया। वह तो पेटी पर बैठकर नदी के बहाव की ओर बह गया।"

"मुझसे बचकर कहाँ जाएगा ?" सरदार ने दाँत पीसे—"साथियो चलो, उसे सवेरे तक पकड़ लेंगे। हम चारों ही तैरना जानते हैं।"

चोरों का सरदार साथियों को लेकर नदी की ओर लपका। वहाँ किनारे उसे एक नाव पड़ी मिल गई। माघ पूर्णिमा को भट्टारिका देवी के मन्दिर पर विशाल मेला लगता था। उसी अवसर पर कुछ लोग नौका विहार करते थे। नावों को वहीं छोड़ जाते थे, क्योंकि सालभर प्रायः इधर कोई नहीं आता था। उसी अवसर की पड़ी एक नाव किनारे औंधी पड़ी थी। चारों चोर उसी नाव में बैठकर पेटी सहित भट्टक को पकड़ने चल दिये। पर भट्टक उनके हाथ आने वाला नहीं था, क्योंकि वह तो नाव लेकर बहाव के विपरीत भागा था।

इधर महाबल ने कहा—

"प्रिये ! स्तम्भ तैयार हो गया। इसे लेकर हमें दोनों को चन्द्रावती नगरी के पूर्वी द्वार तक चलना है। आधी रात से ऊपर हो गई। अब सब सो गए होंगे।"

महाबल और मलया ने मिलकर स्तम्भ उठाया। पोला होने के कारण स्तम्भ ज्यादा भारी नहीं था। पूर्वी द्वार के निकट स्तम्भ खड़ा करने के बाद महाबल ने जीभ से मलया के माथे का तिलक चाटा तो वह स्त्री रूप में आ गई। महाबल ने उसे साड़ी, कंचुक दिये और कहा—

"मैंने तेरे लिए इन्हें आज खरीदा था। इन्हें धारण कर अब तू इस स्तम्भ में पैठ जा। रात भर तू इसमें सो सकती है। उठते-बैठते-लेटते तुझे इसमें कुछ भी कठिनाई नहीं होगी।

"प्रिये ! मैंने तेरे पिता से दूसरी भविष्यवाणी यही की थी कि तुम्हारी कुलदेवी आज रात एक स्तम्भ यहाँ रखेगी। तुम्हारे पिता के अनुचर प्रातः इसे यहाँ देखेंगे तो मेरी भविष्यवाणी को सच पायेंगे। मेरे पूर्व निर्देशानुसार राजा वीरधवल स्वयंवर भूमि के बीच में वेदी बनाकर इस स्तम्भ को स्थापित करेंगे। इसके पास ही वज्रसार धनुष रखा जाएगा। बारी-बारी से प्रत्येक स्वयंवरार्थी राजा या राजकुमार वज्रसार धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर इस स्तम्भ को बेधेगा। जिसके बाण से

यह स्तम्भ दो भागों में विभक्त होकर तुम निकलोगी, तुम उसी के गले में वरमाला डालोगी।"

"लक्ष्मीपुंज हार के रूप में वरमाला तो मैं पहले ही आपके गले में डाल चुकी।" मलयासुन्दरी बोली—"अब तो जग-जाहिर वरमाला डालनी है। अब मुझे यह बताओ कि मैं यह कैसे जानूंगी कि आपने स्तम्भ में बाण मारा है। जब आप बाण मारेंगे, मैं तभी भीतर से स्तम्भ की सांकल खोल दूंगी और प्रकट हो जाऊंगी।"

"मैं वीणा बजाता हुआ स्तम्भ के पास आऊंगा।" महाबल बोला—"तभी तुम सावधान हो जाना और समझ जाना कि मैं आ गया हूं। मैं संकेत से तुम्हें जो कहना होगा कह भी दूंगा।"

"मलया! रात थोड़ी ही शेष है। तुम स्तम्भ में खड़ी होकर अन्दर से सांकल बन्द कर लो। मैं अब सीधा राजा के अतिथि गृह में जा रहा हूं।"

महाबल ने और भी बहुत-सी बातें मलया को समझा दीं। वह सीधा अतिथि गृह में पहुंचा। पहरेदार को उसने स्वयं बताया कि अनुष्ठान करके आ रहा हूं। यहां की शान्ति के लिए अभी और भी कुछ करना है। अनुष्ठान पूरा नहीं हुआ। यह कह महाबल शय्या पर लेट गया। आगे की योजना पर विचार करते-करते वह सो गया।

□

१८

जल्दी-जल्दी शौचादि से निवृत्त होकर महाबल आचार्य बलदेव के रूप में राजभवन में पहुंचा। राजा वीरधवल, रानी सौदामिनी और मंत्री मतिसेन तीनों बैठे स्वयंवर के विषय में बातें कर रहे थे। मंत्री अभी-अभी आये थे और राजा से कह रहे थे—

"राजन्! मैंने चार वर पूर्वी द्वार पर भेज दिये हैं। यदि वहां स्तम्भ प्रकट हुआ होगा तो यह निमित्तज्ञ बहुत पहुंचा हुआ है।"

"निमित्तज्ञ की एक बात तो प्रकट हो ही गई।" महारानी सौदामिनी बोली—"मलया की नामांकित मुद्रिका हमें मिल गई। उसका मिलना भी असम्भव था। स्तम्भ भी अवश्य प्रकट होगा।"

"फिर भी एक बात मेरी समझ में नहीं आई।" राजा वीरधवल बोले—

निमित्तज्ञ बलदेव कह रहे थे कि राजकुमारी मलयासुन्दरी स्वयंवर मण्डप में ही प्रकट होगी। वह कहां से और कैसे प्रकट होगी ? यदि प्रकट नहीं हुई तो स्वयंवर में आये राजा लोग बड़े रुष्ट होंगे।"

"देवी-देवताओं की शक्ति में अविश्वास नहीं करना चाहिए।" रानी सौदामिनी कहने लगी—"हमारी कुलदेवी में बड़ी शक्ति है। उनकी महिमा अपार है। वे ही मलया को प्रकट करेंगी। निमित्तज्ञ तो केवल होने वाली घटना बता रहे हैं।"

ये बातें हो ही रही थीं कि महाबल निमित्तज्ञ के रूप में आ गया। राजा ने उसे सम्मान से आसन दिया और अपनी शंका प्रकट की—

"आचार्य जी ! अगर मलया स्वयंवर में प्रकट नहीं हुई तो हमारी बड़ी भारी बदनामी होगी।"

"अगर प्रकट नहीं हुई तो मैं आपके सामने ही प्राणोत्सर्ग कर दूंगा।" महाबल बोला—"मेरी भविष्यवाणी आज तक तो असंदिग्ध ही रही है। हां, यह बताइए क्या पूर्वी द्वार पर स्तम्भ प्रकट हुआ है।"

"मंत्री ने चार व्यक्तियों को भेज दिया है।" राजा बोला—"वे आते ही होंगे।"

इसी बीच चारों चर आ गए। महाबल बोला—

"आप चारों की उम्र बड़ी है। अभी आपकी ही चर्चा हो रही थी।"

"नगरी के पूर्वी द्वार के बाहर एक अत्यन्त दिव्य स्तम्भ प्रकट हुआ है।" एक चर ने कहा—"अब आप चलकर उसका पूजन करें।"

"पूजन वहां नहीं होगा।" महाबल ने चरों से कुछ न कह राजा से कहा—

"राजन् ! उस स्तम्भ को बड़े आदर-भाव से उठवाइए। स्तम्भ लाने वाले उसे धीरे-धीरे लायें, उसमें झटके नहीं लगने चाहिए। आप उसे स्वयंवर भूमि के बीचों बीच स्थापित करवा दीजिए। फिर स्वयंवरार्थी राजाओं को इकट्ठा कीजिए। मैं पूजन के लिए तैयार होकर आता हूं।"

महाबल के आदेशानुसार सारी व्यवस्था हो गई। स्वयंवर भूमि खचाखच भर गई। स्वयंवर में आये राजाओं के अतिरिक्त दर्शक बहुत थे। राजा-रानी, सभी विभागों के मंत्री आदि यथास्थान बैठे थे। स्तम्भ को एक सुन्दर वेदी पर रखा गया था। वह गिर न जाए, इसके लिए चारों ओर से रोक भी लगा दी गई थी। पास ही वज्रसार धनुष रखा हुआ था। अब आचार्य बलदेव की प्रतीक्षा थी।

आचार्य बलदेव पूजन-सामग्री लेकर स्तम्भ के पास आया। उसने मंत्रोच्चारण का ढोंग किया। पानी के छींटे दिये। दूर खड़े लोग सुन नहीं पा रहे थे कि ज्योतिषी

क्या कह रहा है। महावन रूप आचार्य बलदेव ने स्तम्भ की तीन परिक्रमा दीं और धीरे-से कहा—

"मलया, जब मैं वीणा बजाऊँ, तब सावधान हो जाना। मैं स्तम्भ में बाण मारूँगा, तब अन्दर से सांकल खोल देना। ध्यान रखना। सो मत जाना। मैं वीणा तुम्हें सावधान करने के लिए ही बजाऊँगा।"

यह कह आचार्य बलदेव सीधा राजा के पास गया और बोला—

"राजन्! स्तम्भ-पूजन हो गया। अब आप स्वयंवर की घोषणा करवाइए।"

राजा ने मंत्री को संकेत दिया तो मंत्री मतिसेन ने पहले से तैयार घोषणा पढ़कर सुनाई—

"आगन्तुक, राजाओ! मैं चन्द्रावती नगरी की प्रजा और महाराज वीरधवल की ओर से आप सभी का हृदय से स्वागत करता हूँ। जो राजा या राजपुत्र—दक्षिण भारत की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी मलया का वरण करने की इच्छा से आये हैं, उन्हें अपने शौर्य की परीक्षा देनी होगी। जो वीर यहाँ रखे वज्रसार धनुष की डोरी चढ़ाकर एक ही बाण से यहाँ खड़े स्तम्भ को बेध देगा, राजकुमारी मलयासुन्दरी उसी गले में वरमाला डालेगी।

"राजाओ! स्तम्भ-परीक्षा पूर्ण होने के बाद ही राजकुमारी रंगभूमि में प्रकट होगी, उससे पहले नहीं। इसका कारण यह है कि जो राजकुमारी मलया के अमित सौन्दर्य को देख लेगा, उसकी शक्ति क्षीण हो जाएगी। आप पूरे पराक्रम से स्वयंवर की शर्त पूरी कर सकें, इसीलिए राजपुत्री पहले प्रकट नहीं होगी। अब आप अपने-अपने इष्ट का स्मरण करके आते जाएँ।"

एक-एक राजा उठता था। उसके बाद उसके साथ आया चर या चारण राजा का परिचय देता था, साथ ही उसके शौर्य का वर्णन करता था। लेकिन वज्रसार धनुष भी राजा जनक के धनुष से कम नहीं था। कुछ राजा तो उसे उठा तक नहीं पाये। कुछों ने उठाया तो उसकी प्रत्यंचा नहीं चढ़ा पाये। कुछ प्रत्यंचा का झटका खाकर गिर भी गए और हँसने-हँसाने का कारण बने।

राजा वीरधवल निराश होते जा रहे थे। उन्होंने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाकर देखा तो निमित्तज्ञ बलदेव गायब था। राजा ने मंत्री से कहा—

"मंत्रिवर! मुझे तो ऐसा लगता है कि न तो स्वयंवर की शर्त पूरी होगी और न मलया प्रकट होगी।"

"अगर मलया प्रकट नहीं होगी तो निमित्तज्ञ अपने प्राण भी तो देगा।" मंत्री ने कहा—"उसकी बात सत्य ही निकलनी चाहिए।"

"लेकिन निमित्तज्ञ है कहाँ ?" राजा बोले—"प्राण तो वह तब देगा, जब होगा। वह तो कहीं भाग गया।"

"क्या पता अनुष्ठान पूरा कर रहा हो।" मंत्री ने राजा को आश्वासन दिया—"उसका ग्रह-शान्ति वाला अनुष्ठान अधूरा रह गया था।"

राजा वीरधवल बोले—

"निमित्तज्ञ ने मलया के पति का नाम एक भूर्जपत्र पर लिख दिया था। उसे ले आओ। देखें, कौन वज्रसार धनुष चढ़ाकर इस स्तम्भ को बेधे और मलया का पति बने।"

"नहीं राजन् !" मंत्री बोला – "हमें निमित्तज्ञ के आदेश का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। वह स्वयंवर की समाप्ति पर ही खोला जाए, ऐसा निमित्तज्ञ का आदेश है।"

"पहले तुम उसकी खोज कराओ।" राजा ने मंत्री से कहा- "उसे देखो कि कहाँ बैठकर अनुष्ठान कर रहा है। उसका मिलना जरूरी है।"

मंत्री ने बलदेव ज्योतिषी को ढूँढने सैनिक लगा दिये। लेकिन उसका कहीं पता नहीं चल रहा था। उधर राजा लोग वज्रसार धनुष को चढ़ाने में विफल होते जा रहे थे। राजा वीरधवल, रानी सौदामिनी आदि सब निराश हो चुके थे।

\+ + +

रानी अनंगवती को यह पता चल गया था कि जिस पेटी में मैं लेटी हूँ, वह नदी में बही जा रही है। पानी के थपेड़ों, छपाक्-छपाक् की ध्वनि और पेटी के हिलने डुलने से वह समझ गई कि मैं पानी में बह रही हूँ। पर उसे सुन्दरसेन के बुद्धि-चातुर्य पर भरोसा था। वह सोच रही थी कि राज-सैनिकों की पकड़ से बचाने के लिए मुझे सुन्दरसेन ने पेटी में बन्द करके बहाया है, यह इसने बहुत बुद्धिमानी का काम किया है। यदि वह ऐसा न करता तो राजा के सैनिक मुझे निश्चित ही पकड़ ले जाते। किंतु रंग में भंग पड़ गया। सुन्दरसेन एकान्त में जिस काम के लिए मुझे लाया था, वह काम राजा के सैनिक ने भंग कर दिया।

रानी अनंगवती यह भी सोच रही थी कि सुन्दरसेन या तो पेटी के ऊपर बैठकर मेरे साथ चल रहा है या तैरता हुआ मेरे साथ है। वह जहाँ ठीक समझेगा, पेटी को किनारे लगायेगा। मैं उसकी प्रेयसी बनकर सुख से रहूँगी।

रानी अनंगवती को यह कहाँ मालूम था कि जिस सुन्दरसेन के पीछे वह पागल है, वह तो उसकी सौत की लड़की मलया है और उसका स्वयंवर भी हो रहा है। जो दूसरों के लिए बुरा करता है, उसका भला तो कभी हो ही नहीं सकता, यह कर्म का अटल-अडिग सिद्धान्त है। बेचारी अनंगवती इसी सिद्धान्त का शिकार बन गई थी।

उधर चारों चोर पेटी को पकड़ने के लिए जी जान से नाव दौड़ा रहे थे। सरदार अपने साथियों को लोभजनित उत्साह दे रहा था—

"यदि नाव से पेटी न पकड़ सको तो तैरकर ही पकड़ो। यदि तुम पेटी को पकड़ने में सफल हो गए तो तुम्हारे घर सोने से भर दूंगा।"

सरदार के साथी पूरी शक्ति से नाव खेते जा रहे थे पर पेटी दिखाई तक नहीं दे रही थी। नाव को वेग से चलाने की उतावली में नाव उलट गई। चारों चोर तैरना जानते थे, अतः तैरने लगे। प्रभात हो चुका था। दूर तक पेटी दिखाई नहीं दी तो चारों चोरों ने किनारा पकड़ा, क्योंकि वे तैरते-तैरते हांफ रहे थे, आगे बढ़ने की शक्ति उनमें नहीं थी।

पृथ्वीस्थानपुर और सुभद्रपुर दो राज्य सीमाओं के निकटवर्ती वन में गोला नदी के किनारे एक वन था। यह वन अलक्यगिरि नामक पर्वत की तलहटी में था। वन में एक पुराना धनंजय यक्ष का मन्दिर था। इस मन्दिर की सीढ़ियों पर खड़े तीन व्यक्तियों ने पानी में बहती पेटी को देखा तो उनमें से एक जो सरदार था अपने साथियों से बोला—

"नदी में कूद पड़ो। पेटी खींच लाओ। आज की रात तो खाली गई। क्या पता, इस पेटी में ही कुछ मिल जाए।"

पेटी बीच धार में बही जा रही थी। दोनों व्यक्ति पेटी को किनारे खींच लाये। उसमें ताला लगा था। सरदार ने ताला तोड़ दिया और उसका ढक्कन खोला तो एक स्त्री को लेटे पाया। पेटी में रातभर बन्द रहने से रानी अनंगवती मरी तो नहीं थी पर मूर्च्छित हो गई थी। उसे पेटी से बाहर निकालकर लिटाया गया तो स्वच्छ वायु मिलने से उसने आँखें खोलकर इधर-उधर देखा और बोली—

"सुन्दरसेन! कहाँ हो तुम? क्या राजगृह आ गया?"

सरदार ने कहा—

"मैं लोभसार दस्यु यहाँ हूँ। तुमको इसमें किसने बन्द किया था? मुझे उसका नाम बता दो। कुछ अता-पता दो, मैं उसे तुम्हारे चरणों में डाल दूंगा।"

अनंगवती कुछ न बोली। उसने पेटी में कुछ ढूंढा और न मिलने पर रोने लगी—

"हाय वह दुष्ट तो मेरा लक्ष्मीपुंज हार भी ले गया। मुझे लूट लिया उसने। अब तो मैं कहीं की नहीं रही।"

"तुम लोभसार की रानी हो।" लोभसार ने कहा—"मेरे साथ चलो। अलक्यगिरि पर्वत पर मेरा गुप्तवास है। हार खोने की चिन्ता मत करो। मेरे पास स्वर्ण और रत्नों की कमी नहीं है। सब कुछ तुम्हारा है।"

रानी अनंगवती को लोभसार के ये शब्द अमृत के समान लगे। वह उसके चरणों में झुक गई—

"अब आप ही मेरे सब कुछ हैं। मैं आपकी हूं।"

"मेरे पास सब कुछ है।" लोभसार बोला—"एक तुम्हारी ही कमी थी, सो तुम आ गईं। पृथ्वीस्थानपुर के राजा सुरपाल और सुभद्रपुर का राजा जयसेन—दोनों मेरे नाम से कांपते हैं। लेकिन एक रमणी बिना मेरा यह आतंक व्यर्थ था।"

"तुमसे चला नहीं जाएगा।" यह कह लोभसार ने अनंगवती को कंधे पर उठा लिया और पहाड़ के विरछे-टेढ़े मार्ग में होता हुआ अपने आवास पर पहुंचा। वहां उसके नौ साथी और थे। कुल ग्यारह चोरों का सरदार था लोभसार। बारह घोड़े बंधे हिन-हिना रहे थे। लोभसार ने अपने साथियों को आदेश दिया—

'यह मेरी रानी है। बाहर तुम सब पर मेरा आदेश चलेगा, लेकिन यहां घर में मेरी इस रानी का आदेश चलेगा। जो इसकी बात को टालेगा, मैं उसका सिर धड़ से अलग कर दूंगा।

"साथियो! आओ-गाओ। डटकर मदिरापान करो। हम दोनों भी पियेंगे। आज की रात हमारी सुहागरात होगी।"

अनंगवती और लोभसार साथ बैठकर मदिरापान करने लगे। चन्द्रावती नगरी के राजा की पत्नी अनंगवती, जो राजा के बराबर राजसिंहासन पर बैठती थी, जिसका मान-सम्मान था, वही रानी सब कुछ खोकर तुच्छ-क्षणिक भोग के लिए जूठी पत्तल चाटने वाली कुकरी बनी हुई थी।

मलयासुन्दरी का स्वयंवर और रानी अनंगवती का लोभसार से मिलन की घटनाएं एक ही दिन साथ-साथ घट रही थीं। कर्मराजा अपने ताने-बाने इसी तरह बुनता रहता है।

१९

स्तम्भ का पूजन करने के बाद जब स्वयंवरकी कार्य-विधि शुरू हुई तो अप-सर देख महाबल भीड़ में गायब हो गया। वह एक पंथागार में पहुंचा। वहां उसने मुंह में से गुटिका निकाली और अपने आचार्य कलदेव निमित्तज्ञ के रूप को त्याग

अपने निजरूप—महाबल के रूप में आ गया। उसने एक वीणा ली और स्वयंवर मण्डप की ओर चल दिया।

उधर स्वयंवर मण्डप में बड़ी विचित्र स्थिति थी। सब राजा और राजकुमार निराश हो चुके थे। अधिकांश तो वज्रसार धनुष उठा ही नहीं पाये। जो उठा सके, वे उसकी डोरी को नहीं चढ़ा पाये। कुछ तो डोरी चढ़ाते समय गिर भी गए थे। राजा के सेवकों ने आकर बताया कि निमित्तज्ञ कहीं नहीं मिला। पूरा नगर देख लिया।

अब तो राजा दीरघबाहु भी निराश हो गए। वे सोचने लगे कि निमित्तज्ञ की अब तक की सभी बातें सत्य निकलीं; पर अब तो सब चौपट हो गया। निमित्तज्ञ भी जाने कहाँ गायब हो गया।

कुछ राजा चिल्लाने लगे—

"राजन्! जब राजकुमारी ही नहीं है तो आपने हम लोगों को क्यों बुलाया था?"

"आप में से किसी ने स्वयंवर की शर्त भी तो पूरी नहीं की।" मंत्री ने स्वयंवर में आये राजाओं से कहा—"ऐसी दशा में यदि राजकुमारी प्रकट नहीं हुई तो आपको क्यों ऐतराज है?"

"अगर कोई स्वयंवर की शर्त पूरी कर देता तो?" कलिंग के युवराज शत्रुंजय ने कहा- "तो राजकुमारी कहां से आती?"

"हमारी कुलदेवी राजकुमारी को तभी प्रकट करती; जब कोई स्वयंवर की शर्त पूरी करता।" बात को न बढ़ाने के उद्देश्य से मंत्री ने कहा—"कुलदेवी की इच्छा के विरुद्ध हम लोग कर ही क्या सकते हैं?"

ये बातें हो ही रही थीं कि एक वीणावादक वीणा बजाता हुआ स्वयंवर मण्डप में प्रविष्ट हुआ। सब उसी की ओर देखने लगे। वीणा की स्वर-माधुरी ऐसी थी कि लोग उसे सुनने में डूब गए। वीणावादक वीणा बजाते-बजाते स्तम्भ के निकट पहुँच गया और द्रुतलय में वीणा बजाने लगा। स्तम्भ में खड़ी मलया जान गई कि महाबल आ गया है। उसने अन्दर से सांकल खोल दी और उसे हाथ में पकड़े रही। वीणावादक ने वीणा एक ओर रख बलपूर्वक वज्रसार धनुष को उठा लिया। देखते-देखते उसकी प्रत्यंचा चढ़ाई और बाण चढ़ाकर स्तम्भ में मारा। बाण लगते ही मलया ने सांकल छोड़ दी। स्तम्भ के दोनों भाग इधर-उधर गिर गए और मलया सुन्दरी प्रकट हो गई। मलया ने वहीं खड़े-खड़े माता-पिता के हाथ जोड़े। रानी सौदामिनी से नहीं रहा गया तो वे दौड़कर मलया से लिपट कर रोने लगीं—

"बेटी! तेरा पुनर्जन्म हुआ है। तू कहाँ छिप गई थी?"

"मैं सब कुछ बताऊँगी।" मलया ने कहा—"समय बीता जा रहा है। पहले बरमाला...।"

"हाँ-हाँ।" रानी चिल्लाई—"बरमाला लाओ।"

दासी स्वर्णथाल में वरमाला ले आई। मलया ने वीणावादक के गले में वरमाला डाल दी। मलयासुन्दरी की जय के स्वरघोष से वातावरण गूँज उठा। राजा वीरधवल ने एक निश्वास छोड़ा—

"इस समय आचार्य बलदेव मिल जायें तो मैं उनका पूजन करता।"

तभी कलिंग का युवराज खड़ा होकर चिल्लाने लगा—

"हम क्षत्रियों के रहते अज्ञात कुल का एक वीणावादक मलयासुन्दरी का वरण करे, यह हम नहीं होने देंगे।"

"बिना निमन्त्रण के कोई यहाँ स्वयंवरार्थी बनकर नहीं आ सकता।" एक दूसरे राजा ने कहा—"यह हम सब क्षत्रियों का अपमान है।"

"हम रंगभूमि को युद्ध भूमि बना देंगे।" तीसरा राजा चिल्लाया—"राजा वीरधवल ने हमें धोखा दिया है।"

मंत्री ने सबको शान्त करते हुए कहा—

"उपस्थित राजाओ! जिस वीर ने स्वयंवर की शर्त पूरी की है, उसे आप साधारण वीणावादक क्यों समझते हैं? अवश्य इनके कुल का परिचय भी मिल जाएगा। मैं वीणावादक से निवेदन करूँगा कि वे अपना परिचय दें।"

वीणावादक ने ऊँचे स्वर में कहा—

"क्षत्रिय का परिचय उसकी भुजाएँ देती हैं। क्या इतना परिचय काफी नहीं है कि जिस वज्रसार धनुष को आप आज उठा तक न पाये, मैंने उसी की डोरी चढ़ाकर स्तम्भ में बाण मारा है।

"राजाओ! फिर भी मैं अपना परिचय देता हूँ। मैं अनाहूत नहीं हूँ। मेरे पास भी स्वयंवर का निमन्त्रण पहुँचा था। मैं पृथ्वीस्थानपुर के राजा सुरपाल का पुत्र युवराज महाबल हूँ। मार्ग में कुछ ऐसी बाधाएँ आ गई थीं कि मेरी सेना पीछे रह गई और मैं किसी तरह समय पर आ गया हूँ।"

युवराज महाबल का नाम सुनकर सबके मस्तक नीचे हो गए। अब महाबल और मलयासुन्दरी बराबर दो आसनों पर विराजमान हुए। राज पुरोहित ने खड़े होकर कहा—

"राजन्! लग्न विधि पूरी होने तक वर-कन्या महल में नहीं जा सकते। गोधूलि वेला में भाँवरें पड़ेंगी।"

राजा के आदेश और राजपुरोहित के निर्देश से सेवक विवाह मण्डप बनाने में लग गए। कुछ राजा उठकर चले गए और कुछ विवाह विधि देखने बैठे रह गए, जो दो-दो, चार-चार के झुण्ड में अलग-अलग बातें कर रहे थे। राजा वीरधवल और रानी सौदामिनी महाबल मलया को अलग ले जाकर बातें करने लगे। राजा ने मलया से कहा —

"बेटी ! मेरा अपराध तो अक्षम्य है, पर तू मुझे क्षमा कर दे। जब तक तू मुझे क्षमा नहीं करेगी, तब तक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी।"

"पिताजी ! आपने मेरा कोई अपराध किया होता तो मैं आपको क्षमा करती।" मलया बोली —"माता-पिता के रोष में भी संतान का मंगल छिपा होता है। यदि आप मेरे साथ ऐसा न करते तो मुझे ऐसे पराक्रमी पति की प्राप्ति न होती।

"पूज्य ! जीव जो भी दुख या सुख पाता है। वह अपने ही कृतकर्मों के कारण पाता है। मैंने जो कष्ट पाये अपने पूर्वकृत दोषों के कारण पाये थे। आपका मुझ पर कितना स्नेह है, जो मेरे लिए मरने को उद्यत हो गए थे।"

"वह निमित्तज्ञ न आता तो हम मर ही जाते।" रानी सौदामिनी बोली— "जानें कहाँ गया, वह परोपकारी निमित्तज्ञ।"

"मुझे तो ऐसा लगता है कि हमारी कुलदेवी ही निमित्तज्ञ बनकर आपको बचाने और मेरे प्रकट होने की सूचना देने आई थी।" मलया ने कहा—"अतः आप निमित्तज्ञ को भूल जाइए। कुलदेवी ने ही मेरी अँगूठी हाथी की लीद में रखी थी और और उसी ने स्तम्भ प्रकट किया था।"

"तू ठीक कहती है बेटी !" रानी ने अपनी दासी से कहा —"मलया की अँगूठी तो ला उसे मैं पहनाऊँगी।"

दासी मलया की नामांकित मुद्रिका ले आई। वह मुद्रिका महाबल ने उससे लेकर कहा—

"इसे अब मैं पहनूँगा। मेरी नामांकित मुद्रिका मलया पहनेगी।"

यह प्रस्ताव सभी को पसंद आया।। महाबल की अँगूठी मलया ने पहनी और मलया की महाबल ने पहन ली।

विवाह के बाद नृत्य का कार्यक्रम था। कुछ लोग नृत्य मंच बनाने में लगे थे। धीरे-धीरे गोधूलि बेला का समय हो गया। बड़े उल्लास से मलयासुन्दरी और महाबल का विवाह सम्पन्न हो गया। वर-वधू ने माता-पिता का आशीर्वाद लिया। विवाह के बाद वर-वधू ने महल में प्रवेश किया। मलया और महाबल एकान्त में बातें कर रहे थे। ठीक इसी समय लोभसार और रानी अनंगवती मदिरापान करके भोगरत होने की तैयारी कर रहे थे।

महाबल ने मलया से कहा--

"प्रिये ! जब तक मैं अपना काम पूरा कर लूँ। हमारी सुहागरात नहीं मन सकती।"

"महामंत्र नवकार के जाप और आराधन से हमें हर संकट और हर संकट से मुक्ति मिली है।" मलया बोली--"आपका काम भी पूरा होगा।"

"इसमें संदेह नहीं कि नवकार मंत्र सफलता की कुन्जी है।" महाबल बोला "पर अपना काम करने के लिए मुझे पृथ्वीस्थानपुर अभी जाना पड़ेगा। अगर मेरी माता को लक्ष्मीपुंज हार नहीं मिला तो वे प्राण दे देंगी।"

"मैं भी आपके साथ चलूँगी।" मलया बोली --"चलो, हम माता-पिता से अनुमति ले लें।"

"तुम तो धूम-धाम से चलोगी।" महाबल बोला-- "पहले मैं अकेला जाने की अनुमति लूँगा। लक्ष्मीपुंज हार लेकर तत्काल लौट आऊँगा। सेना साथ लेकर आऊंगा। तभी तुम्हें ले जाऊंगा।"

यहाँ महाबल और मलयासुन्दरी में बातें हो रही थीं और उधर राजा वीरधवल का गुप्तचर उन्हें बता रहा था--

"पृथ्वीनाथ ! मैं अपने कानों से सुनकर आ रहा हूँ। कुछ राजकुमारों ने यह निश्चय किया है कि रात को जैसे ही नृत्य समाप्त होगा, हम महाबल को मार देंगे। वह महाबल के रूप में कोई बहुरूपिया है।"

यह सुनकर राजा वीरधवल चिंतित हो उठे। उन्होंने सब बातें मंत्री को बता दी। मंत्री ने नृत्य मण्डप के आस-पास गुप्त सैनिक लगा दिये, जो वक्त आने पर महाबल की रक्षा कर सकें। जब यह व्यवस्था हो गई तो एक दूत ने आकर राजा वीरधवल से कहा कि कुछ राजकुमार आपसे एकान्त में मिलना चाहते हैं।

राजा ने राजकुमारों को बुला लिया। आठ राजकुमार थे। कलिंग का युवराज उनका मुखिया था। राजा के पास मंत्री भी बैठा था। कलिंग के युवराज ने मंत्री के सामने ही राजा से कहा--

"राजन् ! यह जो महाबल बना हुआ है, यह कोई ठग है। यदि वास्तव में पृथ्वीस्थानपुर का युवराज महाबल होता तो उसकी सेना जो पीछे रह गई थी अभी तक क्यों नहीं आई ?"

"यदि यह कोई ठग है तो इसने वज्रकार धनुष से शर संधान कैसे कर दिया ?" मंत्री बोला--"तुम तो उठा भी नहीं पाये थे।"

"वह कार्य उसने शक्ति से नहीं किया।" कलिंग के युवराज ने कहा--"कोई भी ऐंद्रिजालिक मंत्रों के बल पर पहाड़ भी उठा सकता है। यह भी कोई ऐंद्रिजालिक

है। अगर कल तक इसकी सेना नहीं आई तो हम इस ढोंग को जीवित नहीं छोड़ेंगे।"

"उसमें शक्ति होगी तो वह स्वयं को बचाकर तुम्हें ही यमलोक पहुँचा देगा।" मंत्री ने कहा—"सचाई हमेशा छिपी नहीं रहती।"

यह कह मंत्री ने कलिंग के युवराज सहित सभी राजकुमारों को विदा कर दिया। राजा सीधा महाबल के पास गया और वह कुछ कहता कि महाबल पहले बोल उठा—

"पूज्य! मुझे शीघ्र ही पृथ्वीस्थानपुर जाकर अपने माता-पिता को तसल्ली देनी है। मेरे वियोग में वे प्राण भी दे सकते हैं। मैंने आपसे यह सकारण झूठ बोला था कि मेरी सेना पीछे रह गई है। सच कहूं है कि मैं माता-पिता को बताये बिना अकेला ही आया हूं।"

महाबल की बात सुनकर राजा वीरधवल को भी संदेह हो गया कि कहीं कलिंग के युवराज की बात ही सच न हो। राजा ने कलिंग के युवराज आदि राजपुत्रों का संदेह महाबल को बता दिया और कहा कि इस तरह आपके चले जाने से तो बाहर से आये राजकुमारों का संदेह ही पुष्ट होगा।

"मैं सबके संदेह का निवारण करके ही जाऊँगा।" महाबल बोला—"मैं वस्तुतः युवराज महाबल हूँ, यह सिद्ध करके ही जाऊँगा।"

महाबल के कथन से राजा वीरधवल आश्वस्त हुए। अब सब नृत्यमण्डप में इकट्ठे हुए। चन्द्रसेना वेश्या का नृत्य होने लगा। स्वयंवर में आये राजा और राजपुत्र नृत्य देखने में तल्लीन थे। मंत्री, राजा, रानी, महाबल—सभी नृत्य देख रहे थे और नृत्य देखते-देखते पुराने विचारों में खो जाते थे।

आधी रात के बाद चन्द्रसेना का नृत्य समाप्त हुआ। तभी महाबल ने मंच से हुंकृति की और दौड़कर वज्रसार धनुष उठा लिया। सब लोग भौचक्के देखने लगे। महाबल ने ललकारा—

"जिसकी भुजाओं में बल हो, जो मुझे असली महाबल न मानता हो, वह मेरे सामने आये। अकेला न आ सके तो अपने साथियों को लेकर आये। यदि मैं महाबल हूँ तो सभी की मिट्टी पलीद करने की सामर्थ्य रखता हूँ।

"अहंकारी राजाओ! मैं नहीं चाहता कि विवाह भूमि युद्ध-भूमि बने। पर आपकी इच्छा है तो मैं अपना युद्ध कौशल दिखाने को प्रस्तुत हूँ।"

कोई कुछ नहीं बोला। काफी देर सन्नाटा रहा। सब के सिर नीचे हो गए। एक प्रौढ़ राजा ने उठकर सबकी ओर से कहा—

"जिन छिछोरे राजकुमारों ने महाबल के शौर्य और उसके राजवंश पर संदेह किया है, वे तो सब भीगी बिल्ली बन गए। मैं सबकी ओर से क्षमा मांगता हूं। जो वीर होता है, वही स्वयंवर में विजयी होता है।"

अब राजा वीरधवल को पूर्ण विश्वास हो गया कि मेरा जामाता युवराज महाबल ही है। उसने महाबल से कहा—

"जामाता ! अब रात्रि का चौथा प्रहर शुरू होने वाला है। आप नित्यकर्म में लग जाएँ। रात भर जगे हो, दिन में कुछ झपकी लीजिए। मेरे पास वेगगामी एक यंत्र-नौका है। आप गोला नदी से नौका द्वारा पृथ्वीस्थानपुर पहुंच जाएँ। फिर शीघ्र ही लौट आना।"

सब से निवृत्त होकर महाबल सो गया। दोपहर बाद वह जागा तो उसने मलया से कहा —

"मलया ! पृथ्वीस्थानपुर जाने से पहले हम दोनों भट्टारिका देवी के दर्शन कर आएँ। फिर मैं तुम्हें यहीं छोड़ जाऊँगा और यन्त्र नौका से पृथ्वीस्थानपुर के लिए रवाना हो जाऊँगा। भट्टारिका देवी के मन्दिर में हमारी कुछ चीजें भी रह गई हैं। उनको नष्ट कर देना उचित है, वरना मेरे निमित्तज बनने का भेद खुल जाएगा।"

सास-श्वसुर—मलया के माता-पिता से अनुमति लेने से पूर्व महाबल ने लिंग-परिवर्तन करने वाली जड़ी आम के रस में घिस कर एक डिबिया में यह सोचकर रख ली, कि हर समय और हर जगह आम नहीं मिलता। क्या पता कब कहाँ मलया को पुरुष और मुझे स्त्री बनने की जरूरत पड़ जाए। उसके बाद राजा वीरधवल और रानी सौदामिनी से अनुमति लेकर महाबल और मलया भट्टारिका देवी के मन्दिर की ओर चल दिये।

□

२०

व्यक्ति स्वयं पाप न करे किंतु पापी का साथ ही दे तो फल का भागी वह भी होता है। तारिका ने रानी अनंगवती के षड्यन्त्र में समर्थन का सहयोग अधिक और सक्रिय साथ कम दिया था। इसलिए कुछ कष्ट उठाने के बाद उसके जीवन की राह बन गई थी।

जंगल-ही-जंगल भागते-भागते तारिका काफी दूर निकल गई थी। भयवश उसने कहीं विश्राम नहीं किया था। भूख-प्यास और चलने की थकावट से लाचार होकर जब वह चल नहीं पाई तो मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। उसकी मूर्च्छा दूर हुई तो

उसने देखा, काले रंग का एक युवा गड़रिया अपनी बकरियों को लेकर सामने खड़ा है। तारिका को होश में आया देख वह कहने लगा—

"लो, थोड़ा दूध और पी लो। तुम मूर्च्छित हो गई थी तो मैंने तुम्हारे मुंह में दूध टपकाया था। लो, पी लो।"

गड़रिये का नाम कंचन था। उसके कंधे पर डोर में फँसा हुआ लोटा लटका हुआ था। कंधे पर ही एक चादर थी। घुटनों तक धोती, शेष शरीर नंगा, गले में काला डोरा पड़ा था, जो उसकी देह के रंग से मेल खाता था। डोरे में बिन्धी चाँदी की गँडेली लटक रही थी, उसी से गले का काला डोरा जल्दी दिखाई दे जाता था। कंचन के दाँत बहुत सफेद थे। उसने हँसकर पुनः कहा—

"क्या सोच रही हो? लो, दूध पी लो।"

कंचन के सफेद दाँतों पर तारिका बलिहार हो गई। उसकी छवि भी सुन्दर थी। तारिका सोचने लगी—'देह का इतना काला यह जरूर है, पर इसका हृदय दूध सा सफेद है। यही मुझे सहारा दे दे तो मेरी जिन्दगी कट जाएगी। रानी ने तो बीच मझधार में धोखा दिया।'

यह सोच तारिका ने लेटे-लेटे अपना हाथ इस आशय से ऊँचा किया कि मुझे पकड़कर उठा दो। कंचन ने उसका हाथ पकड़कर उसे बैठा किया और कंधे से दूध का लोटा उतार कर उसके सामने किया—

"अभी दुहा है। ताजा है।"

"पहले पानी पिला देते।" तारिका बोली।

कंचन ने कहा—

"पहले लोटा तो खाली करूं। फिर पानी भी ले आऊंगा। पास में ही कुआ है।"

तारिका गटागट दूध पी गई। दूध पीकर उसने शक्ति का अनुभव किया। अब वह खड़ी भी हो सकती थी। कंचन पानी लेने गया तो तारिका उठकर टहलने लगी। जब वह पानी ले आया तो बोला—

"पानी पीकर कुछ देर लेट लो। फिर जाना। कहाँ जाओगी? मैं बकरियों को घर पहुँचा दूँ। फिर तुम्हें छोड़ आऊंगा।"

"कहाँ जाऊँ?" तारिका बोली—"मैं लेटी थी। तुमने मेरा हाथ पकड़कर बैठा किया है। जानते हो हाथ किसका पकड़ा जाता है? तुम मुझे सहारा नहीं दे सकते?"

"सहारे की जरूरत तो मुझे भी है।" कंचन बोला—"पर तुम मेरे घर कैसे रह पाओगी? भेड़ बकरियों और उनके मल-मूत्र की गंध तुम कैसे झेल पाओगी? तुम्हारा ब्याह तो अच्छे घर में होना चाहिए।"

"जिसने मेरे प्राण बचाये हैं, उनको छोड़कर अब मेरा प्राणेश्वर और कौन हो सकता है ?" तारिका बोली—"कुमारी हूँ। बचपन में माँ बाप मर गए। गजपुर के राजा चन्द्रयशा के अन्तःपुर में दासी थी। फिर राजा चन्द्रयशा ने मुझे अपनी बेटी अलंगवती के साथ दहेज में दे दिया। मैंने रानी का साथ दिया। रानी राजा को छोड़कर जाने कहाँ गई, मुझे मझदार में छोड़ गई।"

"तो फिर मैं भी राजी हूँ।" कंचन बोला—"मेरे पास धन-दौलत नहीं है। यही बीस-पच्चीस भेड़ बकरियाँ हैं। एक गाय भी है। कच्चा घर है। छप्पर पड़ा है। बूढ़ी माँ थी। पिछली साल वह भी चल बसी। अपने हाथों से रोटी सेकता हूँ। मुझे रोटी बनाने का सहारा मिल जाएगा।"

अदलपुर कंचन का गाँव था। अहीर, कुम्हार और गड़रियों के गाँव में दस-बीस घर अहीरों के थे। कंचन ने गाँव के दस-बीस मुख्य व्यक्तियों को इकट्ठा किया और सबकी सहमति से तारिका के साथ विवाह कर लिया। कंचन के पास माँ के खड़ुवे, पहुँची और हँसली—तीन आभूषण थे। तीनों आभूषण गिलट के थे। वही उसने तारिका को दिये। तारिका के पास रानी सौदामिनी के दिये सोने के कड़े थे, वे उसने कंचन को दे दिये—

"मैं अब गिलट के जेवर ही पहनूँगी। इन्हें रख लो। कभी काम आयेंगे।"

तारिका को पाकर कंचन निहाल हो गया। उसने उसके घर को सम्हाल लिया। तारिका सबेरे उठकर घर की झाड़-बुहार करती। फिर कुएँ से पानी ले आती। कंचन बिना कुछ खाये बकरियाँ लेकर जंगल चला जाता। तारिका दोपहर को खाना लेकर कंचन के पास पहुँच जाती। वहाँ वह लकड़ी बीनकर गट्ठर बनाती और कंचन के लौटने से पहले घर आकर भोजन बनाती। तारिका और कंचन के सुखमय गृहस्थ जीवन को देखकर राजा-रानी भी ईर्ष्या कर सकते थे। तारिका ने अपना हृदय पति के सामने खोलकर रख दिया था। उसने अपने विगत जीवन की कोई बात नहीं छिपाई थी। कंचन भी उस पर बेहद प्यार करता था।

तारिका की एक पड़ोसिन थी बसंती। बसंती के पति हरदेव और बसंती में प्रायः झगड़ा होता रहता था। हरदेव उसे पीट देता और बसंती इतनी जोर से चीखती-चिल्लाती कि उसका करुण चीत्कार सुनकर काफी लोग इकट्ठे हो जाते और हरदेव से बुरा-भला कहकर चले जाते। हरदेव ऐसा कोई कारण नहीं बता पाता, जिससे बसंती का दोष सामने आये और उसके पीटने का औचित्य सिद्ध हो। कंचन को भी बसंती से सहानुभूति थी। तारिका की सहानुभूति किसी के प्रति नहीं थी। एक दिन कंचन ने तारिका से कहा—

"हरदेव बसंती को बिना बात के पीटता है। बेचारी घर का सारा काम करती है। जंगल से गाय को चारा भी लाती है। हरदेव जंगल से लकड़ी

काटकर बेच आता है। रात को बसंती थके-हारे कैसे हरदेव के पैर भी दबाती है।"

"पैर दबाना तो पत्नी का धर्म है।" तारिका बोली—"बसंती मुझसे भी कह रही थी कि मैं काफी रात गए तक अपने पोते के पैर दबाती हूं। फिर भी मेरा पति मुझे पीटता है।

"मैं तो चुप रही। पर बसंती की बात मुझे चतुराई की लगी। भला यह भी कोई कहने की बात थी कि मैं पति के पैर दबाती हूं? कोई स्त्री अपने धर्म का पालन करे तो यह क्यों चाहे कि लोग उसकी प्रशंसा करें? वह लोगों की सहानुभूति पाने के लिए ही हरदेव के पैर दबाती है, सेवा भाव से नहीं।"

"हां, पैर तो तू भी मेरे दबाती है।" कंचन बोला—"तू कभी किसी से नहीं कहती। पति के पैर दबाना पति-पत्नी का गुप्त व्यवहार है, कहने-सुनने की बात नहीं। पर तारिका मैं तुझे मारता तो तू भी कहती। कहती या नहीं?"

"बिना कारण के तो कोई पति पत्नी को पीट नहीं सकता।" तारिका बोली—"एक ओर पैर दबावे और दूसरी ओर गलती करे तो गलती करने को क्या इसलिए सहन किया जाए कि पैर दबाती है?' दोनों अपनी जगह हैं। कोई पति क्या इतनी छूट दे सकता है कि तू मेरे पैर दबाती है, इसलिए कुछ भी कर मैं कुछ नहीं कहूंगा?

"बसंती की एक गलती तो यही है कि पिटने पर वह चीखती-चिल्लाती बहुत है। वह आदमियों को इकट्ठा करने के इरादे से चिल्लाती है, पिटने की चोट से नहीं चिल्लाती। हरदेव उसके भाला तो मार नहीं देता, जो वह ऐसे चीखती है? उसकी चीख से तो यही पता चलता है कि उसके शरीर में भाला ही घोंप दिया हो।"

"हमें क्या लेना-देना?" कंचन बोला—"संसार में सभी तरह के पुरुष और सभी तरह की स्त्रियां होती हैं।"

घर की लड़ाई से तंग आकर एक दिन हरदेव रूठकर चला गया। लकड़ी काटने का धंधा छोड़कर वह एक अहीर के खेत पर मजूरी करने लगा। वहीं खेत पर बनी झोंपड़ी पर रह जाता हरदेव। रात को भी घर नहीं आता था।

तीन दिन बीत गए। न तो हरदेव घर आया और न बसंती उसे मनाने गई। हरदेव चाहता था कि बसंती मनाने आये तभी घर जाऊंगा। उससे शर्त रखूंगा कि मेरे मारने पर वह चीखेगी नहीं, तभी घर जाऊंगा। बसंती कहेगी कि तुम्हें मेरे चीखने का डर है तो मारते क्यों हो। तब मैं कहूंगा कि मैं तेरी जिद पर मारता हूं। तू जिद करना छोड़ दे, तो मैं पीटना छोड़ दूंगा। तू कह चाहती है कि मैं अपनी जिद पर डटी रहूं और चीखकर पिटना बन्द करालूं तो यह कैसे हो सकता है? तेरे चीखने पर

मुझे चार आदमी जलील करते हैं। तुझे नेह जलील होने पर प्रसन्नता होती है। तू मुझे वश में करना चाहती है तो मैं अकेला रहूँगा।

हरदेव ने सोचा बहुत, पर सोचकर ही रह गया। बसंती उसे मनाने नहीं गई। वह उल्टे पड़ोसिनों से यह कहती फिरी—

"अब तुम्हीं न्याय करो। एक तो पीटता है, ऊपर से रोने नहीं देता। जब मेरी देह में लगेगी तो रोऊँगी नहीं? अब भूखों मारने घर से चला गया है। घर में आटा नहीं है। मुझे खिलाना उसको बस की बात नहीं थी तो ब्याह क्यों किया था?"

बसंती ने ये बातें तारिका से कहीं; तो तारिका बोली —

"गाँव में ही तो किसी के खेत पर रहते हैं। आकर लिवा लाओ। स्त्री फिर भी पुरुष से छोटी होती है।"

"मेरे जाने से और ऐंठ जाएगा।" बसंती बोली—"जितनी खुशामद करती हूँ, उतना ही ज्यादा रूठता है। अब मारकर अपने आप आएगा। फिर मैंने कोई गलती की होती तो मैं खुशामद भी करती। मैं क्यों करूँ खुशामद?"

"अगर हरदेव नहीं आये तो क्या करोगी?" तारिका ने पूछा—"क्या खाओगी?"

"भीख तो मिलेगी।" बसंती बोली—"मैं भीख माँग कर पेट भर लूँगी बहन! कोई पूछेगा कि भीख क्यों माँगती है तो कहूँगी कि बिना कसूर पति छोड़कर चला गया है। अबला हूँ, बेसहारा हूँ, इसलिए भीख माँगनी पड़ रही है।"

"मैं तो तुमसे एक ही बात कहूँगी।" तारिका बोली—"जितनी बुद्धि तुम हरदेव को नीचा दिखाने और स्वयं को जीतने में लगाती हो, उसकी चौथाई भी उसको प्रसन्न करने में लगाओ तो तुम्हारे घर कभी लड़ाई न हो। तुम्हारा कसूर तुम्हारी चतुराई है। तुम्हारा पति तुम्हारी चतुराई पर ही तुम्हें पीटता है।"

"तुझे बहुत अच्छा लगता है मेरा पति तो तू उसको अपना ले।" बसंती तारिका से लड़ने लगी—"तूने ही मेरे पति को बिगाड़ा है। आने कहाँ से आकर मेरे पड़ोस में बसी है।"

तारिका लड़ना नहीं जानती थी। वह चुप रही। बसंती लड़ती हुई अपने अपने घर चली गई। तारिका दोपहर का खाना लेकर अपने पति कंचन के पास गई और उसे सब बातें बताईं। दूसरे दिन पता चला कि बसंती अपनी बड़ी बहन और बहनोई के घर चली गई पर हरदेव को मनाने नहीं गई। हरदेव को पता चला कि बसंती घर नहीं है तो वह उसके पीछे घर आकर रहने लगा। बसंती को जब पता

चला कि वह घर आ गया है तो बसंती अपनी बहन और जीजा को लेकर घर आ गई। उसके जीजा ने हरदेव को डाँटा—

"बच्चों की तरह घर छोड़कर क्यों भागते हो ? जो कुछ करो, घर रहकर ही करो। क्या कसूर है बसंती का ? क्या यह रोटी नहीं बनाती ? घर का काम नहीं करती ? ढंग से रहा करो।"

× × ×

लोभसार ने सुभद्रपुर के राजा जयसेन के राज्य में चोरियों का आतंक फैला रखा था। जयसेन के सैनिकों ने उसे पकड़ने की बहुत कोशिश की पर उसके अड्डे का पता नहीं लगा पाये। वे इतना अवश्य जान गए कि लोभसार का गुप्त आवास अलंबगिरि की पहाड़ियों में कहीं है। अब राजा जयसेन ने प्रतिज्ञा कर ली कि मैं जब तक लोभसार का सफाया नहीं कर दूँगा, नगर में नहीं आऊँगा। ऐसी प्रतिज्ञा करके उसने सौ सशस्त्र सैनिक लिये और अलम्बगिरि की पहाड़ियों में छावनी डाल दी। मौका देखकर उसने कई ठिकानों पर थोड़े-थोड़े सैनिक छिपा दिये।

लोभसार के तीन साथी अड्डे से बाहर निकले थे। जयसेन के पाँच सैनिकों ने उनको ललकारा। उनमें एक डाकू मारा गया और दो भाग गये। भागे हुए डाकुओं ने सोते हुए लोभसार को आवाजें दीं। लोभसार ने रानी अनंगवती से रात को विवाह किया था। दोनों सो रहे थे। सवेरा हो चुका था। फिर भी अभी उठे नहीं थे। रानी ने डाकुओं की आवाज सुनी तो लोभसार को जगाया। लोभसार बाहर आया तो उसके साथियों ने कहा—

"सरदार ! जयसेन के सैनिकों ने हमारे एक साथी को मार दिया। हम दोनों भाग आये हैं।"

"जयसेन के कितने सैनिक हैं ?" लोभसार ने पूछा—"कहाँ मुठभेड़ हुई थी ?"

एक साथी ने बताया—

"हमारी मुठभेड़ पाँच सैनिकों से हुई थी। पाँचों सैनिक हमें अड्डे के मुख्य द्वार पर मिले थे।"

"चिन्ता की कोई बात नहीं।" लोभसार ने कहा—"सब इकट्ठे होकर भीतर आ जाओ। गुप्त द्वार से निकलेंगे। जयसेन भी साथ होगा तो बचकर नहीं जाएगा।"

सभी साथी और लोभसार गुप्त द्वार के पास आये। लोभसार ने रानी अनंगवती से कहा—

"मैं शिकार लेने जा रहा हूँ। संध्या तक लौट आऊँगा। यदि न आऊँ तो

तुम इसी गुप्त द्वार से बाहर निकलना। हम लोगों का जीवन हर समय मौत की छाया में रहता है।"

यह कह लोभसार चल दिया। उधर जयसेन तीस सैनिकों को लेकर जहाँ बैठा था, वहीं लोभसार का गुप्त द्वार था लेकिन उसे पता नहीं था कि लोभसार वहीं से निकलेगा। जयसेन ने जब एक भारी शिला खण्ड को सरकते देखा तो अपने साथियों को चुप रहने और सरकते शिलाखण्ड की ओर देखने का संकेत दिया।

शिलाखण्ड के हटते ही एक द्वार बना, जिसमें से एक ही व्यक्ति निकल सकता था। लोभसार और उसके दस साथी शस्त्र लिये बाहर निकले। वह जयसेन और उसके सैनिकों को नहीं देख पाया था। इधर-उधर देखकर उसने अपने साथियों से कहा—

"चलो, पाँचों सैनिक कहाँ हैं?"

लोभसार जैसे ही चलने को हुआ कि उस पर बाणों की वर्षा होने लगी। लोभसार तुरन्त सम्हला और साथियों को ललकारा और जयसेन के सैनिकों से भिड़ गया। जयसेन लोभसार को जीवित पकड़ना चाहता था; अतः उसने कमर में लिपटी रस्सी खोली और फन्दा बनाकर लोभसार के गले में डाल दिया और दो-तीन झटके देकर उसे नीचे गिरा दिया। उसके गिरते ही उसके साथियों का मनोबल गिर गया। वे सब लड़ते-लड़ते मारे गए। दो सैनिक जयसेन के भी मारे गए।

जयसेन जब धराशायी लोभसार के पास पहुँचा तो बड़ा निराश हुआ, क्योंकि वह मर चुका था। जयसेन ने लोभसार के साथियों को एक जगह इकट्ठा कर जला दिया और लोभसार के लिए आदेश दिया—

"इसके गले में जो रस्सी पड़ी है, इसी के सहारे इसे पेड़ पर लटका दो। नीचे उतारकर वन में लटकाना। आते-जाते लोग देखेंगे तो धीरे-धीरे यह वन मार्ग निरापद हो जाएगा। हाँ, पास में एक मशाल भी जलाकर लगा देना।"

राजा के सैनिकों ने लोभसार के शव को पेड़ से लटका दिया। मशाल जला-कर सब नगर को चले गए। उधर रानी अनंगवती ने रात होने तक लोभसार के लौटने का इन्तजार किया। जब वह नहीं आया तो एक मशाल लेकर गुप्त द्वार से बाहर आई। वहाँ उसने लोभसार और उसके साथियों की पगड़ियाँ और अस्त्र-शस्त्र पड़े देखे, फिर देखी दहकती चिता तो वह सबकुछ समझ गई कि मेरा प्राणेश्वर अपने साथियों सहित मारा गया। वह चिता के पास बैठकर रोने लगी—

"अब मैं कहाँ जाऊँ? राजा वीरबाहु छूटे, सुन्दरसेन गया और अब लोभ-सार भी मारा गया। बिना पुरुष के स्त्री कैसे रह सकती है?"

अनंगवती उठी। उसने दूर पेड़ पर एक दूसरी मशाल जलती देखी तो उधर ही चली गई। उसने लोभसार के शव को पहचाना तो वहीं बैठकर रोने लगी।

उसका रुदन अरण्य-रोदन था। वहाँ उसे धीरज बँधाने कौन आता? फिर जो अपने हाथों ही अपना जीवन बिगाड़ते हैं, उन्हें समझा भी कौन सकता है? अनंगवती ने अपने ही हाथों अपने सुखमय जीवन का सर्वनाश किया था। हाय! हाय! ये वैर, द्वेष और ईर्ष्या हमारे कितने घातक शत्रु हैं, जो फुसला-फुसला कर हमारा सर्वनाश करते हैं। अनंगवती को तो जीते जी नरक की प्राप्ति हो गई थी, मरने के बाद तो होगी ही।

[_]

२१

महाबल और मलया—संध्या के झुटपुटे में भट्टारिका देवी के मन्दिर में पहुँच गए थे। वहाँ महाबल ने इधर-उधर बिखरा सामान देखा तो उसे समेटने लगा। रंग, रंग की कूचियाँ और कुछ कील-काँटे उसने इकट्ठे करके फेंक दिये और सब प्रमाण मिटा दिये। फिर मलया से कहा—

"ये सब चीजें यहाँ पड़ी रहतीं और कभी कोई आता तो सोचता कि यहाँ बैठकर स्तम्भ को रंगा होगा।"

"असली प्रमाण तो रह ही गया।" मलया बोली—"धन्वंतरी देवी का हाथ पकड़ कर आकाश मार्ग से जब आप पृथ्वीस्थानपुर से आये थे तो जो कपड़े पहने हुए थे, वे भी तो यहीं कहीं रखे हैं।"

"हाँ, तुमने अच्छी याद दिलाई।" महाबल बोला—"जिन कपड़ों को पहन कर मैं पृथ्वीस्थानपुर से आया था, उनकी गाँठ बनाकर वट वृक्ष की कोटर में रख दिया था। चलो, उनको भी लेकर गोला नदी में फेंक चलें।"

महाबल मलया को लेकर बरगद के पास पहुँचा। कोटर में रखे अपने कपड़े उसे मिल गए। वहीं कोटर के पास वट-वृक्ष के नीचे बैठकर महाबल बोला—

"सुन्दरसेन बनकर तुम अनंगवती के साथ रंगरेलियाँ करने यहाँ आई थीं? लेकिन यहाँ मेरे साथ...।" यह कह महाबल मुस्करा दिया। मलया ने उसे तीखी चितवन से देखा—

"यह तो उससे लक्ष्मीपुंज हार लेने का बहाना था। हम लोगों की रंगरेलियों के लिए तो पृथ्वीस्थानपुर का रंगमहल बना है।"

"हाँ प्रिये ! हमारी सुहागरात तो तुम्हारी सुसराल पृथ्वीस्थानपुर में ही मनेगी। अब मैं तुम्हें तुम्हारे घर छोड़ आऊँ। लक्ष्मीपुंज हार लेकर मैं अपने घर जाता हूँ। मुझे माता-पिता की बहुत चिन्ता है। घर से निकले मुझे पूरे पाँच दिन हो गए।"

"तुम्हारा और मेरा घर तो अब एक ही है।" मलया बोली—"तुम मेरे घर वाले और मैं तुम्हारी घरवाली हूँ। अब तो मेरा गोत्र भी पिता का गोत्र न रहकर तुम्हारा ही गोत्र हो गया है।

"स्वामी ! तुम सेठ होते तो मैं सेठानी हो जाती। तुम युवराज हो तो मैं युवराज्ञी हो गई। मात्र समर्पण से नारी पति के सर्वस्व पर अधिकार कर लेती है।"

"जिस नारी में पति के प्रति समर्पण नहीं होता, वह जीवन भर दुःखी रहती है।" महाबल बोला—"तुम्हारी विमाता कनकवती में तुम्हारे पिता महाराज वीर-धवल के प्रति किंचित् भी समर्पण नहीं था। इसीलिए बेचारी जाने कहाँ भटक रही होगी।"

"अब उससे हमारी भेंट कहाँ होगी!" मलया बोली "मुझे जीवित तुम्हारे साथ देखती तो बड़ी दुःखी होती।"

"उससे भेंट न हो तो ही अच्छा है।" महाबल बोला "दुष्टों के संग-साथ से तो नरक का वास अच्छा।"

"ऐसा क्यों ?" मलया ने पूछा—"नरक में क्या कम यातनाएँ होती हैं, जो दुष्टों के संग से नरक अच्छा है ?"

"नरक में रहकर जीव धर्म को याद करता है।" महाबल बोला "दुष्टों-दुर्जनों के साथ रहने से धर्म भी छूट जाता है, इसलिए दुष्टों के साथ रहने से नरक में रहना अधिक अच्छा है।"

ये बातें हो रही थीं कि वट वृक्ष पर से दो व्यक्तियों की अदृश्य आवाजें आने लगीं। ये दोनों आवाजें प्रेतों की थीं। एक प्रेत बोला—

"अरे भाई, चलो आज पृथ्वीस्थानपुर चलें।"

"वहाँ क्या है ?" दूसरा प्रेत बोला—"क्या कुछ देखने को मिलेगा ?"

"इसीलिए तो कह रहा हूँ।" पहला प्रेत बोला "कल सन्ध्या से पहले वहाँ के राजा सुरपाल और रानी पद्मावती चिता शयन करेंगे। दोनों मरकर सद्गति पा गए तब तो कोई बात नहीं। यदि प्रेत बने तो हम उन्हें अपने साथ ले लेंगे। इसी वट पर उन्हें भी रख लेंगे।"

"तो इस वट वृक्ष को उखाड़ो।" दूसरा प्रेत बोला—"इसी को उड़ाते हुए पृथ्वीस्थानपुर चलते हैं।"

प्रेतों की बात-चीत सुनकर महाबल ने तुरन्त निश्चय किया और मलया का का हाथ पकड़कर बोला—

"चलो, कोटर में बैठो। काफी बड़ा कोटर है। दोनों बैठ जायेंगे? इसी वृक्ष के साथ हम भी पृथ्वीस्थानपुर पहुँच जायेंगे।"

महाबल और मलया जैसे ही कोटर में बैठ पाये कि वट वृक्ष आकाश में उड़ने लगा। कुछ ही देर में वह पृथ्वीस्थानपुर के निकट वन में खड़ा हो गया। महाबल और मलया कोटर से निकल कर कुछ दूर चले और एक स्थान पर बैठ गए। महाबल ने कहा—

"मलया! रात भर यहीं रहेंगे। सवेरे हम नगर में जायेंगे। यह वन मेरा देखा-भाला है। यहाँ के चप्पे-चप्पे से मैं परिचित हूँ। हमारा नगर यहाँ से पाँच कोस दूर है।"

"तो मुझे यों ही ले जाओगे?" मलया बोली—"मेरे सास-ससुर सोचेंगे कि जाने किसको भगा लाया है।"

"मैं तुम्हें अपना मित्र सुन्दरसेन बताकर ले जाऊँगा।" महाबल बोला—"कहूँगा कि यह मेरा मित्र सुन्दरसेन है। लक्ष्मीपुंज हार माता को सौंपकर पुनः तुम्हारे साथ चन्द्रावती नगरी पहुँचूँगा। फिर वधू की तरह रथ में तुम्हें लेकर आऊँगा।"

यह कह महाबल ने डिबिया निकाली। उसमें आम के रस में घिसी हुई जड़ी रखी थी। महाबल ने मलया के माथे पर तिलक कर दिया, जिससे वह पुरुष बन गई। फिर अपने पुराने कपड़े, जो उसके पास में बँधे थे, मलया को पहना दिये। मलया के कपड़ों की पोट बाँधकर अलग रख दी। इतना कर दोनों महाबल और सुन्दरसेन रूपी मलया पास-पास लेट गए।

महाबल जैसे ही लेटा कि उसने किसी स्त्री के रोने की आवाज सुनी। उठकर महाबल बोला—

"मलया! अब तुम पुरुष हो। यहीं बैठो। मैं देखकर आता हूँ कि यह कौन रो रही है।"

"रोती हुई का हाथ मत पकड़ लेना।" मलया बोली—"मैं सौत नहीं चाहती।"

"पुरुष होकर जलती क्यों हो?" महाबल हँसा—"कहो तो स्त्री बनकर चलें।"

"अच्छा जाओ।" मलया बोली—"जल्दी लौटना।"

महाबल रोने की आवाज को पकड़े हुए आगे बढ़ा कि उसे एक योगी खड़ा मिला। उसने महाबल को रोककर कहा—

"हे भद्र ! तुमको मेरा भाग्य यहाँ लाया है। तुम परोपकारी हो और सुलक्षण हो। मेरे साथ उपकार करो। मेरे उत्तरसाधक बनकर मेरी साधना में सहयोग दो।"

"देखो, कोई स्त्री रो रही है।" महाबल बोला—"मैं उससे उसका दुःख पूछने जा रहा हूँ।"

"इसीलिए तो कहता हूँ कि तुम परोपकारी हो।" योगी बोला—"उत्तर साधक के अभाव में मैं अभी तक स्वर्णपुरुष की सिद्धि नहीं कर पाया। बस, रात भर की ही तो बात है। सवेरे तुम चले जाना।

"हे भद्र ! जिधर तुम जा रहे हो, उधर ही वृक्ष पर एक शव लटक रहा है। उस शव को ले आओ। मैं उसी को स्वर्ण पुरुष बनाऊँगा। सिर को छोड़कर स्वर्ण-पुरुष का कोई अंग काट लेना। वह ज्यों का त्यों पूरा हो जाएगा। जितना ही खर्च करो। स्वर्णपुरुष का सोना कभी समाप्त नहीं होता। स्वर्णपुरुष अक्षय होता है।"

"अच्छा मैं रोने वाली स्त्री के बारे में जानकर आता हूँ।" महाबल बोला—"मैं रात भर तुम्हारा उत्तरसाधक बनूँगा।"

यह कह महाबल रोने की दिशा में चल दिया। लोभसार के लटके हुए शव के नीचे बैठी अनंगवती रो रही थी। महाबल ने पूछा—

"बहन ! तुम्हें क्या कष्ट है। यदि कहने लायक हो तो मुझसे कहो, मैं तुम्हारा दुःख दूर करने की कोशिश करूँगा।"

"भाग्य की मारी का दुःख कौन दूर कर सकता है?" अनंगवती बोली—"मेरा सहारा—मेरा जीवनाधार मुझसे छिन गया है। दुष्टों ने मेरे सर्वस्व को मारकर पेड़ से लटका दिया है।"

"संयोग-वियोग तो संसार का नियम है बहन !" महाबल बोला—"तुम्हारे दुःख को धीरज ही दूर करेगा। धैर्य धारण करो। मन को समझाओ और घर लौट जाओ। तुम कहो तो तुम्हें पहुँचा दूँ।"

"मैं स्वयं ही चली जाऊँगी।" अनंगवती बोली—"कर सको तो मेरा इतना काम कर दो, कि मुझे इस शव के मुँह तक पहुँचा दो, जिससे मैं अन्तिम बार इसके मुँह का स्पर्श कर सकूँ।"

"मेरी पीठ पर खड़ी हो जाओ।" चौपाया बनकर महाबल बोला—"अब तुम शव तक पहुँच जाओगी।"

चौपाया बने हुए महाबल की पीठ पर अनंगवती खड़ी हो गई। उसने जैसे ही लोभसार के शव के मुँह का चुम्बन लिया कि शव के मुँह ने उसकी नाक काट ली। अनंगवती चीख उठी। उसकी नाक से रक्त का फुआरा फूट पड़ा। महाबल ने तुरन्त

वन में एक जड़ी खोजी और उसके पत्तों का रस उसकी नाक पर लगा दिया। रक्त बहना तत्काल बन्द हो गया। फिर महाकाल ने कहा —

"शव में इतनी शक्ति कहाँ कि वह कोई गति कर सके। इस शव में बैठकर व्यन्तर ने तुम्हारी नाक कुतरी है। व्यन्तर तुम्हें भी परेशान करेगा। अतः तुम यहाँ से तुरन्त चली जाओ।"

अनंगवती तुरन्त चली गई। अब महाबल ने लोभसार का शव उतार कर कंधे पर डाला और योगी के पास चल दिया। शव को उसने नीचे रखा तो योगी ने शव और महाबल दोनों पर जल के छींटे देते हुए पवित्र करने का यह मंत्र बोला —

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

इसके बाद योगी ने चार दिशाओं में जल छिड़ककर भूत शुद्धि का यह मंत्र पढ़ा—

ॐ अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिता।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया॥

"अब तुम शुद्ध हो गए। मैंने तुम्हें उत्तरसाधक की दीक्षा दी है।"

योगी ने फिर शव को महाबल से उठवाकर रेखाओं से घिरे एक गोलाकार स्थान में रखवाया। महाबल सावधान होकर पहरा देने लगा। एक ओर अग्नि दहक रही थी। योगी मंत्र पढ़कर शव पर छींटे मार रहा था। इसी बीच शव अपने आप उड़ा और पुनः उसी वृक्ष पर लटक गया, जहाँ पहले लटका था। योगी ने महाबल से कहा—

"बड़े आश्चर्य की बात है कि यह शव उठकर चला गया। मेरे मंत्र शुद्ध हैं, क्रिया विधि भी शुद्ध है और शव भी अखण्ड है। एक बार और ले आओ।"

"योगिराज! मैं प्रातःकाल ही यहाँ से चला जाऊँगा।" महाबल बोला— "अपने मित्र को अकेला छोड़ आया हूँ। मेरे न लौटने से उसे चिन्ता होगी। दूसरे, कल दोपहर को मेरे माता-पिता आत्मदाह कर लेंगे। मुझे अपने मित्र के साथ कल प्रातःकाल पृथ्वीस्थानपुर अवश्य पहुँच जाना है।"

"देखो युवराज!" योगी बोला—"स्वर्णसिद्धि वाले नक्षत्र अस्त होने वाले हैं। उनके अस्त होने के बाद तो मेरा काम होगा ही नहीं। अतः मैं तो तुम्हें प्रातः होने से पूर्व ही मुक्त कर दूँगा। बस, एक बार शव और ले आओ।"

महाबल दूसरी बार शव लेने गया और शव को देखकर वह हँसने लगा—

"निष्प्राण देह! तू भी क्या चमत्कार करती है। उड़कर अपने आप चली आती है।"

"तू मुझे देखकर क्यों हँसता है महाबल?" शव में अदृश्य आवाज आई—

"याद रख तुझे भी इसी वृक्ष पर लटकना होगा। मैं तो फिर भी सीधा लटका हूँ, पर तुझे तो नीचे को मुँह करके उल्टा लटकना पड़ेगा।"

अपने बारे में यह भविष्यवाणी सुन महाबल कुछ चिंतित हुआ, फिर सोचा—'कर्म की गति को कौन टाल सकता है?' यह सोच उसने शव को पुनः उठाया और योगी के पास, जहाँ उसने बताया, उसने शव वहीं रख दिया। योगी पुनः अपनी क्रिया करने लगा। शव उड़कर पुनः चला गया। योगी ने चिंतित होकर कहा—

"अब तो नक्षत्र भी अस्त हो गए। अब कुछ नहीं हो सकता। प्रातःकाल भी होने वाला है। तुमको कल रात में और रुकना होगा। कल मैं शव को नहीं उड़ने दूँगा।"

"कल दिन में तो मेरे माता-पिता आत्मदाह कर लेंगे।" महाबल बोला। "कल रात तक मैं नहीं रुक सकता।"

"जिनके मन में परोपकार करने की इच्छा बनी रहती है, उनका कभी कुछ अनिष्ट नहीं होता।" योगी बोला—"मेरा आशीर्वाद है कि तुम्हारे माता-पिता का बाल भी बाँका नहीं होगा। तुम जब भी जाओगे, वे तुम्हें जीवित मिलेंगे।"

परोपकारी महाबल को योगी की बात माननी पड़ी। थोड़ी ही देर में सवेरा हो गया। एक सरोवर पर शौचादि से निवृत्त हो महाबल ने योगी से कहा—

"योगिराज! मैं अपने मित्र को ले आऊँ! रात-भर वह मेरी प्रतीक्षा करता रहा होगा।"

"हो आओ।" योगी बोला—"मुझे तुम्हारे सहयोग की आवश्यकता तो रात में ही पड़ेगी।"

महाबल मलया को ढूँढ़ने चल दिया। लक्ष्मीपुंज हार उसने मलया से पहले ही ले लिया था। अतः पहले सोचा कि माता को लक्ष्मीपुंज हार पहले दे आऊँ। फिर सोचा, 'पहले मलया को ही ले आऊँ।' महाबल उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ मलया को बैठा छोड़ गया था। पर मलया वहाँ नहीं मिली। उसने सुन्दरसेन नाम लेकर मलया को आवाजें भी दीं, वन में काफी ढूँढ़ा, पर मलया नहीं मिली। निराश होकर महाबल पुनः योगी के पास आ गया। योगी ने उसे सान्त्वना दी—

"हो सकता है तुम्हारा मित्र तुम्हें ढूँढ़ते हुए पृथ्वीस्थानपुर पहुँच जाए। घबराओ मत।"

"लेकिन उसने तो नगर का मार्ग भी नहीं देखा।" महाबल बोला—"जाने कहाँ भटक गया होगा।"

"संध्या तक तुम यहीं रहो ।" योगी बोला—"मैं कुछ विशेष बूटियाँ लेने जा रहा हूँ । लेकिन तुम यहाँ अकेले कैसे रहोगे ? ठहरो, मैं तुम्हें सर्प बनाये देता हूँ । सर्प से सब डरते हैं । तुम्हारा कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता ।"

सर्प बनने से पूर्व महाबल ने लक्ष्मीपुंज हार मुँह में रख लिया । योगी ने एक जड़ी का तिलक करके महाबल को सर्प बना दिया और विशेष जड़ी लेने जंगल में चला गया । सर्प रूप में महाबल सोच रहा था—'कैसा बुरा फँसा हूँ । मेरी जड़ी तो स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री ही बनाती है । गुटिका भी मनुष्य रूप में ही रूप-परिवर्तन करती है, पर योगी की जड़ी तो तिर्यंच योनि में बदल देती है । संध्या तक मुझे सर्प बने रहना है । संध्या को योगी मुझे मानव-रूप देगा । आज रात पुनः उसका उत्तर साधक बनकर उसको स्वर्ण-सिद्धि में सहयोग देना है । कल ही नगर को जा सकूँगा । मलया शायद वहीं पहुँच गई होगी । वह बुद्धिमती है । वह माता-पिता को बचा लेगी । पर वह तो पुरुष सुन्दरसेन है ।'

□

२२

मलया काफी रात गए तक महाबल की प्रतीक्षा करती रही । स्त्री के रोने की आवाज भी बन्द हो चुकी थी । मलया ने सोचा, 'जिस रोती हुई स्त्री के पास स्वामी गए थे, वह तो काफी देर की चुप हुई है । फिर वे क्यों नहीं लौटे ?' इसी तरह ऊहापोह में रात्रि का चौथा प्रहर शुरू हो गया ।

'निश्चित ही मेरे स्वामी किसी विपत्ति में फँस गए होंगे ।' मलया ने सोचा, 'वे अब नहीं आयेंगे । मुझे ही चलकर उन्हें ढूँढना चाहिए । मैं भी पुरुष बनी हुई हूँ । विपत्ति में उनकी सहायता करूँगी ।'

यह सोच मलया चल दी । वन सघन था । मलया को यह भी ध्यान नहीं रहा कि रात महाबल किस ओर गया था । वह विपरीत दशा में चली । चलते-चलते उसे प्रभात हो गया । उषा के दर्शन कर मलया आगे बढ़ी तो उसे एक सरोवर मिला । सरोवर में हाथ मुँह धोकर मलया एक पगडंडी पर यह सोचकर चल दी, कि यह पगडण्डी कहीं तो पहुँचायेगी । मलया को उसी मार्ग पर सामने से आते हुए चार सैनिक मिले । इन्हीं से मैं पृथ्वीस्थानपुर का मार्ग पूछूँगी, यह सोच मलया सैनिकों की ओर आगे बढ़ी कि सैनिक भी उसके निकट आ गए और मलया को देखकर वे चकराये—

"अरे ! इस युवक पर युवराज के कपड़े कहाँ से आये ?"

एक ने मलया से पूछा—

"हमारे युवराज महाबल को तूने कहीं पर देखा है ? क्या तूने उन्हें मार दिया है ? वरना तूने उनके कपड़े कैसे पहने ?"

"अरे, यह तो युवराज की अँगूठी भी पहने है।" दूसरे सैनिक ने कहा—"जरूर यह महाबल का हत्यारा है। इसे पकड़कर ले चलो।"

राजा सुरपाल के सैनिक सुन्दरसेन सहित मलया को पकड़कर ले गए।

राजा सुरपाल और रानी पद्मावती—दोनों ने आज दोपहर को आत्मदाह करने का निश्चय कर लिया था। मंत्री राजा को समझा रहे थे—

"महाराज ! आप धैर्य धारण करें। आपका पुत्रमोह स्वाभाविक है। लेकिन प्रजा के लिए तो आपको जीवित रहना है।"

"आज पाँच दिन से ऊपर हो गए, पर महाबल का कहीं पता नहीं चला।" राजा सुरपाल बोले—"हमारे खोजी सैनिक सब का चप्पा-चप्पा देख आये हैं। जिस रात से वह एकाएक गायब हुआ है, उसका पता नहीं चला। राजा जयसेन ने लोभसार चोर को मार दिया यह समाचार तक भी मुझे मालूम हो गया, पर महाबल का कोई भी समाचार मालूम नहीं हुआ। ऐसी दशा में मैं कैसे जीवित रहूँ ?"

ये बातें हो ही रही थी कि चार सैनिक एक युवक को पकड़ लाये। उन्होंने राजा से कहा—

"पृथ्वीनाथ ! युवराज के बारे में यह सब कुछ जानता है। इसका नाम सुन्दरसेन है और यह युवराज महाबल का मित्र है, इसके अलावा यह कुछ नहीं बताता।"

"इसी ने मारा है मेरे पुत्र को।" महाराज सुरपाल चिल्लाये—"अपने पुत्र के मैं सभी मित्रों को पहचानता हूँ। यह महाबल के ही कपड़े पहने है। अँगूठी भी उसकी है। इसने ही उसे मारकर ठिकाने लगाया है। अरे दुष्ट ! बताता क्यों नहीं है। महाबल का क्या किया ?"

"महाबल और मैं अभिन्न-मित्र हैं। दोनों दो शरीर एक प्राण हैं। अपनी यह अँगूठी और ये कपड़े उन्होंने ही मुझे दिये हैं। वे वन में मुझसे बिछुड़ गए हैं। मैं उन्हें ढूँढता हुआ इधर आ रहा था कि आपके सैनिकों ने मुझे पकड़ लिया। इससे अधिक मैं कुछ नहीं बता सकता।"

"महाबल से तेरी मित्रता कब, कहाँ और कैसे हुई ?" राजा सुरपाल ने पूछा—"इसने तुझे अपने कपड़े क्यों दिये ? तेरे कपड़े कहाँ हैं ? तू कौन है ? कहाँ रहता है ?"

राजा ने जब ये प्रश्न पूछे तो मलया मौन रही।

उसके मौन से राजा का क्रोध सीमा पार कर गया। उन्होंने तुरन्त आदेश दिया—

"जंगल में ले जाकर इसका वध कर दो। मैं अपने पुत्रहन्ता का अब मुंह भी देखना नहीं चाहता।"

राजा का यह आदेश सुनते ही मलया नवकार मंत्र जपने लगी। जब उसके पिता राजा वीरधवल ने उसे प्राणदण्ड दिया था, तब भी उसने धर्म की शरण ली थी। अब उसका श्वसुर भी निरपराध मलया को सुन्दरसेन के रूप में वध की आज्ञा दे रहा है, तब भी मलया ने धर्म की शरण ली।

नवकार मंत्र के जाप का प्रभाव या मलया के पुण्यों का उदय, मंत्री बुद्धिसार की बुद्धि पलटी। उसने राजा से कहा—

"राजन्! सुन्दरसेन युवराज महाबल का मित्र ही हो, यह भी सच हो सकता है। जब तक इसका अपराध पूर्णतः प्रमाणित न हो, इसे प्राणदण्ड देना उचित नहीं है। मेरी राय में इसका दिव्य परीक्षण होना चाहिए। सत्य की जांच के लिए धीज रखने या दिव्य परीक्षण करना ही अमोघ उपाय होता है। इसका दिव्य घटसर्प होना उचित है। यदि यह सच्चा है तो घटसर्प इसे नहीं काटेगा।"

राजा को मंत्री की यह बात उचित लगी। तुरन्त पाँच रथ तैयार कराये गए। मलया, राजा सुरपाल, मंत्री आदि सभी रथ में बैठकर धनंजय यक्ष के मन्दिर को चल दिये। दो गारुड़िकों—सपेरों को आदेश दिया गया कि वे कोई सर्प घड़े में लेकर धनंजय यक्ष के मन्दिर में पहुँचें।

गारुड़िक एक काले विषधर सर्प को घड़े में लेकर यक्ष के मन्दिर पहुंच गए। घड़ा मन्दिर में रखा गया। मंत्री ने कहा—

"सुन्दरसेन! तुम दायाँ हाथ घड़े में डालो। यदि तुम महाबल के मित्र हो तो यह सर्प तुम्हें नहीं डसेगा। यदि तुम झूठे हो तो इसके डसने से तत्काल तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी।"

मलया ने नवकार मंत्र बुदबुदाया और बोली—

"यदि यह सच है कि महाबल और मैं दो शरीर एक प्राण—अभिन्न मित्र हैं। यदि यह सच है कि मैं महाबल को ढूंढने निकला था और यदि यह भी सच है कि अपने ये कपड़े और अंगूठी महाबल ने ही मुझे दिये थे तो हे सर्पदेव तू मुझे मत डसना।"

यह कह मलया ने घड़े में हाथ डाल दिया। घड़े का सर्प मलया के हाथ पर चढ़ा और ऊपर आकर उसने जीभ से मलया के माथे का तिलक मिटा दिया। फिर

लक्ष्मीपुंज हार मलया की गोद में उछल पड़ा। देखते-देखते मलया सुन्दरसेन पुरुष स्त्री हो गई। सभी आश्चर्य में डूब गए।

रानी पद्मावती ने लपककर लक्ष्मीपुंज हार उठा लिया और मलया की ओर देखते हुए बोली—

"तू है कौन ? स्त्री है या पुरुष ? यह सब क्या चक्कर है ?"

"मैं खुद इस चक्कर को नहीं समझ पा रही हूँ।" मलया बोली—"आप कुछ भी समझें, स्त्री समझें या पुरुष। जो भी हूँ, अब तो आपकी शरण हूँ। इतना तो आप समझ ही गई हैं कि आपके पुत्र मेरे मित्र हैं।"

"अब जल्दी नगर को लौटो।" राजा बोले—"यह स्त्री निरपराध है। मेरे हाथों आज एक भारी पाप होने से बच गया। इसने महाबल को वन में छोड़ा है तो वन में ही होगा। उसे ढूँढना चाहिए।"

सभी लोग राजमहल पहुँच गए। अभी सब राजमहल पहुँचे नहीं कि चन्द्रावती नगरी के एक दूत ने राजा को एक पत्र दिया और कहा—

"हमारी नगरी चन्द्रावती में वसुदेव नाम के एक निमित्तज्ञ आये हैं। उन्होंने ही यह पत्र भेजा है।"

पत्र पढ़कर राजा सुरपाल और भी चक्कर में पड़े। पत्र के अनुसार महाबल चन्द्रावती नगरी में है और यह लड़की जो सुन्दरसेन थी और अब सुन्दरी है कह रही है कि इसने महाबल को कल रात वन में छोड़ा है।

मलया ने अपने पीहर के दूत को अपने पास बुलवाया और उसको इशारा किया कि मेरे बारे में कुछ न बताना। फिर उससे पूछा—

"निमित्तज्ञ ने तुम्हें तो बहुत पहले भेजा था। तुम्हें यह सूचना दो दिन पहले पहुँचानी चाहिए थी। तुम्हें विलम्ब क्यों हुआ ?"

दूत ने बताया—

"मैं दो दिन ज्वरग्रस्त रहा। यात्रा करने से लाचार था। इसीलिए दो दिन बाद आया हूँ।"

कुछ भी हो राजा-रानी—मंत्री आदि को अब महाबल के बारे में काफी तसल्ली हो गई थी। उन्होंने फिलहाल आत्मदाह का विचार त्याग दिया था। उन्हें यह विश्वास हो गया था कि महाबल जीवित है। मलया को उन्होंने सम्मान के साथ महल में रखा। महाबल का अभिन्न-मित्र समझकर वे मलया को पूरा स्नेह दे रहे थे। पर इस दुविधा में अवश्य थे कि यह पुरुष था, स्त्री कैसे हो गया।

मलया को महाबल के बारे में बहुत चिन्ता थी। उसके मन में उल्टे-सीधे तरह-तरह के विचार आ जा रहे थे। वह सोच रही थी—"मेरे पति को सर्प किसने डस लिया ? यदि वे सर्प न बने होते तो मेरे माथे का तिलक क्यों मिटाते ? उनकी

जीम द्वारा तिलक मिटाने पर ही मैं पुरुष से स्त्री बन सकती हूँ। फिर लक्ष्मीपुंज हार भी उन्होंने ही उगला था। यदि सर्प बाँझ और होता तो लक्ष्मीपुंज हार उसके पास कहाँ से आता और वह मेरा तिलक क्यों मिटाता ?'

मलया फिर यह भी सोचने लगी—कल रात वन में जो स्त्री रो रही थी और जिसे चुप करने मेरे स्वामी गए थे, वह कोई व्यन्तरी होगी। व्यन्तरी ही उन्हें यहाँ से उड़ाकर ले गई थी। उसी व्यन्तरी ने मेरे स्वामी को सर्प बनाया होगा। अच्छा होता मैं उस सर्प को अपने पास रखती। पर उसे तो मेरे श्वसुर ने दूध पिलाकर वहीं छुड़वा दिया, जहाँ से गाड़ियों ने उसे पकड़ा था। उन्होंने गाड़ियों से कहा था—यह कोई देव सर्प है। जहाँ से लाये हो, वहीं छोड़कर आओ। तभी यदि मैं यह कहती कि यही आपके पुत्र महाबल हैं तो मेरी बात का कौन विश्वास करता ? हाय ! अब मेरे स्वामी कहाँ होंगे ? क्या वे सर्प ही बने रहेंगे ?'

□

२३

जड़ी-बूटियाँ लेकर योगी संध्या को ही लौटा। उसने महाबल को सर्प से मानव रूप में बदला और पूछा—

"कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?"

"कष्ट में भी मुझे सुख मिला।" महाबल ने कहा—"सर्प रूप में इतना पता कर चुका हूँ कि मेरा मित्र सुन्दरसेन मेरे पिता के पास पहुँच गया है। मेरी माता को लक्ष्मीपुंज हार भी मिल गया है। आपके आशीर्वाद से मेरे माता-पिता ने मरने का विचार त्याग दिया है।"

ये सब बातें महाबल ने कैसे मालूम कीं, यह सब योगी ने उससे नहीं पूछा। उसे तो अपनी सिद्धि की चिन्ता थी। उसने महाबल से कहा—

"आज रात मैं ऐसा यत्न करूँगा कि कोई भी व्यन्तर या कोई और शक्ति शव को यहाँ से उठाकर नहीं ले जाएगी। कल रात तुम्हें दो बार शव लाना पड़ा, आज एक ही बार लाना पड़ेगा। तुम जाकर स्नान कर आओ।"

महाबल ने स्नान किया। फिर योगी ने उसे मंत्रों से पवित्र किया। एक गोलाकार रेखा खींचकर स्थान को कीलित किया। एक बड़ी भट्टी जलाई। जल रखा।

उसके कहने से महाबल लोभसार के शव को ले आया। शव उसने कीलित स्थान में रख दिया और स्वयं उत्तरसाधक के रूप में खड़ा हो गया।

योगी ने अपनी क्रिया शुरू की। वह बार-बार मंत्र पढ़कर जल के छींटे शव पर डालता था। शव उड़ने के लिए ऊँचा उछला और फिर नीचे गिर जाता। योगी कहता जाता था—आज तू उड़ नहीं पायेगा। कल की बात और थी। ऐसा करते-करते अब अन्तिम आहुति देनी थी। योगी शव को भट्टी में डालना चाहता ही था कि एक भयंकर अदृश्य वाणी हुई—

"योगी! आज मैं तुझे क्षमा नहीं करूँगा। तू अशुद्ध शव का प्रयोग कर रहा है। मैं इस दूषित शव की आहुति नहीं लूँगा, तेरी जीवित की ही आहुति लूँगा।"

यह कह उस अदृश्य शक्ति ने योगी को भट्टी में झोंक दिया। शव भी उछलकर जाने कहाँ चला गया। उसी शक्ति ने महाबल से कहा—

"दूषित शव के प्रयोग में साधक-और उत्तरसाधक—दोनों ही दोषी हैं। तूने नहीं देखा कि शव के मुँह में कुतरी हुई नाक लगी थी। मैं तुझे प्राणदण्ड तो नहीं दूंगा, पर दण्ड अवश्य दूंगा।"

यह कह अदृश्य शक्ति ने बलपूर्वक महाबल को उठाया और नागपाश से बाँध-कर उल्टा लटका दिया। उसके दोनों हाथ और पैर बाँध दिये थे। उसका मुँह नीचे को था। अब महाबल को शव की बात याद आई—'तू मुझे देखकर क्या हँसता है। तुझे तो यहाँ उल्टा लटकना पड़ेगा।'

'जीवन तो जैसा बीता वैसा बीता' महाबल ने सोचा। 'अब अपनी मृत्यु को तो सुधार लेना चाहिए। मेरा अब किसी से द्वेष नहीं है। मैं सबको क्षमा करता हूँ और सभी से क्षमा माँगता हूँ। मेरा कोई पूर्वबद्ध कर्म उदय में आया है कि मेरी मृत्यु इसी तरह होगी।'

यह सोच महाबल मन-ही-मन नवकार मन्त्र जपने लगा। रही-सही रात बीत गयी। सवेरा हुआ, फिर दोपहर हो गया। महाबल कल का भूखा था। सर्प रूप में उसने दिन में थोड़ा दूध ही तो पिया था। उससे पहले मलया के साथ वनफल खाये थे। अब उसे भूख प्यास—दोनों सता रही थीं। भूख से अधिक प्यास उसे तड़पा रही थी।

औंधे मुँह लटके हुए महाबल के हाथ भी नागपाश से बँधे थे। नाग की पूँछ हिलते-हिलते उसके मुँह में आ गई। उसने पूँछ को दाँतों में दबाया कि तड़प कर नाग ने बंधन खोल दिया और नीचे को लटक गया। महाबल ने पूँछ छोड़ दी तो नाग नीचे गिरकर अदृश्य हो गया। अब उसके हाथ खुल गए थे, पर पैर तो बँधे ही थे।

प्रयास करके भी वह पैरों को नहीं खोल पाया और यही सोच लिया कि अपने नगर से पाँच कोस दूर लटके-लटके प्यास से तड़प-तड़प कर मेरी मृत्यु होगी ।

× × ×

राजा सुरपाल के सैनिकों ने पूरे दिन महाबल को खोजा, पर वह कहीं नहीं मिला । रात बीती । यह वही रात थी, जब अदृश्य शक्ति ने योगी को भट्टी में झोंक कर महाबल को उल्टा लटकाया था । सबेरा होते-होते राजा-रानी – दोनों ने निश्चय किया कि कल वन का चप्पा-चप्पा छान लिया, पर महाबल का पता नहीं चला । अब हम जीवित नहीं रहेंगे ।

मन्त्री बुद्धिसार ने कुछ सैनिक पुनः वन में भेजे और कहा कि वन में और आगे बढ़ो । सुन्दरी कहती है कि उसने महाबल को वन में छोड़ा है तो वन में ही होगा ।

मन्त्री ने फिर राजा से कहा –

"राजन् ! दोपहर तक सैनिक युवराज की कोई सूचना अवश्य लाएँगे । आप दोपहर तक आत्मदाह स्थगित कर दीजिए ।"

राजा ने दोपहर तक के लिए मन्त्री की बात तो मान ली, पर एक बड़ी चिता अवश्य तैयार करा ली ।

उधर राजा के सैनिक वन में भटक रहे थे । वे सब ओर गए, पर वहीं नहीं पहुँच पाये, जिस वट-वृक्ष पर महाबल उल्टा लटका था । उस वृक्ष के पास तक जाते पर लौट आते । वन की सघनता के कारण भी महाबल लटका हुआ नहीं दीख रहा था । संयोग से एक सैनिक ने देखा कि पेड़ पर कोई व्यक्ति लटक रहा है । 'होगा कोई' यह सोच सैनिक लौट पड़ा । फिर सोचा, देख तो लूँ कौन है । यह सोच वह आगे बढ़ा और पुनः सोचा—अरे क्या पता कोई मुर्दा हो । मन नहीं माना तो वह सैनिक चला ही गया । उसने महाबल को पहचान लिया तो वहीं से चिल्लाया—

"साथियो ! दौड़ो-दौड़ो, जल्दी करो । देखो युवराज की क्या दशा है ।"

सब सैनिक वहाँ पहुँचे, जहाँ महाबल लटका था । महाबल को देख वे बोले—

"जल्दी महाराज के पास चलो । नागपाश को काटना हरेक के बस की बात नहीं है ।"

दौड़ते हुए सैनिक राजा के पास पहुँचे और एक ही साँस में सब बातें कह दीं । जिस सैनिक ने सबसे पहले महाबल को देखा था, राजा ने तुरन्त अपना मूल्यवान हार उसे दे दिया—

"असली काम तुमने ही किया है। मैं तुम्हें और भी पुरस्कार दूंगा। चलो मुझे वह स्थान दिखा, जहां मेरा पुत्र नागपाश में लटका है।"

देखते-देखते वन में भीड़ जमा हो गई। महाराज सुरपाल विषापहार मन्त्र जानते थे। वे वट-वृक्ष पर चढ़ गए और मन्त्रबल से नागपाश खोल दिये। नीचे खड़े सैनिकों ने सावधानी से हाथों में ले लिया। महाबल ने संकेत से पानी मांगा। एक अश्वारोही सैनिक ने तुरन्त जल की झारी दे दी। पानी पीकर महाबल कुछ स्वस्थ हुआ। लटके-लटके और बंधे-बंधे महाबल का शरीर अकड़ गया था। सेवक उसके हाथ-पैरों की मालिश करने लगे। महाबल ने भी हाथ-पैर झटके। वह खड़ा हो गया और एक घोड़े पर चढ़ गया। सब साथ चले। महाराज सुरपाल ने पूछा—

"वत्स! तेरी यह दशा किसने की?

"पिताजी यह कहानी बहुत लम्बी है।" महाबल ने कहा—"फिर कभी विस्तार से सुनाऊंगा। अभी के सुनने लायक है।"

सब राजभवन पहुँच गए। युवराज महाबल की जयजयकार होने लगी। माता पद्मावती ने महाबल का माथा चूमा और बोलीं—

"वत्स! कल तेरा मित्र सुन्दरसेन यहां आया था। लेकिन वह स्त्री बन गया। इसमें तेरी मित्रता कब हुई, इसने तो हमें कुछ भी नहीं बताया।"

"यह मेरा मित्र नहीं।" महाबल बोला, "बल्कि तुम्हारी पुत्रवधू मलयासुन्दरी है। चन्द्रावती नगरी के राजा वीरधवल की पुत्री मलयासुन्दरी का वरण मैंने स्वयंवर में किया है। आप हम दोनों को आशीर्वाद दें।"

यह सुनते ही मलया तुरन्त महारानी के बराबर खड़ी हो गई। दोनों ने रानी पद्मावती के पैर छूए। रानी ने पुत्र और पुत्रवधू को आशीर्वाद दिया, फिर दोनों को लेकर राजा सुरपाल के पास पहुंचीं—

"यह हमारी पुत्रवधू मलया है। इससे यह पूछो कि इसने पहले अपना परिचय क्यों नहीं दिया।"

"क्यों बेटी?" राजा सुरपाल बोले—"तुमने पहले क्यों नहीं बताया कि तू हमारे पुत्र की जीवन-संगिनी है?"

"पिताजी, उस समय परिस्थिति ऐसी थी कि मेरा कोई विश्वास नहीं करता।" मलया बोली—"मैं पुरुष रूप में थी। अतः मित्र बताना ही ठीक था। सो मैंने बताया ही था।"

वह रात आपस की छुट-पुट बातों में बीत गई। काफी वृत्तान्त तो महाबल ने टुकड़ों में बीच-बीच में ही सुना दिया था। कुछ मलया ने भी बताया। दूसरे दिन राजा ने विशेष सभा बोड़ी। नगर के सारे लोग सभा में आये। महाबल ने प्रारम्भ

से अब तक का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना डाला। सुनकर लोग महाबल के साहस, धैर्य और बुद्धि बल की सराहना करने लगे। योगी का हाल सुनकर राजा सुरपाल ने पूछा —

"वह योगी जलकर मर गया या बच गया?"

"मुझे कुछ नहीं मालूम।" महाबल बोला, "बस, इतना याद है कि किसी व्यक्ति ने उसे भट्टी में झोंकने के लिए उठाया था। फिर मैं वृक्ष से लटका दिया गया।"

राजा सुरपाल ने योगी के स्थान को देखने का निश्चय किया तो वे सभा विसर्जित कर महाबल के साथ योगी वाले स्थान पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने भट्टी में एक स्वर्ण पुरुष को पड़े देखा। भट्टी की आग ठंडी हो चुकी थी। महाबल ने योगी को पहचान कर कहा—

"पिताजी! योगी ही जलकर स्वर्णपुरुष बना है। बेचारा स्वयं इसका उपयोग नहीं कर पाया। योगी ने मुझे बताया था कि स्वर्णपुरुष के मस्तक को छोड़कर कोई भी अंग संध्या को काटा जाए तो सवेरे तक वह अंग पूरा हो जाता है। इस तरह यह स्वर्ण-पुरुष अक्षय रहता है।

"पिताजी! यदि मैं अज को देखकर उसके मुँह में लगी नाक निकाल फेंकता तो उस अज का ही स्वर्णपुरुष बनता, योगी बच जाता।"

"जो हुआ सो हुआ।" मंत्री बोला— "इस स्वर्णपुरुष को ले चलना चाहिए। प्रजा के कल्याण कार्यों में इसका स्वर्ण काम में आयेगा।"

स्वर्णपुरुष लेकर राजा-मंत्री और महाबल नगर में आ गए। महाबल के कहने से राजा सुरपाल ने एक पत्र अपने मित्र राजा वीरधवल को लिखा कि आपकी पुत्री मलयासुन्दरी यहाँ मेरी पुत्रवधू बनकर रह रही है। यह आनंद है। आप चिन्ता न करें। यहाँ आते-आते आपकी पुत्री और आपके जामाता पर क्या बीती, यह वह दोनों मिलकर कभी बतायेंगे। समय निकालकर युवराज मलयकुमार को भेजना। वह अपनी बहन और बहनोई को देख जाएगा।

यह पत्र देकर राजा सुरपाल ने एक दूत राजा वीरधवल के पास चन्द्रावती नगरी भेज दिया।

सब समस्याओं से निश्चिन्त होकर मलया—महाबल के सुहाग-मिलन की तैयारियाँ हुईं। दोनों रात्रि की नीरवता में एक जगह बैठे और बीती बातों पर बातें करने लगे। कितनी आपदाओं के बाद दोनों के लिए यह चिर प्रतीक्षित रात्रि आई थी।

महाबल-मलया की मधुयामिनी बड़े उल्लास से बीती। फिर तो ऐसी मधुर

रातें और भी बीतीं। बीत रही थीं। रातों को तो बीतना ही था। महाबल को पाकर मलया और मलया को पाकर महाबल सब कुछ पा गए थे।

दुख के बाद सुख आता है। महाबल-मलया के जीवन में बहुत दुःख आये थे, अब तो सुख-ही-सुख था। इस दाम्पत्य सुख में वृद्धि तब और हुई, जब महाबल को यह पता चला कि नौ महीने बाद मैं पिता बनूंगा। माँ बनने की सार्थकता का अनुभव कर मलया भी प्रसन्न रहती थी।

□

२४

महाबल और मलया अपने उपवन में बैठे हुए थे। जहाँ वे दोनों बैठे थे, वहाँ से बाहर के आने-जाने वाले साफ दीख रहे थे। दोनों ने एक स्त्री को अपनी ओर आते हुए देखा। जब वह कुछ निकट आई तो महाबल ने कहा—

"प्रिये, यह तो वही स्त्री है जो एक रात वन में रो रही थी और मैं तुम्हें बैठाकर इसका रोना सुनकर गया था। शव के मुँह ने इसकी थोड़ी-सी नाक आगे से कुतर ली थी। पर अब तो इसकी नाक भर गई है। थोड़ा-सा दाग रह गया है।"

"अरे तो इसी की मदद करने आप गए थे।" मलया ने आश्चर्य से पूछा—"इसने लोभसार के शव को अपने पति का शव बताया था? हाय! यह इतनी गिर गई!"

"कितनी गिर गई?" महाबल ने पूछा—"क्या तुम इसे जानती हो?"

"आप भूल गए?" मलया बोली—"जब आप श्रेष्ठिपुत्र विमलकुमार का रूप रखकर मेरे भवन पर गए थे, तब सबसे पहले तो यही आपको मिली थी। इसी ने आप पर डोरे डाले थे। यह मेरी विमाता अनंगवती है।"

"मैंने रात में इसे थोड़ी देर ही तो देखा था।" महाबल बोला—"इसीलिए नहीं पहचान पाया। फिर तुम तो इसका प्रेमी सुन्दरसेन भी बनी थीं। तो यह अनंगवती है। सच, यह तो बहुत गिरी। जान-बूझकर इसने अपने हरे-भरे जीवन में आग लगा दी।"

"मेरे कारण इसने अपना जीवन बिगाड़ा है।" मलया बोली—"मैंने जाने इसका क्या बिगाड़ा है, जो इसने मुझे मरवाने तक का षड्यन्त्र रचा?"

"तुम्हारा इसका पूर्वजन्म का वैर होगा।" महाबल बोला—"पिछले वैर ने वणीभूत होकर ही यह तुम्हें मरवाना चाहती थी।

"प्रिये! जब भी किसी के प्रति द्वेष की आग भड़के, हमें यह सोचना चाहिए कि इसने मुझे पूर्वभव में सताया होगा। मैंने इसे तब क्षमा नहीं किया था। तभी यह वैर भड़क रहा है। अब मुझे क्षमा कर देना चाहिए। अब तो यह मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। पिछले भव की शत्रुता का बदला अब लूंगा तो मेरा अगला भव भी बिगड़ेगा।

"प्रिये! तुम्हें देखकर अलंगवती के हृदय में जो वैर भाव जाग्रत हुआ था, उसे उसको शान्त कर देना चाहिए। परज्ञानी तो वही कर सकता है, जिसने मुनियों की देशना सुनी हो, जिसने धर्म को जाना हो। साधारण जीव तो द्वेष की परम्परा को आगे—कई भवों तक बढ़ाता है। मैल से मैल कभी नहीं धुलता। वैर से वैर कभी नहीं मिटता। अग्नि तो जल से ही शान्त होती है।"

"मुझ पर तो धर्म की कृपा है।" मलया बोली—"मैंने प्रत्येक कष्ट को अपने पूर्वभव का कर्मबन्ध माना है। मेरे मनोभाव न तो विमाता अलंगवती के प्रति रोष है और न किसी अन्य के प्रति।"

"ऐसा ही होना चाहिए।" महाबल बोला—"मैं नागपाश में बंधा, वृक्ष से उल्टा लटका, इस सबको भी मैंने अपने पूर्व दुष्कर्म का परिणाम माना है। हमें अपना पूर्वभव तो याद नहीं रहता, घटनाएं भी याद नहीं रहतीं। पर वर्तमान भव की भली-बुरी, राग द्वेष, सुख-दुख की घटनाओं को देखकर हमें यह तो मान ही लेना चाहिए कि हमने पूर्वभव में शुभाशुभ कर्मों का बंध अवश्य किया है।"

"यदि हमें अपने पूर्वभव की घटनाएं मालूम हो जातीं तो कितना अच्छा हो।" मलया बोली—"पूर्वभव में हम क्या थे, कौन थे, हमने किसके प्रति क्या किया था, ये सब बातें कोई केवली ही बता सकते हैं।"

"केवली मुनि के दर्शन तो बड़े पुण्यों से मिलते हैं।" महाबल बोला—"हमारे पुण्य हुए तो कभी-न-कभी हमें उनकी अमृत वाणी सुनने को मिलेगी। पर एक बात तो मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि पूर्वभव में भी तुम मेरी प्रियतमा होगी। तभी तो तुम्हारा चित्र मात्र देखकर मैं तुम्हारा हो गया था।"

"यह भी कोई बात हुई?" मलया बोली—"यह बात तो मैंने तुमसे पहले कही थी। याद करो मेरी वह कविता, जिसे मैंने भूर्जपत्र पर लिखकर तुम्हारे पास अपने भवन के झरोखे से फेंका था। मुझे याद है, मैंने लिखा था—

"प्रीति पुरातन यदि तोहि होती,
तो क्यों तुम यों आते।

आ भी जाते गले-बिछुड़े,
पर नहिं मन को भाते ॥

"स्वामी ! मैंने यह भी लिखा था,—

"जनम-जनम के साथी हो तुम,
लगता है यह मुझ को ।
बार-बार कहता है मन यह,
कब देखा था तुझ को ॥"

"तुमने मेरे मन की बात ही तो अपनी कविता में लिखी थी।" महाबल बोला—"पति-पत्नी की बात एक दूसरे के मन की बात होती है। भले ही उसे पत्नी पहले कहे या पति ।"

"मैं यह नहीं मानती ।" मलया बोली—"मेरे पिता महाराज वीरधवल और विमाता अनंगवती भी तो पति-पत्नी हैं। उनकी बात कहाँ है एक ?"

"पति-पत्नी से मेरा तात्पर्य सच्चे अर्थों में पति-पत्नी होने से है।" महाबल बोला—"हर पति प्रियतम नहीं होता और हर पत्नी प्रियतमा नहीं होती। जो पति-पत्नी प्रियतम-प्रियतमा होते हैं, मैं उन्हीं के बारे में कह रहा था कि उनकी बात एक होती है। सच्चे पति के लिए अपनी पत्नी को छोड़कर हर स्त्री माता, बहन और पुत्री ही होती है। इसी तरह पत्नी के लिए भी पर-पुरुष सहोदर भाई, पिता और पुत्र होता है। तुम्हारी विमाता अनंगवती के लिए तो हर पुरुष उसका प्रियतम है। ऐसी स्त्रियाँ, स्त्री के नाम पर कलंक हैं।

"प्रिये ! कुछ स्त्रियाँ ऐसी होती हैं, जो व्यभिचारिणी नहीं होतीं; पर वे अपने पति से दुराव और कपट करती हैं। शरीर से वे व्यभिचारिणी नहीं होती; पर मन से पर-पुरुष का चिन्तन करती हैं। हमारे राज्य में सुरपुर नाम का एक गाँव है। उस गाँव में शंकर और उसकी पत्नी मोहिनी रहते हैं। मोहिनी का बहनोई—उसका जीजा है अमरनाथ। मोहिनी अपने जीजा को जीजा ही मानती है, पर पति के मुकाबले में उसका अधिक सम्मान करती है। एक दिन उसका जीजा अमरनाथ मोहिनी के घर आया। मोहिनी ने अपने जीजा के लिए बड़े मन से बहुत हल्की—विशेष रूप से हल्की रोटियाँ बनाकर खिलाईं। जब वह खाकर चला गया तो मोहिनी ने अपने पति शंकर से कहा—तुम भी खा लो। इस पर शंकर ने कहा कि मेरे लिए भी ऐसी हल्की-हल्की रोटियाँ बना दो, जैसी अपने बहनोई अमरनाथ के लिए बनाई थीं। इस पर मोहिनी उत्तेजित हो उठी और बोली—तुम मेरे जीजा की बराबरी कैसे कर सकते हो जी ? तुम गाँव के हो। मेरे जीजाजी नगर के हैं। वे तो अपने घर भी हल्की खाते हैं। मैंने कुछ ज्यादा हल्की बना दी। तुम तो मोटी रोटियों के खाने वाले हो। किसी की होड़ नहीं करनी चाहिए।

"मलया ! शंकर ने मोटी रोटियाँ ही खा ली । बात मोटी-पतली की नहीं थी, भाव की थी । पति-पत्नी का पूरा व्यवहार भाव पर ही निर्भर रहता है । कुछ दिन बीते तो शंकर ने मोहिनी से कहा—तेरे लिए जीजा ज्यादा है, मैं कम हूँ । इस पर मोहिनी ने उत्तर दिया—तुम्हारे तो मैं पैर दाबती हूँ । जीजा के क्या पैर दाबती है ? जीजा तुमसे ज्यादा कैसे हो सकता है ? शंकर ने मोटी-पतली रोटी वाली घटना की याद दिलाई तो मोहिनी बोली—मुझे तो याद नहीं है कि मैंने ऐसा किया था । यदि तुम कहते हो तो ऐसा भेदभाव यही सोचकर ऐसा किया होगा कि तुम तो घर के आदमी हो, जीजा अतिथि था । घर के आदमी को चाहे जैसी खिला दो । मेहमान की खातिर तो विशेष की ही जाती है ।

"तो मलया ! शंकर और मोहिनी के जीवन की ऐसी अनेक घटनाएँ हैं, जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि मोहिनी जैसी स्त्रियाँ अपने पूर्वजन्म के वैर का बदला लेने के लिए ही पत्नियाँ बनती हैं ।"

"यह अनंगवती कहाँ चली गई ?" मलया बोली—"अभी तो यहीं दीख रही थी ।"

"लगता है राजदरबार गई होगी ।" महाबल बोला—"मुझे बुलवायेगी । मलया ! तुम एक काम करना, उसके सामने मत पड़ना । तुम्हें वह मरा हुआ ही समझे । यदि वह यह जान गई कि मलया पाताल-कूप में गिरकर मरी नहीं है, वह जीवित है और महाबल की पत्नी बनकर रह रही है तो वह अनर्थ खड़ा कर देगी । फिर कोई उपद्रव करेगी ।"

"मैं भी यही सोचती हूँ ।" मलया बोली—"मैं भी नहीं चाहती कि मुझे देखकर उसका वैरभाव पुनः जाग्रत हो ।"

महाबल-मलया में ये बातें हो ही रही थीं कि एक चर उपवन में आया । उसने महाबल से कहा—

"कोई स्त्री आपसे मिलना चाहती है । महाराजश्री के पास बैठी है, वह स्त्री । महाराज अभी राजसभा में नहीं गए हैं । वे अपने खण्ड में ही आपको याद कर रहे हैं ।"

मलया को भीतर अपने अन्तःपुर में भेज महाबल अपने पिता सुरपाल के खण्ड में गया । अनंगवती वहीं बैठी थी । उसने पहचाना नहीं था कि कुछ दिन पहले की रात इसी ने चौपाया बनकर पुत्र को अपनी पीठ पर खड़ा करके लोभसार के मुँह का चुंबन कराया था । महाबल ने ही बात छेड़ी—

"तो अब तुम्हारी नाक तो ठीक हो गई । आगे का कटा हुआ भाग तो शव के मुँह ने कुतरा था ।"

"तो उस रात आप ही थे ?" अनंगवती बोली—"मुझे क्या पता था कि मेरी रक्षा को आने वाला युवराज है। मैं जिस काम से आई हूँ, वह मैंने महाराज को बता दिया है।"

"हाँ, इस देवी ने मुझे बताया है कि यह लोभसार की पत्नी है।" राजा सुरपाल बोले—"लोभसार ने चोरी और लूट से अपार सम्पत्ति इकट्ठी की है। यह देवी उस सम्पत्ति को हमें देना चाहती है। तुम्हारी क्या राय है ?"

"इनका त्याग धर्मयुत है।" महाबल बोला—"हमें यह सम्पत्ति यहाँ लाकर उन लोगों में बाँट देनी चाहिए, जिनकी चोरियाँ लोभसार ने की थीं। अपनी-अपनी सम्पत्ति का प्रमाण देकर लोग ले जाएँगे।"

"तो यह काम तुम्हीं करो।" राजा सुरपाल ने महाबल से कहा— "कुछ सेवक और छकड़े ले जाओ।"

"कितनी गाड़ियाँ सम्पत्ति होगी ?" महाबल ने अनंगवती से पूछा— "कितने छकड़े ले जाना काफी होगा ?"

"आप बीस छकड़े ले चलिये।" अनंगवती बोली—"जो बचेंगी, वे गाड़ियाँ खाली लौट आयेंगी।"

"अब आपको हमारे अतिथि भवन में रहना होगा।" राजा सुरपाल बोले— "आपने हमारी प्रजा के लिए इतना धन दिया है तो आप भी अब हमारे राज्य-संचालन मण्डल का एक अंग हैं। आपकी सुरक्षा, रहने-सहने और सब बातों की पूर्ति हमारी ओर से रहेगी।"

महाबल नहीं चाहता था कि अनंगवती जैसी स्त्री यहाँ रहे। लेकिन पिता के विरुद्ध वह कुछ कह भी नहीं सकता था। दूसरे, वह यह बात भी किसी को बताना नहीं चाहता था कि यह स्त्री लोभसार की पत्नी न होकर मलया की विमाता और महाराज वीरधवल की पत्नी है।

महाबल अनंगवती को साथ लेकर लोभसार के अड्डे पर गया। अठारह छकड़े सम्पत्ति लेकर वह लेकर आया। उसने आस-पास घोषणा करा दी कि जिन-जिन की चोरियाँ हुई हैं, वे सब अपना-अपना सामान प्रमाण देकर ले जाएँ।

एक महीने के भीतर सब सामान बँट गया। जो बचा, वह राजकोष में प्रजा-हित के लिए डाल दिया। अनंगवती राजा सुरपाल के अतिथि भवन में रहती थी। उसके जीवन की एक राह बन गई थी। उसके दिन कट रहे थे।

एक दिन अनंगवती की दृष्टि मलया पर पड़ गई कुछ क्षण तो वह यही सोचती रही कि मलया यहाँ कहाँ से आई। वह तो मर चुकी थी। फिर सोचा, यह तो मलया ही है। इसका जीवित बचना तो मेरी मौत होना है। एक बार बच गई तो अबके

नहीं बचने दूंगी। मलया ! देख, अब तो मैं तुझे तड़पा-तड़पा कर मारूंगी। 'अरे यह तो गर्भवती भी है। इसका पेट बता रहा है कि इसे छह-सात महीने का गर्भ है। पत्नी यह महाबल की बन गई, पर इसे मैं माँ नहीं बनने दूंगी। आज तान्त्रिका होती तो बड़ा साथ देती। खैर, मैं अकेली ही बहुत हूँ...

मलया के प्रति पूर्ण प्रतिशोध और वैरभाव लेकर अनंगवती मलया के पास पहुँची और बोली—

"अरे बेटी! तू यहाँ? बेटी! तू विश्वास नहीं करेगी कि तुझे देखकर मुझे कितनी प्रसन्नता हुई है। मैंने तेरे साथ बहुत बुराई की थी। उसका भरपूर दण्ड पा लिया।

"बेटी! बुरा व्यक्ति भी कहीं-न-कहीं अच्छा होता है। जब वह अपने पाप का प्रायश्चित्त कर लेता है तो उसकी बुराई पश्चात्ताप की अग्नि में जल जाती है। तप कर सोना भी तो दमकता है। मैं सोना तो नहीं हूँ, पर मैं पहली वाली अनंगवती भी नहीं हूँ। अब तो मैं नकली अनंगवती हूँ। बेटी! क्या तू अपनी नकली माँ को क्षमा नहीं कर सकती?"

यह कह अनंगवती रोने लगी। रोना नारी का अमोघ अस्त्र है। पुरुष दुःखी होने पर भी नहीं रोता है। पर स्त्रियाँ जरूरत होने पर, जब चाहती हैं तब रो देती हैं। अनंगवती की बातें और उसका रोना—दोनों ने मलया का हृदय जीत लिया। वह अनंगवती के वक्ष से लिपट गई और अश्रु भर लाई—

"माँ! तुम बुरी-भली जैसी भी हो, मेरी माँ हो। मेरे मन में तुम्हारे लिए पहले भी कोई मैल नहीं था। अब भी नहीं है। तुम अब मेरी माँ बनकर ही रहोगी। लेकिन यहाँ किसी से मत कहना कि तुम....।"

"मैं क्या पागल हूँ, जो किसी से कहूँगी कि मैं वीरधवल राजा की रानी हूँ?" अनंगवती बोली— "मैं भी जानती हूँ कि इससे मेरे पति महाराज वीरधवल की बदनामी होगी।"

अनंगवती अब मलया के खास महल में उसी के पास रहने लगी। उसका प्यार और सेवा देखकर मलया उस पर बहुत विश्वास करने लगी। गर्भवती होने के कारण महाबल उसके कक्ष में नहीं सोता था। मलया अनंगवती को साथ लेकर सोती थी। अनंगवती उसे कुछ भी काम नहीं करने देती थी। कोई छोटी-मोटी चीज भी मलया उठाती तो अनंगवती प्यार से डाँट देती—"ऐसी हालत में कुछ भी भारी-उठाते नहीं हैं।"

"आपको पाकर तो मुझे ऐसा लगता है माँ!" मलया कहती—"कि एक ही कक्ष में मेरा मायका भी है और सुसराल तो है ही।"

अनंगवती के बदले हुए व्यवहार में मलयासुन्दरी आश्चर्यमिश्रित हर्ष का अनुभव करती थी। महाबल भी यह सब जानता था। उसने एक बार मलया से कहा भी—

"मलया ! अनंगवती का व्यवहार देखकर मुझे भी सन्तोष है। पर तू इससे सावधान रहना, क्योंकि नीच व्यक्ति का झुकना बहुत दुःखदायी होता है।"

"अनंगवती का तो यहीं दूसरा जन्म हुआ है।" मलया बोली—"वह बुरी भी अवश्य, पर अब नहीं है। ज्यादा-से-ज्यादा वह यही कर सकती थी कि मेरे भोजन में विष मिला दे पर वह तो मेरे साथ ही भोजन करती है। फिर भी मैं सावधान तो रहती ही हूँ।"

मलया की बातों से महाबल आश्वस्त हो गया। समय गुजरता रहा उसे गुजरना था।

× × ×

पृथ्वीस्थानपुर में महामारी का प्रकोप फैला। एक दो, तीन—दस-दस तक व्यक्ति एक ही दिन में चटपट मरने लगे। वैद्यों ने मिलकर विचार किया और जड़ी-बूटियों का धुआँ घर-घर कराया गया। इससे महामारी का वेग तो कुछ कम हुआ, पर एक-दो व्यक्ति नगर में रोज मर जाते। खाट तो बहुतों ने पकड़ ली। घर-घर रोग शय्याएँ बिछ गईं।

इसके साथ ही एक घटना यह घटी कि एक दुर्दान्त डाकू राज्य के नगर-गाँवों को लूटने लगा। गाँव के लोग टोला बनाकर राजधानी पृथ्वीस्थानपुर आये और डाकू की बात राजा सुरपाल से कही। राजा ने इस पल्लीपति डाकू को तत्काल नष्ट कर देने का निश्चय किया तो महाबल ने कहा—

"पिताजी ! आपकी कृपा से इस छोटे-से कार्य को तो मैं ही निपटा दूँगा। आप न जाएँ, पल्लीपति को ठिकाने लगाने मैं ही जाऊँगा।"

"यह काम छोटा नहीं है।" राजा सुरपाल ने कहा—"इसके पीछे सागर तिलक के राजा कंदर्पदेव का हाथ है।

"महाबल ! कंदर्पदेव राजा हमारा पुराना शत्रु है। इसको मैंने पहले गुँह की खिलाई है। अब वह पल्लीपति को अस्त्र-शस्त्र देकर हमारे राज्य में डाका डलवाता है। मुझे ही जाना होगा।"

"पिताजी ! आखिर मैं आपका ही पुत्र हूँ।" महाबल बोला—"पल्लीपति के साथ कंदर्पदेव भी सेना लेकर आये तो मैं उसे भी धूल चटा दूँगा।"

"मुझे तेरे शौर्य पर पूरा भरोसा है।" राजा सुरपाल बोले—"आखिर तो तू महाबल है। पर तेरे न भेजने का कारण और भी है। तू पहले घर से बाहर गया था तो तुझ पर कितनी विपत्तियाँ आई थीं। मैं तुझे घर से बाहर नहीं जाने दूँगा।"

"आप तो निर्ग्रंथ धर्म को मानते हैं पिताजी ! फिर ऐसा क्यों सोचते हैं?"

महाबल बोला—"विपत्तियां हमेशा नहीं आतीं। यदि उन्हें आना ही होता है तो घर बैठे भी चली आती हैं।"

महाबल के आग्रह को देख राजा सुरपाल ने उसे अनुमति दे दी। महाबल ने मात्र हजार अश्वारोही सैनिक साथ लिये। प्रस्थान से पूर्व उसने मलया से अनुमति माँगी तो मलया बोली—

"मैं किस संकट में आपके साथ नहीं रही? आप मुझसे अनुमति लेने क्यों आये हैं? आपको तो यह कहना था कि मलया चलो, तुम भी चलो।"

"मैं तो तुम्हें साथ लेने ही आया था।" यह कह महाबल हंसने लगा और हँसते-हँसते बोला—"पर तुम्हारा पाँव तो भारी है। तुम्हीं बोलो, भारी पाँव से कहीं चला जाता है?"

"पाँव तो नहीं, पेट भारी है।" मलया भी हँसी। हँसकर ही उसने कहा—"गर्भभार लिये महारानी सीता भी वन में अकेली रही थीं। क्या मैं भारी पाँव से रहे आपके साथ भी नहीं जा सकती?"

"जा क्यों नहीं सकती?" महाबल बोला—"पर ऐसी जरूरत नहीं है कि तुम साथ चलो। आज तुम सच्ची क्षत्राणी का परिचय दो। धैर्य के साथ मेरी प्रतीक्षा करो। तुम्हें सातवाँ महीना चल रहा है। जब तक तुम माँ बनोगी, मैं आ जाऊँगा।"

मलया राजी हो गई। उससे विदा ले महाबल ने माता पद्मावती से विदा ली और हजार सैनिकों को साथ ले पल्लीपति का दमन करने चल दिया। उसके चले जाने से अनंगवती को बहुत प्रसन्नता हुई। अब वह और भी मलया के निकट आ गई। रात-दिन उसी के साथ उसी के कक्ष में रहने लगी। उसका प्रेम देखकर महारानी पद्मावती और महाराज सुरपाल भी प्रसन्न थे। वे सोचते थे, यह नारी एक चोर की पत्नी है—लोकसार चोर की पत्नी। लेकिन कितनी महान है। अपने पति की सारी सम्पत्ति—अठारह गाड़ियाँ सम्पत्ति दे दी और मलया पर सगी माँ से भी अधिक स्नेह करती है। राजा-रानी को क्या पता था कि मलया से स्नेह करने वाली उसकी सौतेली माँ है और इसी के निमित्त से मलया ने संकट उठाये थे।

२५

महामारी का कोप शान्त नहीं हुआ था। महाबल को गए बीस दिन हो गए थे। अनंगवती को अपने वैर का बदला लेने का एक विचार आ गया। उसे साकार करने वह मलया के पास गई और बोली—

"बेटी मलया ! दो दिन से मैं देख रही हूँ कि कोई व्यन्तरी या राक्षसी वातायन से तेरे कक्ष में झांकती है। वह तेरा गर्भ नष्ट करना चाहती है। वातायन पर बैठकर वह कहती है कि मैं तेरे गर्भ को खाऊँगी।

"मलया ! तू कहे तो मैं राक्षसी को भगाने का यत्न करूँ।"

मलया सोचने लगी—'जरूर कोई व्यन्तरी आती होगी। कोई व्यन्तरी ही यहां से मेरे पति का हरण करके ले गई थी। मेरी विमाता झूठ नहीं कहती। मैं तो सो जाती हूँ। विमाता ने उसे अवश्य देखा होगा।"

प्रकट में मलया ने अनंगवती से कहा—

"माँ ! तुम जो कुछ करोगी, मेरी भलाई के लिए ही करोगी। पर तुम राक्षसी को कैसे मारोगी ? उसकी शक्ति तो मानवों की शक्ति से बहुत अधिक होती है।"

"मैं उसे मार कैसे सकती हूं ?" अनंगवती बोली—"मैं तो ऐसा उपाय करूँगी कि वह यहां आना ही छोड़ दे। मैं स्वयं राक्षसी का भेष धारण करके मन्त्र पढ़कर चारों दिशाओं में सरसों पढ़कर फेंकूँगी। जिस दिशा से वह आती होगी, उसकी वही दिशा अवरुद्ध हो जाएगी। मन्त्रों का प्रभाव तो उसे रोकेगा ही, दूर से वह मेरा राक्षसीरूप देखकर सोचेगी कि यह कोई दूसरी राक्षसी है तो मैं कैसे जाऊँ।"

"आप ऐसा ही करो।" मलया ने स्वीकृति दी—"मुझे तो अभी से डर लगने लगा है। रात को कहीं वह न आ जाए।"

"आज के बाद वह नहीं आयेगी।" अनंगवती बोली—"मेरे रहते तू क्यों डरती है। मैं आज रात को ही प्रयोग करूँगी।"

यों मलया को आश्वस्त कर अनंगवती सीधी राजा सुरपाल के पास पहुँची और हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। राजा ने पूछा—

"कहो, क्या चाहिए ? तुम्हारे त्याग को मैं कभी नहीं भूल सकता।"

"मैं आज भी एक त्याग करने आई हूं।" अनंगवती बोली—"मैं अपने प्राणों का त्याग करने आई हूं।"

"मैं कुछ समझा नहीं।" राजा सुरपाल बोले—"बिना किसी विशेष कारण के अपने प्राणों का त्याग कोई नहीं करता। महाबल के विवाह में मैं भी मरना चाहता था। तुम पर ऐसा क्या कष्ट है, जो तुम मरना चाहती हो।"

"अन्नदाता! एक बात ऐसी है कि यदि कहूं तो मेरे प्राणों पर संकट है और यदि न कहूं तो भी बिना कहे रहा नहीं जाता।

"पृथ्वीनाथ! आप मुझे अभय दें तो मैं एक अनहोनी, विश्वास न करने योग्य लेकिन पूर्णतः सत्य बात कहना चाहती हूं।"

"कहो। निस्संकोच होकर कहो।" राजा सुरपाल बोले—"मैं तुम्हें अभय देता हूं।"

अनंगवती ने निःश्वास छोड़ा और कहने लगी—

"अन्नदाता! युवराजी मलया को मैं बेटी समझती हूं। मेरा उसने कुछ नहीं बिगाड़ा, जो मैं उसके विरुद्ध कोई बात कहूंगी। मेरे पति की अपार सम्पत्ति मेरे पास थी जो मैंने आपको सौंप दी। लेकिन मलया का जो घिनौना और राक्षसी रूप मैंने देखा है, उसे देखकर मैं आपको बताये बिना नहीं रह सकती।"

"लेकिन तुमने तो कुछ भी नहीं बताया।" राजा बोले—"क्या किया है हमारी बहू मलया ने? उस-जैसी शीलवती नारी तो ढूंढने पर भी नहीं मिलेगी। यदि तुमने उसके बारे में कोई असत्य बात कही तो मैं तुम्हारी जीभ कटवा दूंगा।"

"यदि मैं असत्य कहूं तो मेरे टुकड़े-टुकड़े करवा दीजिए।" अनंगवती बोली—"बात कहने के लिए आप मुझे अभय दे चुके हैं। कहने की ही अनुमति चाहती हूं। असत्य होती तो मैं कहने ही न आती।

"पृथ्वीनाथ! नगर में जो महामारी फैल रही है, वह मलया ने फैलाई है। मलया का एक रूप राक्षसी रूप है। रात में वह राक्षसी बनकर बातायन पर खड़ी हो जाती है और मन्त्र पढ़-पढ़ कर चारों ओर कुछ फेंकती है। उसी से महामारी फैल रही है।"

"असंभव।" राजा सुरपाल बोले—"तुम झूठ कहती हो। मलया राक्षसी नहीं हो सकती।"

"मैं मलया के बारे में झूठी बात क्यों कहूंगी?" अनंगवती ने राजा से ही प्रश्न किया—"मैंने आज तक उसके बारे में कुछ क्यों नहीं कहा?

"राजन्! आज रात को आप जागकर देखें। मैं तो रोज देखती हूं। जब

आधी रात का गजर बजे। उसके बाद देखना आप कि मलया के महल के वातायन में क्या हो रहा है। अपनी आंखों से देख लेंगे, तब तो मानेंगे।

"आप मानें या न मानें आपकी इच्छा है। जो व्यक्ति अपना होता है, अपनत्व के कारण उसके दूषण भी भूषण बन जाते हैं। मलया आखिर आपकी पुत्रवधू है। मैं फिर भी गैर हूं। आप मेरी सही बात को गलत समझें यह उचित ही है।"

यह कह अनंगवती मौन हो गई। राजा सुरपाल सोचने लगे—'मलया जादू तो जानती है। वह स्त्री से पुरुष बनना भी जानती है। यहां भी पहले सुन्दरसेन बनकर आई थी। अनंगवती ठीक कहती है कि अपनत्व के कारण दूषण भी भूषण बन जाते हैं। लेकिन मैं राजा हूं। राजा को न्याय के लिए अपनत्व का बलिदान कर देना चाहिए। यदि मलया राक्षसी सिद्ध हुई तो इसका वध ही करूंगा। इतनी सारी प्रजा महामारी की चपेट में आये और मैं राक्षसी पुत्रवधू को अपनत्व के कारण छोड़ दूं? ऐसा नहीं होगा। महाबल के तो सैकड़ों विवाह हो जाएंगे।'

राजा अपने विचारों में मौन था और अनंगवती अपने कथन का प्रभाव देखने के लिए मौन खड़ी थी। राजा को मौन देख वह चलने को हुई तो राजा बोले—

"ठहरो देवी! मैं आज रात को आऊंगा। मैं स्वयं देखूंगा मलया की करतूत। लेकिन यह बात तुम और किसी से मत कहना कि मलया राक्षसी है और उसी ने महामारी फैलाई है। सत्य होने पर मैं मलया को प्राणदण्ड ही दूंगा।"

"मैं किसी से नहीं कहूंगी राजन्!" अनंगवती बोली—"आपका, राज्य का और अपना भला-बुरा मैं भी जानती हूं।"

× × ×

अनंगवती ने राक्षसी बनने के साधन पहले ही जुटा लिये थे। युवराज्ञी मलया-सुन्दरी का जो विशाल शयनकक्ष था, उसी कक्ष में—कक्ष की छत के नीचे एक कोठरी बनी थी। कोठरी किस उद्देश्य से बनवाई गई थी, यह तो मालूम न था, पर कोठरी बनी थी। उसमें एक ही तख्ते का एक कपाट था, जिस पर ताँबे का पत्तर चढ़ा था। उसमें दो चारपाई की जगह थी। अनंगवती ने राक्षसी बनने का सब सामान उसी में रख लिया था।

रात को जब मलया अपनी शय्या पर लेटी तो अचला-चपला नाम की दोनों दासियां मलया के पैर दबा रही थी। मलया ने दोनों से कहा—

"क्यों मेरी आदत बिगाड़ती हो? तुम दोनों जाओ।" तभी आई अनंगवती ने कहा—"मुझे मलया बेटी से कुछ बात कहनी है।"

आखिर तो अनंगवती रानी थी। उसके कहने में आदेश का रूखापन रहता था। उसके कहने से अचला-चपला सहम गईं और उठकर बाहर चली गईं। उनके जाने के बाद अनंगवती ने मलया से कहा —

"मलया, तू सो जा। अब आधी रात का गजर बजेगा, तभी राक्षसी आयेगी। आज मैं उसे हमेशा के लिए भगा दूंगी। तू उसे देखने की कोशिश मत करना। उसकी परछाईं भी तेरे गर्भ का अनिष्ट कर सकती है। हाँ, जब जरूरत समझूंगी, तब मैं तुझे जगा लूंगी।"

मलया को नींद तो नहीं आई, पर उसने आँखें बन्द कर लीं और नवकार मन्त्र का जप करने लगी। जप करते-करते उसे नींद आ गई और वह सो गई।

अब अनंगवती कोठरी में घुसी। उसने वस्त्र उतारे और अपनी देह को काले रंग में रंग लिया। मुँह पर जहाँ-तहाँ सिंदूर के टीके लगाये। गले में कौड़ियों की माला पहनी। उसने घुटनों तक घाँघरी पहनी जिसमें घोड़ी की पूँछ के बाल लगे थे। एक हाथ में जलती हुई मशाल ले ली और एक हाथ में सरसों ले ली। पूरी तरह तैयार होकर वह आधी रात के गजर का इन्तजार करने लगी।

उधर महाराज सुरपाल भी अपने कुछ सुभटों के साथ आगकर आधी रात के गजर का इन्तजार कर रहे थे। आधी रात का गजर बजा। महाराज सुरपाल मलया के कक्ष की ओर देखने लगे। थोड़ी ही देर बाद उन्होंने सचमुच एक राक्षसी को नृत्य करते देखा। एक राक्षसी घुटनों तक घाँघरी पहने चक्करी दे रही थी। वह एक हाथ से मशाल घुमा रही थी और एक हाथ से चारों दिशाओं में कुछ फेंक रही थी।

राक्षसी को देख सुरपाल ने क्रोध से दाँत पीसे और उनके साथ जो दो सुभट थे, उन दोनों से ही कहा —

"सुभटो! मैं युवराज्ञी के भवन की ओर जा रहा हूँ। तुम दोनों एक रथ लेकर वहाँ पहुँचो।"

यह कह राजा सुरपाल मलया के भवन की ओर चले। राक्षसी बनी अनंगवती ने देखा कि महाराज इधर आ रहे हैं तो वह वातायन से कूदकर मलया की शय्या के पास आई और उसे जगाकर बोली—

"मलया बेटी, राक्षसी को मैंने भगा दिया है। वह अब कभी यहाँ नहीं आयेगी। तेरे श्वसुर यहीं आ रहे हैं। वे मुझे इस दशा में देखेंगे कि तो जाने क्या सोचेंगे। देख, मैं कोठरी में जाती हूँ। तू बाहर से सांकल लगा दे। जब वे चले जाएँ तो सांकल खोल देना।"

यह कह अनंगवती कोठरी में घुस गई। मलया ने बाहर से साँकल लगा दी और वह द्वार की ओर गई। उसने भी देखा कि उसके श्वसुर इधर ही आ रहे हैं। थोड़ी ही देर में राजा सुरपाल मलया के पास आ पहुँचे। उसे देख वे मन में सोचने लगे—'जिसे मैं सौम्य, शीलवती और सन्नारी समझता था, वह कितनी मायाविनी है! कुछ देर पहले यह भयंकर राक्षसी थी और अब कितनी सुन्दर लग रही है! आज तो इसने महामारी फैलाई है, कल यह मेरे परिवार को ही खा जाएगी। इसका तो वध ही उचित है।'

"पिताजी! आप विराजिए। मध्यरात में आपका आगमन कैसे हुआ है?" मलया ने बड़ी विनम्रता से कहा—"खड़े क्यों हैं? उनका कोई समाचार आया है? पल्लोपति का दमन करने उनको गए आज पच्चीस दिन हो गए।"

मलया की इस विनम्रता ने राजा सुरपाल पर उल्टा प्रभाव डाला। इसे क्या कहूँ, कैसे कहूँ, वे यह सोच ही रहे थे कि दोनों सुभटों ने आकर कहा—

"अन्नदाता रथ! तैयार है।"

"अच्छा।" सुभटों से इतना कह महाराज सुरपाल ने अपने क्रोध को दबाकर मलया से प्यार की भाषा में कहा—

"बेटी मलया! रथ तैयार है। तुझे इसी समय वन में जाना है। ये दोनों सुभट तेरे साथ जावेंगे। तेरी वनयात्रा कारण का ये सुभट तुझे वन में ही बता देंगे। मैं इतना भर बताता हूँ कि तेरी यह वन यात्रा प्रजाहित, परिवारहित और स्वहित में है।"

"माता-पिता, गुरु और स्वामी की आज्ञा का पालन कारण जाने बिना ही करना चाहिए।" मलया बोली—"मैंने तो अभी तक यही जाना है कि बड़ों की अहितकारी आज्ञा में भी छोटों का हित छिपा होता है। मैं वनयात्रा को प्रस्तुत हूँ।"

यह कह मलया रथ में बैठ गयी। दोनों सुभटों से महाराज सुरपाल ने अलग से कुछ कह दिया। दोनों सुभटों ने एक सारथी की जगह बैठकर रथ हाँकने लगा। दूसरा उसी के पास बैठ गया। मलया रथ में पीछे बैठी। रथ के जाने के बाद महाराज सुरपाल ने मलया के भवन को अच्छी तरह बन्द करवा दिया।

आधी रात बीतने के पाँच घड़ी बाद रथ मलया को लेकर वन को चला था। रात भर रथ चला और छिन्न नामक वन में पहुँचा तो रात्रि का चौथा प्रहर शुरू हो गया था। सवेरा होने में थोड़ी ही देर थी। सुभटों ने रथ रोक दिया और कहा—

"युवराजी! आप रथ से नीचे उतरें। इस वन का नाम छिन्न वन है।"

"मुझे यहाँ क्यों लाया गया है?" मलया ने पूछा—"मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है।"

"हमें तो कुछ समझने का अधिकार भी नहीं है।" एक सुभट ने कहा—"समझें तो हम भी कुछ नहीं हैं। हमें तो महाराज का यह आदेश मिला है कि हम यहाँ वन में आपका वध कर दें।"

यह सुन मलया हँसने लगी। हँसते-हँसते बोली—

"मृत्यु मेरी सखी है। मैं उसका स्वागत करूँगी। कर्मों का ऋण इसी तरह चुकाया जाता है। मेरे मन में किसी के प्रति द्वेष नहीं है। मैं शरीर नहीं हूँ। मैं किसी की पुत्री, किसी की पत्नी और किसी की कुछ नहीं हूँ। मैं अजर अमर आत्मा हूँ। आप राजाज्ञा का पालन कीजिए। मैं यह जानना भी नहीं चाहती कि मेरा वध आप क्यों करेंगे, क्योंकि मूल कारण तो कर्मबंध है, जिसका रहस्य केवली ही जानते हैं।"

यह कह मलया आँखें बन्द कर नवकार मन्त्र का ध्यान करने बैठ गई। एक सुभट ने दूसरे से कहा—

"पाप-पुण्य का फल राजा को मिलेगा। हमें तो अपना काम करना है। तुम खड्ग लो और मलया का सिर अलग कर दो।"

"हाँ, वध तो मैं कर दूंगा।" दूसरे सुभट ने पहले से कहा—"पर पहले इसे ध्यान पूरा कर लेने दो। जैसे ही इसका ध्यान पूरा होगा, मैं इसका वध कर दूंगा।"

[ ]

२६

"फाड़ा फूटा और पीर गई।" रानी पद्मावती ने अपने पति से कहा—"देखने में कैसी सुशील लगती थी। पर कैसी राक्षसी निकली, पूरे नगर को ही महामारी से खाये जा रही थी।"

"मैं मलया का वध न कराता तो यह महामारी कभी दूर न होती।" महाराज सुरपाल ने रानी पद्मावती से कहा—"मलया के वध को तीन दिन ही तो हुए हैं। उसके जाते ही महामारी दूर हो गई। अब नगर में कितनी शान्ति है।"

"यह बात तो सभी कह रहे हैं।" रानी बोली - "कि युवराजी राक्षसी थी, उसके जाते ही महामारी भी चली गई।"

"इस सब का श्रेय लोभसार की पत्नी को है।" महाराज सुरपाल बोले—"उसी ने तो बताया था कि हमारी पुत्रवधू मलया राक्षसी है। लेकिन वह गई कहाँ! आज तीसरा दिन है। लोभसार की पत्नी कहीं दिखाई नहीं दे रही। मैं उसे पुरस्कार देना चाहता था।"

"कहीं गई होगी। आ जाएगी।" रानी बोली "मेरी समझ में एक बात आती है। मलया की करतूत उसके पिता राजा वीरधवल को बता देनी चाहिए।"

"क्या लाभ होगा ?" राजा सुरपाल बोले—"मलया के पिता ने भी उसका वध करा दिया था। वह तो जाने कैसे कैसे बच गई ?"

"वह तो उस पर झूठा आरोप था।" रानी बोली—"बाद में सब बातें स्पष्ट हो गई थीं। मलया के पिता राजा वीरधवल भी अघाकर पछताये थे।"

"तुम्हारा मतलब है, मैंने भी उस पर झूठा आरोप लगाकर उसका वध कराया है ?" राजा सुरपाल बोले—"मैंने तो अपनी इन आँखों से उसे राक्षसी के रूप में देखा है।"

राजा सुरपाल ने अपनी आँखों की ओर उँगली से संकेत करते हुए कहा था, 'अपनी इन आँखों से'। अपनी बात पूरी करके वे कलेवा करने लगे। मलया के वध को हुए तीसरे दिन प्रातः राजा-रानी बैठे ये बातें कर रहे थे। जब राजा सुरपाल ने दूध का कटोरा खाली करके रखा, तभी प्रतिहार ने आकर संदेश दिया—

"पृथ्वीनाथ ! युवराज पल्लीपति को पराजित कर आ गए हैं। वे आधी रात के लगभग नगर के निकट पहुँचे थे। नगर से तीन कोस दूर उनका पड़ाव पड़ा है। अभी उनका संदेश आया है।"

"अच्छा, महाबल आ गया !" राजा ने पुलकित होकर कहा—"जाओ, महाप्रतिहार से कहो राजभवन में युवराज के स्वागत की तैयारी करें। महामात्य से कहो, नगर को सजाएँ।"

महाबल के स्वागत में नगर सज गया। वह पल्लीपति को परास्त करने घोड़े पर गया था और और घुड़सवार सेना ही ले गया था। राजा सुरपाल का आदेश था कि महाबल का नगर-प्रवेश हाथी पर होगा, अतः महामात्य ने महाबल के पड़ाव पर पाँच हाथी भेज दिये।

दोपहर बाद महाबल ने गाजे-बाजे के साथ पृथ्वीस्थानपुर में प्रवेश किया। ज्यों-ज्यों नगर निकट आता जाता था, वह मलया के बारे में कल्पना करता जाता था। 'जब माँ आरती करने आयेगी तो मलया माँ के पीछे खड़ी होकर मुझे देखेगी। पहले कुछ तड़पायेगी-तरसायेगी, तब कहीं सामने आयेगी। छिपकर तड़पाना खूब जानती है मलया। पर मलया जब अकेले में सामने आयेगी तो दौड़कर लिपट जाएगी। पर अब कहाँ दौड़ पायेगी ? अब तो वह गर्भभारालसा है—पाँव भारी है उसका। यह भी कैसा सांकेतिक नाम पुराने लोगों ने रख दिया है कि गर्भवती को भारी पाँव की कहते हैं।'

पृथ्वीस्थानपुर के राजमहालय के कलश दूर से ही चमक रहे थे। नगर का प्रवेश द्वार आ गया। स्वागत कर्ता स्वागत को खड़े थे। स्वयं महाराज सुरपाल

महाबल की अगवानी करने आये थे। महाबल के संकेत पर महावत ने हाथी बैठाया। हाथी से नीचे उतर महाबल ने पिता के पैर छुए। पिता ने उसे वक्ष से लगाकर सिर पर हाथ रखा। महाबल पुनः हाथी पर चढ़ा। महावत ने हाथी आगे बढ़ाया। आगे-पीछे बाद्य बजते जाते थे। छतों पर खड़ी पुरनारियाँ महाबल पर पुष्प वर्षा कर रही थीं। राजपथ से होता हुआ महाबल का गज राजमहालय के विशाल अजिर में पहुँचा। रानी पद्मावती सुहागिन नारियों के बीच में थाल लिये खड़ी थी—आरती का थाल। महाबल ने चारों ओर दृष्टि घुमाई पर उसे मलया नहीं दिखी। सोचा—'अपने महल में होगी। गर्भभार के कारण वहाँ तक न आ पाई होगी।' फिर मलया की दोनों दासियाँ अचला-चपला को देखा तो महाबल का माथा ठनका—'मलया अकेली अपने भवन में कैसे होगी? उसकी दासियाँ तो यहाँ हैं। हाँ, उसके पास उसकी विमाता अनंगवती होगी। अनंगवती तो यहाँ नहीं है।'

महाबल हाथी से नीचे उतरा। रानी ने आरती उतारी और अक्षत फेंके। महाबल रानी के पैरों पर गिर पड़ा। रानी ने पुत्र को वक्ष से लगाया। महाबल लपककर मलया के भवन की ओर गया। उसके भवन पर ताला लगा देख वह सिहर उठा और जोर से चीख पड़ा—

"मलया कहाँ हो? क्या तुझे फिर किसी संशय के नाग ने डस लिया?"

"मलया अब नहीं है।" पीछे खड़ी रानी पद्मावती ने कहा। "उसे भूल जाना होगा।"

महाबल ने माँ की ओर देखा और उसकी आँखें भर आईं। भरी आँखों से महाबल ने अपना सिर मलया के भवन से दे मारा। माथे से रक्त बहने लगा। पास खड़ी दासियाँ हाय-हाय कर उठीं। रानी को चीख निकल गई। उन्होंने महाबल को सम्हाला। महाबल को अपनी जंघा पर सिर रखकर लिटाया। राजा सुरपाल दौड़े आये। मंत्री आदि भी आ गए। इसे सब कुछ बताना ही ठीक होगा। यह सोच राजा सुरपाल कहने लगे—

"तुमने जिस मलया के लिए अपने माथे का रक्त बहाया है, उस मलया ने कइयों का रक्त पिया है। वह राक्षसी थी। उसने महामारी फैलाई थी। मैंने स्वयं अपनी इन आँखों से उसका राक्षसी रूप देखा था। वह तो भला हो लोभसार की पत्नी का, जिसने मुझे समय पर चेता दिया। वरना मलया तुम्हें, मुझे—सबको खा जाती।"

"तो लोभसार की पत्नी ने आपको सब कुछ बताया था?" महाबल उठकर बैठा हो गया—"आप नहीं जानते उस लोभसार की पत्नी को। वह नकली तो आपके समधी, राजा वीरधवल की पत्नी अनंगवती है। वह लोभसार की रखैल बनी थी, पत्नी नहीं।

"पिताजी ! लक्ष्मीपुंज हार की आड़ लेकर रानी अनंगवती ने उसके पिता द्वारा भी उसका वध कराया। उसके पुण्य शेष थे, जो वह पातालकूप में गिरकर भी बच गई। यह सब इतिवृत्त मैंने आपको सुनाया था। अनंगवती मलया की सौतेली माँ है।"

"क्या कहते हो तुम ?" राजा सुरपाल जैसे आकाश से गिरे—"तुमने पहले क्यों नहीं बताया ?"

रानी पद्मावती का हृदय धड़कने लगा—"फिर तो मलया निर्दोष थी।"

महाबल ने मलया के भवन को खोला। उसकी शय्या के पास पहुँचा कि शायद वह कुछ लिखकर रख गई हो। तभी रानी अनंगवती ने अपनी कोठरी के कपाट को भीतर से थपथपाया। उसे आभास हो गया था कि भीतर कोई आया है। महाबल ने लपककर दरवाजा खोला तो देखकर अवाक् रह गया। काले रंग से पुती अनंगवती कोठरी में बैठी थी। तीन दिन की भूखी-प्यासी अनंगवती बोल नहीं पाई, उसने संकेत से पानी माँगा। महाबल बाहर गया और एक दासी से बोला—

"झारी में पानी लेकर आओ। एक पात्र में दूध भी लेती आना। और हाँ, महाराज को यहीं भेज देना। माँ महारानी को साथ लायें। जल्दी करना।"

थोड़ी ही देर में महाबल के सब आदेशों का पालन हो गया। पानी और दूध पीकर अनंगवती कुछ जाग्रत हुई तो महाबल ने माता-पिता से कहा—

"यह है राक्षसी। आपने इसी को अपनी इन आँखों से देखा था, पिताजी ! और समझा यह कि मलया राक्षसी है।"

क्रोध में राजा सुरपाल ने अनंगवती के बाल पकड़ लिये—

"क्यों री नकटी ! मलया ने तेरा क्या बिगाड़ा था ? तू तो कहती थी कि आधी रात के बाद मलया राक्षसी बनती है। तू राक्षसी क्यों बनी थी ?"

अनंगवती राजा के पैरों में गिर पड़ी। उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। महाराज बोले—

"दुष्टे ! तू अब मेरे राज्य में नहीं रहेगी। इसी समय मेरी आँखों से दूर हो जा।"

महारानी पद्मावती को तो इतना क्रोध आया कि उन्होंने अनंगवती के मुँह पर थूक दिया। अनंगवती पहले महल और फिर नगर से बाहर कर दी गई। अब राजा सुरपाल गिड़गिड़ाये और महाबल से बोले—

"पुत्र ! मैं बहुत बड़ा पापी हूँ। सातों नरकों में से मुझे किसी भी नरक में स्थान नहीं मिलेगा। मलयाघात, फूलघात, गर्भघात, राज्यघात इतने घात किये हैं मैंने।

अनंगवती का दोष नहीं, दोष मेरा है जो मैं उसके जाल में फँस गया और अपनी बहू का वध करवा दिया। मुझे क्षमा कर दो बेटे!"

वह कह राजा सुरपाल महाबल के पैरों पर गिरे कि महाबल उछलकर पीछे हट गया और पिता के पैर पकड़ बोला--

"आप क्यों दुखी होते हैं पिताजी! सारा दोष मेरे कर्मों का है। मैं तिल-तिल कर मलया की याद में घुलूँगा। जहाँ कहीं सहा जाएगा तो प्राणान्त कर दूँगा।"

महाबल मलया की शय्या पर ही लेट गया। सब उसके पास बैठ गए। माँ ने महाबल से कुछ खाने का आग्रह किया तो महाबल ने कह दिया—

"भूखा कौन रह सकता है माँ? जब भूख लगेगी तो माँग कर खा लूँगा। जब मलया मेरी भूख चीटा देगी तो मैं अवश्य खा लूँगा। वह मेरी भूख ले गई है। मलया स्वर्ग में होगी। अब तो मुझे वह परलोक में ही मिल सकती है।"

महाबल की कातर बातें सुन रानी मुँह फेरकर रोने लगी। फिर आँसू पोंछ कर बोली—

"मलया, तेरी ही क्यों सभी की भूख ले गई है। जब तक तू नहीं खाएगा, कोई नहीं खाएगा।"

पूरे राजभवन में शोक था। दास-दासियाँ सब मौन हो गए। कोई किसी से नहीं बोलता था। जैसे-तैसे दिन बीता। रात बीती। सवेरे उठकर महाबल ने पिता से कहा—

"पिताजी! उन दोनों सुभटों को मेरे साथ भेज दो, जिन्होंने मलया का वध किया था। मैं छिन्न वन में जाकर वह स्थल ढूँढूँगा, जहाँ उनका वध हुआ है। मलया जानती थी कि इस स्थान पर महाबल अवश्य आएगा। वह मेरे लिए अपना कुछ संदेश छोड़ गई होगी।"

"मलया का वध करने के बाद दोनों सुभट पन्द्रह दिन का अवकाश लेकर कहीं चले गए हैं।" राजा बोले—"उनको लौट आने दो।"

महाबल ने आठ दिन तक कुछ नहीं खाया। पानी भर पी लेता था। माता-पिता के अत्यधिक आग्रह पर उसने दूध पिया। वह किसी से बोलता तक न था। उसका अभिन्न-मित्र - दुख-सुख का साथी मंत्रिपुत्र गुणशेन भी वहाँ नहीं था। वह अपनी ससुराल गया था। महाबल की दीन दशा देखकर दास-दासियाँ तक रो पड़ते थे। पन्द्रह दिन बीत गए। महाबल ने सुना कि दोनों सुभट आ गए हैं तो उसका दुख कुछ कम हुआ। उनके आते ही महाबल ने पूछा—

"मलया ने मेरे लिए कुछ कहा था? कुछ तो अवश्य कहा होगा?"

"हाँ कहा था युवराज !" एक सुभट बोला—"युवराजी ने कहा था कि आप उन्हें भूल जाएँ और किसी राजकन्या से दूसरा विवाह कर लें।"

"यह कहा था मलया ने ?" महाबल ने साश्चर्य कहा—"क्या वह मेरी प्रतिज्ञा को भूल गई थी, जो उसने ऐसा कहा ? मैंने उसके सामने ही तो प्रतिज्ञा की थी कि मलया मैंने मुनि महाराज के समक्ष नियम लिया है कि मैं दूसरा विवाह स्वप्न में भी नहीं करूँगा। मेरे हृदयासन पर एकमात्र मलया रहेगी।"

"हमें अभय मिले तो एक बात कहूँ।" वही सुभट पुनः बोला – "हमने भी एक अपराध किया है।"

"जब मैंने अनंगवती तक को अभय दे दिया तो तुम्हें क्यों न दूँगा ?" पास ही बैठे राजा सुरपाल ने कहा—"अभय देता हूँ। निर्भय होकर अपना अपराध कहो।"

"हमने राजाज्ञा का उल्लंघन किया है।" सुभट बोला—"युवराजी ने एक साध्वी की तरह हमें देशना दी। फिर अरिहन्त प्रभु की शरण ली और कहा कि मेरा वध करो। हम युवराजी का वध न कर सके। हमें लगा कि मलयासुन्दरी निर्दोष है। राजाज्ञा के उल्लंघन के लिए हमें प्राणदण्ड मिलेगा तो सहर्ष स्वीकार करेंगे, पर युवराजी का वध नहीं करेंगे।"

"तुमने तो पुरस्कार का काम किया है।" यह कह महाबल ने सुभट को वक्ष से लगा लिया। राजा सुरपाल कहने लगे—

"तुम दोनों कितने अच्छे हो ! आज मुझे तुम दोनों महाबल से भी दूने प्रिय लग रहे हो। मैं तुम्हें मुँहमाँगा पुरस्कार दूँगा। जल्दी नहीं है। सोच-समझ कर माँगना। तुम दोनों सैनिकों को लेकर छिक वन जाओ और पूरा वन, आस-पास के गाँव, खेत-खलिहान सब छान डालो। मलया को ढूँढकर लाओ।"

"मैं भी तुम दोनों के साथ चलूँगा।" महाबल बोला—"क्या पता फिर उसे किसी अजगर ने अपना ग्रास बनाया हो। मैं ही उसे बचाऊँगा।"

"नहीं, मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी।" महारानी पद्मावती बोली—"बहू को खोकर तो पाना चाहती हूँ, पर तुम्हें पाकर कैसे खो दूँ। तुम चले जाओगे तो मैं जीवित नहीं रहूँगी।"

"आप कहीं न जाएँ युवराज !" सुभट बोले—"हम जल्दी ही युवराजी को लेकर लौटेंगे।"

महाबल मान गया। जीवित रहने के लिए उसे आशा का सहारा मिल गया। जीवन में यदि आशा न हो तो दुःखों के बोझ को कौन उठा सकता है ? राजा सुरपाल ने दोनों सुभटों के साथ पर्याप्त सैनिकों को मलया की खोज में चारों दिशाओं में भेज दिया।

२७

एक महीना बीत गया। मलया की खोज में गए सैनिक लौट आये। मलया का कहीं पता नहीं चला। अनुमान प्रमाण से यही निश्चित माना गया कि मलया को कोई हिंसक जीव खा गया। अब तो महाबल के हाथ से आशा का सहारा भी गया।

महाबल ने माता-पिता से अनुमति माँगी—

'मुझे भी मलया को ढूँढने की अनुमति दीजिए। यदि वह जीवित होगी तो मैं पाताल से भी ढूँढ लाऊँगा।"

"जीवित होती तो वह सैनिकों को ही क्यों न मिलती?" राजा सुरपाल बोले—"उसके मिलने की कोई संभावित जगह सैनिकों ने नहीं छोड़ी। अब तो हमें सन्तोष ही करना पड़ेगा।

"बेटा! एक बात मैं तुमसे कहना चाहता हूँ। धीरज से सुनना। तुमने दूसरा विवाह न करने की प्रतिज्ञा मलया के जीते-जी की थी। यदि मलया होती तो तुम्हें दूसरा विवाह नहीं करना चाहिए था। पर अब बात दूसरी है।"

"अब भी वही बात है पिताजी!" महाबल बोला—"मलया न सही, उसकी स्मृति तो है। जब मलया ही साथ न दे सकी तो दूसरी क्या साथ देगी? मैं दूसरा विवाह नहीं करूँगा।"

इसी बीच राजा को पता चला कि कोई वृद्ध निमित्तज्ञ आये हैं। राजा ने उन्हें भवन में ही बुलवा लिया। रानी उन्हें पहचानने की कोशिश कर रही थी कि निमित्तज्ञ उनसे बोला—

"आप भूल गईं महारानी? मैं वही निमित्तज्ञ हूँ जो कुमार के जन्म के समय आया था।"

"हाँ याद आया।" महारानी पद्मावती बोली—"आपने ही यह बताया था कि हमारी पुत्रवधू का नाम सिंह राशि पर होगा। आपकी बात सही निकली। मलया की राशि सिंह है। अब तो हम बहुत दुःखी हैं। मलया का कुछ पता नहीं चल रहा।"

"इस समय आप किसी एक प्रश्न का फल पूछ सकती हैं।" निमित्तज्ञ बोला—

"कुछ ही क्षणों में लग्न बदलने वाली है। मलया से सम्बन्धित प्रश्न अभी पूछ लीजिए।"

"अब तो आप यही बताइए कि मलया जीवित है या नहीं।" रानी पद्मावती बोली—"साथ में यह भी बताइए कि वह कहाँ है, जिससे हम उसे ला सकें।"

निमित्तज्ञ ने प्रश्न लग्न का विचार कर काले पत्थर की पट्टी पर गणित किया। काफी देर गणित करने के बाद उसने प्रस्तर पट्टिका को उलट कर रख दिया। फिर रानी से कहा—

"आप किसी फूल का नाम बताइए।"

रानी ने किंशुक के फूल का नाम लिया तो निमित्तज्ञ ने पट्टिका को उलट कर दिखाया—

"देखिये, क्या लिखा है? किंशुक का फूल यद्यपि असंभावित फूल था। फिर भी मैंने लिख दिया था कि आप ढाक के फूल का नाम लेंगी। ढाक और किंशुक एक ही बात है।

"महारानीजी! यह दशा आपके अनुकूल है। फल यह है कि मलया जीवित है। वह कहाँ है, यह तो नहीं बताया जा सकता, क्योंकि उसकी दशा मंगल की चल रही है। मंगल उसे इधर-से-उधर घुमाता फिर रहा है। अभी वह ठीक ठिकाने पर नहीं है।"

"फिर यही बता दीजिए कि वह कब तक मिल जाएगी।" रानी बोली—"वह स्वयं आयेगी या उसे लेने जाएँगे या उसका संदेश आयेगा?"

"इस समय और प्रश्न जानना ठीक नहीं है।" निमित्तज्ञ बोला—"फल यही नहीं आयेगा। इतना जानना पर्याप्त है कि वह जीवित है।"

"अब तो मैं ही उसे खोजने जाऊँगा।" महाबल बोला—"मलया जीवित है तो वह मुझे अवश्य मिलेगी। मैं उसे लेकर ही आऊँगा।"

न चाहकर भी रानी पद्मावती और राजा सुरपाल ने महाबल को जाने की अनुमति दे दी। वन में जहाँ मलया को छोड़ा गया था, वहाँ तक के लिए महाबल ने दोनों सुभटों को साथ लिया। दोनों सुभट जिस रथ में बैठाकर मलया को ले गए थे, उसी में नवकार मन्त्र का सुमिरन कर महाबल बैठा।

छिन्न वन में रथ उस स्थान पर रुका, जहाँ मलया को उतारा था। रथ से नीचे उतर महाबल ने सुभटों से कहा—

"यहीं मलया ने नवकार का ध्यान किया था? उसने तुमसे क्या कहा था? तुम कहते थे, उसने तुम्हें देशना दी थी। क्या देशना दी उसने? देशना तो साध्वी

दिया करती हैं। आदि से अन्त तक मुझे पूरी बात समझाकर एक बार फिर कह दो। मलया की बातें मैं बार-बार सुन चुका हूँ; फिर भी तृप्ति नहीं होती।"

यह कह महाबल एक प्रस्तर पर बैठ गया। दोनों सुभट भी उसके सामने बैठे। उनमें से एक बोला —

"युवराजी के वध का काम मुझे ही सौंपा गया था। मेरे हाथ में खड्ग था। वे ध्यान करने बैठ गई थीं। मैंने सोचा कि जब उनका ध्यान पूरा हो जाएगा, वे आँखें खोलेंगी, तभी मैं हृदय पर पत्थर रखकर और आँखें बन्द करके राजाज्ञा का पालन करूँगा।

"युवराज! मैंने बहुतों के सिर काटे हैं और बड़ी बेदर्दी से काटे हैं। पर युवराजी का सिर काटने का स्मरण कर मैं काँप उठा था। मुझे पसीना आ गया था। उनके मुखमण्डल पर अपूर्व तेज था। उनका तेज मेरी शक्ति को क्षीण कर रहा था। मैं उनके सामने से उठकर अलग बैठ गया और अपने साथी से कहा कि वध तो हम दोनों को ही करना था। तू ही यह काम क्यों नहीं करता? उस पर यह बोला —मैं यहाँ तक सारथी बना। रथ हाँककर लाया। एक काम मैंने कर दिया अब दूसरा तू कर। वध के लिए यहाँ तक लाना भी तो एक काम था। अच्छा बाबा मैं ही कर दूँगा, मैंने अपने इस साथी से कहा था—वध तो मुझे युवराजी का करना है। पर यहाँ तो दो वध एक साथ होंगे। युवराजी गर्भवती हैं। उनका गर्भस्थ शिशु भी तो मारा जाएगा।

"युवराज! मैं अलग बैठा अपने साथी सुभट से ये बातें कर रहा था कि युवराजी ने ध्यान पूरा कर आँखें खोलीं और मुझे पास आने का संकेत दिया। मैं बैठ गया तो वे बोलीं—

"हे अरिहंत प्रभो! मुझे यह बल दो कि मैं अपने दुःख का दोष किसी और को न दूँ। मेरे मन में कहीं भी यह भाव न रहे कि मेरे श्वसुर दोषी हैं, जो बिना कारण बताये, वे मेरा वध करा रहे हैं। परभव में भी इस सत्य को न भूलूँ कि अपने दुःखों का कारण हम स्वयं ही हैं। बाहरी कारण तो बहाने के लिए होते हैं।

"मैंने पूछा युवराजी! ऐसा कैसे हो सकता है, जो दूसरे आपको दुःख दें, वे दोषी नहीं हैं?

"मेरे यह पूछने पर युवराजी कहने लगीं कि दूसरों को दोष देने से तो उल्टे पाप कर्म का बंध होता है। दुःख का कारण दोष है। जब दुःख अपना है तो दोष भी अपना ही है। यह कैसे हो सकता है कि दूसरा अधिक भोजन करे और पीड़ा हमारे उदर में हो?

"युवराज! यह थी युवराजी की देशना, जो मैंने सुनी, मेरे साथी ने सुनी।

वे साध्वी नहीं थीं। हाँ, वेश से साध्वी लगती थीं; पर उनकी वाणी साध्वी की वाणी थी। इसीलिए मैंने कहा कि उन्होंने देशत्याग दी।

"बस, मैंने खड्ग फेंक दिया और कहा--आप निर्दोष हैं। मैं आपका वध नहीं करूँगा। राजाज्ञा-उल्लंघन के बदले में मुझे प्राणदण्ड मिलता हो तो मिले।

"फिर मेरे साथी ने कहा कि युवराज्ञी, हम आपको वापिस नहीं ले जा सकते। इतना कठोर तो हमें विधाता ने बनाया है। आप कहीं चली जाएँ। अब सवेरा होने को है। हिंसक जीव रात में ही विचरण करते हैं। आप चली जाएँ।"

"फिर वह किधर गई थी?" युवराज महाबल ने कहा--"जहाँ तक तुमने उसे जाते देखा है, वहाँ तक साथ चलो।"

सुभटों ने संकेत से बताया कि इस ओर गई थीं। गर्भभार से वह चल कहाँ पाती थीं? कुछ दूर जाकर वह बैठ गई थीं।

"तो अब मैं उसकी खोज में भटकूँगा।" महाबल बोला--"तुम रथ वापस ले जाओ। मेरे माता-पिता से कहना कि महाबल-मलया साथ लौटेंगे। यदि मलया नहीं मिली तो महाबल भी नहीं लौटेगा।"

यह कह महाबल चल दिया और रथ के पास खड़े दोनों सुभट उसे जाते देखते रहे। रथ के घोड़े हिनहिनाये, मानो कह रहे हों, हमें छोड़कर क्यों जाते हो? हमें भी साथ ले चलो। जिस रथ में सिद्धार्थ --तथागत गौतम बैठे थे उनके उतरने के बाद उनके रथ के घोड़े भी हिनहिनाये थे। राजा को उतार कर लौटने के बाद उनके रथ के घोड़े भी हिनहिनाये थे। पशुओं में भी विकल्प अपनत्व होता है। आज की तरह महाबल ने कभी रथ को खाली नहीं लौटाया था। यह दुःख उसके घोड़ों को भी था।

महाबल दिनभर चला। सन्ध्या को एक सरोवर के निकट उसने रात बिताने का निश्चय किया। खाने को वन में सिवा फलों के और क्या मिलता? उसने दोपहर को कुछ फल खाकर ही क्षुधा तृप्त कर ली थी। सन्ध्या को कुछ नहीं खाया।

इसी तरह महाबल वन-वन भटकता रहा। कभी जंगल में ग्वाले मिल जाते तो उनकी रोटियाँ भी खा लेता। वे लोग उसे दूध भी पिला देते। मलया शायद किसी गाँव में हो, यह सोच महाबल वन के निकटवर्ती गाँवों में भी रह जाता। इसी क्रम में महाबल तारिका के गाँव पहुँच गया। वह तो तारिका को नहीं पहचान पाया, पर तारिका ने उसे पहचान लिया और बोली--

"आपने मुझे नहीं पहचाना?"

"आज तो मैं अपने आप को भी नहीं पहचानता।" महाबल बोला--"मेरी पहचान तो वह ले गई।"

"तो तुम इन्हें पहचानती हो तारिका !" पास ही बैठे तारिका के पति कंचन ने पूछा—"कौन हैं ये ? राजकुमार से लगते हैं ।"

अपने गाँव के निकट वन में कंचन अपनी भेड़-बकरियाँ चरा रहा था । तारिका रोटियाँ लेकर आई थी । तभी तारिका ने महाबल से बात की थी । कंचन के पूछने पर तारिका महाबल के बारे में बताना चाहती थी कि वह बोला—

"बाद में बताना तारिका कि ये कौन हैं ? पहले इन्हें कुछ खिला दें । ये कोई भी हों, इस समय तो हमारे मेहमान हैं ।"

"मेहमान तो घर आता है भाई !" महाबल बोला—"इस वन में जैसे तुम वैसा मैं ।"

"तुम मेरे घर ही तो आये हो भाई !" कंचन बोला—"जहाँ घरवाली और घरवाले दोनों हों, वही स्थान घर होता है । घर का मतलब मकान थोड़े ही है । साथ रहने की भावना का नाम घर है । अच्छा, तुम हमारी रोटियाँ खा लोगे ! हम लोग गड़रिये हैं ।"

"रोटी का सम्बन्ध भूख से है ।" महाबल बोला—"रोटी दो कारणों से खाई जाती है । पहला कारण भूख हो और दूसरा खिलाने वाले में प्रेम हो । यहाँ तो दोनों ही कारण हैं । जहाँ ये दो कारण होते हैं, वहाँ तो जूठा भी खा लिया जाता है । क्या दो प्रेमी एक दूसरे का जूठा नहीं खाते । प्रेम और आतिथ्य की संस्कृति में जाति तो भाग ही जाती है । क्या राम ने शबर जाति की महिला शबरी के बेर नहीं खाये थे । फिर हमारी जाति तो एक है । तुम भी मानव, मैं भी मानव ।"

"पर तुम्हारा रंग तो गोरा है ।" तारिका ने विनोद में कहा—"और मेरे पति काले हैं । रंग-भेद तो है ही ।"

"भेद तो बुद्धि में होता है । सत्य में कोई भेद नहीं होता ।" महाबल ने भी हँसकर विनोद के लहजे में कहा—"तुम्हारी सफेद बकरी भी सफेद दूध देती है और काली भी सफेद दूध देती है । आत्मा दूध है । हम दोनों काले-गोरे हैं, पर आत्मा में तो कोई भेद नहीं है । आत्मा में तो स्त्री-पुरुष, युवा-वृद्ध का भी भेद नहीं होता । भेद बच्चे करते हैं । एक ही मिट्टी के दो खिलौनों को भेद करके बच्चे कहते हैं कि यह हाथी है और यह घोड़ा है । पर कुम्हार तो जानता है कि न हाथी है, घोड़ा है । दोनों खिलौने मिट्टी हैं ।"

"अतिथि के स्वागत में रोटी के साथ दूध भी होना चाहिए ।" कंचन ने तारिका से कहा—"मेरा लोटा लेकर तू दूध काढ़ ले । देख दूध काली बकरी का मत काढ़ना । सफेद का भी नहीं, तू लाल बकरी का दूध काढ़ना । आज यह भी देखें कि लाल बकरी का भी दूध सफेद होता है कि नहीं ।"

कंचन की यह बात सुनकर तारिका और महाबल दोनों हँसे बिना न रह सके ।

महाबल और कंचन साथ-साथ खाने बैठे। जब महाबल खा रहा था तो तारिका ने अपने पति से कहा—

"मैंने आपको अपने पिछले जीवन की जो घटनाएँ सुनाई थीं, उन्हीं में से एक यह थी कि रानी अनंगवती मुझे छोड़कर मगधा वेश्या के यहाँ चली गई थी। वन में भागते हुए ये मुझे मिले थे। तब इनके पास सुन्दरसेन नाम का एक युवक और था। इन्होंने मुझे बताया था कि हम परदेशी हैं। रास्ता भूल गए हैं। तभी मैंने इनको देखा था।"

"अच्छा तो तुम अनंगवती की दासी तारिका हो!" महाबल ने कहा था—"अनंगवती तो मगधा के यहाँ भी नहीं रही। वह लोभसार चोर के पास पहुँच गई। फिर वह राजा सुरपाल के यहाँ रही। वहाँ भी वह नहीं रह पाई। अब कहाँ है, यह कोई भी नहीं जानता।"

"वह ऐसे ही भटकेगी।" तारिका बोली—"उसने राजकुमारी मलया को बहुत सताया था; यहाँ तक कि उसे पिता के हाथों मरवा दिया था।"

"कोई किसी को नहीं मरवाता तारिका!" महाबल ने कहा—"जीव अपने कर्मों से ही मरता और जन्म लेता है।"

"पर तुम अनंगवती के बारे में सब कुछ कैसे जानते हो?" तारिका ने पूछा—"क्या तुमने भी उसे देखा है?"

"मेरे यहाँ आने का निमित्त भी वही बनी है।" महाबल बोला—"उसे धर्म की शरण मिले यह मेरी चाह है।"

यह कह महाबल ने अपना असली परिचय दे दिया कि वह महाबल है और मलया को ढूँढ रहा है। उसने अपने विवाह और मलया के वध की समस्त बातें कंचन और तारिका को विस्तार से बता दीं। अनंगवती के बारे में भी फिर विस्तार से बताया।

महाबल रात को कंचन के यहाँ ही ठहरा। तीन दिन वह उसके गाँव में रहा फिर आगे चल दिया। तारिका को उसने बहन माना और बहन तारिका ने महाबल के लिए कुछ मोदक बाँध दिये—

"जब तक ये मोदक रहें, फल मत खाना। जब राजकुमारी मिल जाए तो कभी इधर आना।"

"तुम सदा सुखी रहो, तुम्हारे भाई की।यही इच्छा है।" चलते समय महाबल ने कहा—"तुम पति-पत्नी का प्रेम देखकर बड़ी खुशी हुई है। लेकिन दोनों यह याद रखना कि सुख धर्म में है, संसार में नहीं। संसार को कर्मभोग समाप्त करने का साधन मानते रहकर धर्म को पकड़े रहना।"

यह कह महाबल चल दिया। मलया को ढूँढ़ने का उसका वही क्रम चलता रहा—चलता रहा—वन-वन भटकने का काम।

□

२८

राजा सुरपाल के सुभट तो मलया को छोड़कर चले गए। वह आगे बढ़ी, धीरे-धीरे चली। चलते-चलते थक गई तो बैठकर सुस्ताने लगी। इस तरह वह वन-वन कितनी भटकी, कितने दिन चली, इसे कहना ही व्यर्थ है। आगे की बात यहाँ से शुरू होती है, जब वह चलते-चलते गिर पड़ी और मूच्छित हो गई।

मलया को मूच्छित देख उसके परमहितैषी और उसी के सहोदर पुण्योदय की प्रेरणा से एक संन्यासी आये। उन्होंने अपने कमण्डलु से जल के छींटे दिये और उसे होश में ले आये। मलया ने आँखें खोलीं तो साधु को पास बैठे देखा। साँवला-सा रंग था उनका। अग्निपुंज से गैरिक वस्त्र पहने थे स्वामी असीमानन्द सरस्वती। यही नाम था, उन कृशकाय तपस्वी का। बगल में मृगचर्म था। एक हाथ में दण्ड और दूसरे में कमण्डलु। फिलहाल दण्ड-कमण्डलु—दोनों धरती पर रखे थे। मलया ने आँखें खोलकर साधु के हाथ जोड़े और बोली—

"पाप-पुण्य की यह कैसी आँख-मिचौनी है बाबा, कि मैं मरते-मरते भी बच जाती हूँ ?"

"ये दोनों अपना खेल खेलते हैं तो तुम्हें अपना खेल खेलना चाहिए बेटी !" तपस्वी ने कहा—"हम लोग तो कर्म राजा के अधीन यंत्रवत् हैं।

"पुत्री ! किसी भी विषय का क्या परिणाम होगा, यह सोचकर काम करने से दुःखों से छुट्टी मिल सकती है। जो ठोकरें खा-खाकर बार-बार ठगा जाकर भी नहीं सीखता, उसके दुःख का निवारण कौन कर सकता है ? तुम्हें जो ठोकर लगी है, वह कुछ सीखने के लिए ही तो लगी है। जो जागता हुआ भी सो रहा हो, उसे कौन जगा सकता है ? पुनः संसारागमन न हो, बार-बार आकर पुनः यन्त्रणा न भोगनी पड़े, उसी का उपाय करना जीवन की सार्थकता है।"

"ठीक है बाबा !" मलया बोली—"मैं उपाय करूँगी। पुनः संसारागमन न करना पड़े, इसका उपाय तो चारित्र की दीक्षा है। मैं दीक्षा ही लेनी चाहती हूँ। पहले पिता ने वध करवाया तो मैं बच गई। अब श्वसुर ने प्राणदण्ड दिया तो भी बच गई। ऐसी परिस्थिति में दीक्षा लेना ही उचित है।"

"नहीं बेटी, नहीं।" स्वामी असीमानन्द बोले --"दीक्षा का सम्बन्ध परिस्थिति से नहीं, वैराग्य से है। परिस्थितियों से ऊबकर, संघर्ष की क्षमता खो देने पर दीक्षा लेना तो पलायन है। दीक्षा का सम्बन्ध तो वैराग्य से है, प्रतिबोध से है। दीक्षा एक संस्कार है जो बहिर्मुखता से अन्तर्मुखता की ओर ले जाता है। अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाता है, वैराग्य की सुदृढ़ नींव पर ही दीक्षा का भव्य भवन खड़ा होता है। बिना वैराग्य के त्याग नहीं टिकता है।

"उठो बेटी! यहां बहुत पास ही मेरा आश्रम है। कुछ दिन रहना। फिर तुम जहां कहोगी, मैं तुम्हें पहुंचाने की व्यवस्था करूंगा। तुम अपने घरवालों का पता-ठिकाना बता दो तो उन्हें यहीं बुलवा लूंगा।"

"मेरा घर लौटना और घरवालों का यहां आना-- दोनों ही असंभव है बाबा!" मलया ने कहा "घरवालों के लिए तो मैं मर चुकी हूं। अब तो आप ही का सहारा है। आपबीती मैं आश्रम चलकर ही बताऊंगी। फिर तो आप भी मान लेंगे कि मैं यहां से कहां जाऊं?"

"सहारा तो भगवान का है बेटी!" स्वामी असीमानन्द बोले---"हम वैदिक संन्यासियों के लिए भगवान का सहारा है और श्रमण धर्मावलम्बियों के लिए धर्म का सहारा होता है। तुम्हारे मुंह से नवकार मंत्र का अस्फुट स्वर सुनकर मैं समझ गया था कि तुम श्रमण धर्म को मानने वाली हो। पूर्ण निष्ठा और पूर्ण श्रद्धा हो तो धर्म सच-मुच ही कल्पवृक्ष है।"

मलया स्वामीजी के साथ चल दी। थोड़ी दूर चलने के बाद आश्रम आ गया। ताड़ के पत्तों और फूस के झाजन से दो कुटीर बने थे। उन पर बेलें छाई थीं। तुलसी के दस-बीस पौधे थे। दो पेड़ केलों के थे। आश्रम के ऊपर छायादार वृक्ष भी थे और कुछ दूर ताड़-खजूर के चार-पांच वृक्ष थे। कुश के आसन और कुश की शय्या भी थी। थकी-हारी मलया शय्या पर लेट गई। तपस्वी उसके लिए फल लेने चले तो बोले --

"बेटी, मैं पहले तेरे लिए कुछ फल लेकर आता हूं। फिर बैठकर तेरी कष्ट-कहानी सुनूंगा।"

मलया ने लेटे-लेटे ही मौन स्वीकृति दे दी। दो घड़ी बाद तपस्वी फल लेकर लौटे। मलया फल खाने से पहले बोली--

"ये तो बहुत हैं। मैं क्या अकेली ही खाऊंगी? आप भी खाइए।"

"नहीं बेटी, तू खा।" तपस्वी बोले—"मैं तो हवा-पानी का भोजन करता हूं। पन्द्रह दिन पहले कुछ फल खाये थे। अब शरीर और जल के आधार पर है। आज कुछ फल नहीं लूंगा, कल ग्रहण करूंगा।"

मलया कुछ कहती कि एक गिलहरी आई, और एक फल लेकर भाग गई। बाबा हँसे और बोले—

"ये गिलहरियाँ तेरी सहेलियाँ हैं। इन्हें खिलाकर नहीं खाओगी तो ये छीन कर खायेंगी। संध्या को यहाँ मोर-मोरनी, कबूतर और तोते आ जाते हैं। सब पक्षी परिवार के से हो गए हैं।"

"इनके साथ रहने से मेरा मन बहल जाएगा।" मलया बोली।

फिर मलया ने अपने विगत जीवन की सब बातें बताईं। सुनकर स्वामी जी कहने लगे—

"मैंने तुझे देखकर ही जान लिया था तू बड़े घर की लक्ष्मी है।" स्वामी जी बोले—"तू तो बहुत धैर्य वाली है। धर्म तेरे रोम-रोम में बसा है। तेरा पति तुझे मिलेगा। तेरे श्वसुर ने तेरे वज्र का कारण तुझे नहीं बताया, वह भी कर्म-लीला का कोई रहस्य है। लेकिन अन्त में वे भी पछतावेंगे। जब पाप उदय में आते हैं तो अपना पिता भी यमराज बन जाता है। तेरे पिता राजा वीरधवल बने ही थे। पर जब संचित पुण्य उदय में आता है तो सर्प भी पुष्पमाल बनते देखा गया है।"

स्वामी असीमानन्द साठ वर्ष के वृद्ध तपस्वी थे। इसी वन में विहार क्रम में आये उन्होंने निर्ग्रन्थ मुनियों से भी सत्संग किया था। निर्ग्रन्थ मुनियों की तपश्चर्या की कठोरता से वे प्रभावित हुए थे। मुनियों के साथ स्वामी असीमानंद का जो सत्संग हुआ था, उसके प्रभाव से उन्होंने धरती के भीतर रहने वाले कन्द-मूलों का परित्याग कर दिया था। केवल वन के फल ही लेते थे। स्वामी जी ने मलया के उदर को देखते ही जान लिया था कि यह गर्भवती है, इसीलिए सोचा कि इसके पास कोई महिला होनी चाहिए। पता नहीं कब प्रसव वेदना होने लगे। 'ओह नारी कितनी महान् है! वह जिस पुरुष को जन्म देती है, वही पुरुष उसे सताता है।' यह सोच तपस्वी ने एक निःश्वास छोड़ा और वन में जा एकान्त में ध्यान करने लगे।

संध्या को तपस्वी असीमानंद आश्रम में आये तो उनके हाथ में कुशों की शय्या थी। आते ही बोले—

"हरे कुश काटकर तेरे लिए यह शय्या बनाई है। जब मैं अपने गुरु के आश्रम में था तो मैं 'कुशल' कहलाता था। जो कुश काटने में योग्य होता है, उसी को कुशल कहते हैं। पर अब तो कुशल का अर्थ ही बदल गया है। किसी भी कार्य में योग्य को अब कुशल कहते हैं। अब तो हर काम करने वाला कुशल कर्मी हो सकता है। पहले कुश काटने वाला ही कुशल होता था। तो बेटी, मैं गुरु के आश्रम से कुश काटकर शय्याएँ बनाया करता था। कुछ गायें चराते थे। सबका काम बँटा था। आश्रम में एक ही ढंग की शय्या थी। दूसरी टूट चुकी थी, वह तुझे लेटने को दे दी। अब वह

नई तेरे लिए है। साधु के लिए यह नियम है कि वह स्त्री की शय्या पर भूलकर भी न लेटे। अब तू पुरानी कुश शय्या को फेंक देना।

"मैं भी कैसा हूँ कि शय्या पुराण ले बैठा। जो बात कहना चाहता था, वह तो रह ही गई। कल मैं प्रातः अँधेरे में ही गाँव चला जाऊँगा। तेरा साथ देने के लिए कोई महिला आऊँगा। कुछ अन्न भी ले आऊँगा।"

दूसरे दिन सवेरे उजाला होने से पहले ही स्वामी जी गाँव को चले गए। उन्होंने गाँव वालों को सारी परिस्थिति बताई तो एक चौधरी ने कहा—

"उस बेटी को यहीं ले आते तो उसे यहाँ कोई असुविधा न होती।"

"यहाँ गाँव में आकर वह नहीं रह सकती, इसके एक नहीं अनेक कारण हैं।" स्वामी जी बोले। "वह अपना परिचय गुप्त रखना चाहती है। यहाँ तक वह चल भी नहीं सकती थी।"

बस फिर किसी ने कुछ नहीं कहा। अधेड़ उम्र की एक महिला उनके साथ आने को तैयार हो गई। उसका कोई नहीं था। पाँच बच्चे हुए, वे सब मर गए थे। पति भी मर चुका था। गाँव में मजूरी करके वह अपना पेट भरती थी। वह स्वामी जी के साथ चली आई। गाँव वालों ने गुड़, सोंठ, घी, आटा, दाल-चावल काफी रख दिया था और अपना एक आदमी भी साथ कर दिया।

मलया ने देखा कि बाबा के साथ सिर पर पोट रखे एक आदमी आ रहा है। एक महिला भी है, उसके हाथ में भी एक पोटली है। मन-ही-मन सोचने लगी मलया—'तपस्वी बाबा कितने परोपकारी हैं! मेरे संचित पुण्य ने इन्हें मेरा पिता बना दिया। ऐसे लोग पृथ्वी पर सभी हो जाएँ तो मुझ-जैसी मलयाओं को कष्टों में बड़ा सहारा मिले।'

गाँव के व्यक्ति ने पोट नीचे रखी। महिला उसके पास आ बैठी। अभी संकोच था। दोनों में से कोई नहीं बोली। मलया ने ही पूछा—

"क्या नाम है दीदी?"

"गोदा।" महिला बोली—"मेरा नाम गोदा है। वैसे नाम तो गोदावरी था। पर गाँव वालों ने बिगाड़ कर गोदा कर दिया। गाँव वाले तो अच्छे-भले नाम को भी बिगाड़ देते हैं। तुम्हारा नाम क्या है?"

"मेरा नाम मलया है।" मलया ने कहा—"तुम्हारे गाँव वाले मेरा नाम क्या कर देते?"

"तुमको सब मल्लो कहते।" गोदा बोली—"कोई मलया भी कहता, क्योंकि

तुम्हारा नाम छोटा है। मलया कहने में कोई असुविधा भी नहीं है। गोदावरी बड़ा था, गोदा छोटा हो गया।"

"पर मैं तो तुम्हें दीदी कहूँगी।" मलया बोली—"तुम मुझसे बहुत बड़ी हो।"

"जो चाहो सो कहना।" गोदा बोली—"कौन-सा महीना है?"

"अभी तो आठवाँ चल रहा है।" मलया ने बताया—"पन्द्रह दिन बाद नौवाँ शुरू हो जाएगा।"

"लड़का होगा।" गोदा बोली—"बाबा ने मुझे रास्ते में बताया था कि तुम राजा की बेटी हो।"

"बेटी किसी की भी हो, बड़ी विवश होती है।" मलया बोली—"राजा की हो या रंक की, बेटियाँ सभी एक हैं। तभी तो तुम मेरी दीदी हो।"

"अरे तुम दोनों तो बड़ी जल्दी घुल-मिल गईं!" तपस्वी बाबा ने पास आकर कहा—"लगता है जाने कितनी पुरानी पहचान है तुम दोनों में। पर बातें करना तो स्त्रियों का स्वभाव होता है। बिना जान-पहचान के भी जहाँ दो स्त्रियाँ होंगी बिना बात किये तो रह ही नहीं सकतीं।"

इतना कह फिर तपस्वी बाबा ने गोदा से कहा—

"गोदा! गाँव से जो हरखू पोट लेकर आया था, वह तो गया। अब तुमको मेरी बेटी की देखभाल करनी है। सूखी लकड़ियाँ रखी हैं। दाल रोटी बना लो। दोनों खा लेना।"

"आपकी बेटी की तो मैं कोई देख-भाल नहीं करूँगी।" गोदा ने आँखें मटका कर कहा—"मैं जो कुछ करूँगी अपनी छोटी बहन के लिए करूँगी। मलया जैसे आपकी बेटी है, वैसे ही मेरी छोटी बहन भी है।"

"इस रक्तहीन सम्बन्ध का बड़ा महत्व है गोदा!" तपस्वी बाबा बोले—"इस सम्बन्ध का महत्व बढ़ेगा, तभी यह सम्पूर्ण जगत एक कुटुम्ब बन जायेगा। धर्म का मूल तत्व यही है कि जीओ और जीने दो, पर अधर्म की भी अपनी शक्ति है। उसी से बचे रहना बहुत है। तुम दोनों ही मेरी बेटियाँ हो। एक कुटीर में अपना अड्डा जमाओ। आज के बाद मैं तुम दोनों के बीच कम रहूँगा। जब मेरी जरूरत पड़े तब मुझे बता देना और बुला लेना।"

गोदा और मलया में बहनापा हो गया। दोनों अभिन्न सखियाँ बन गईं। मलया गोदा के साथ वन में घूमने चली जाती। दोनों बैठकर एक-एक, दो-दो प्रहर तक बातें करतीं। कुछ गोदा कहती तो कुछ मलया कहती। वैसे मलया ज्यादा कहती थी। कभी वह धर्म-चर्चा करती, जो गोदा को बहुत अच्छी लगती थी। कभी हँसी

की बातें होतीं तो दोनों खिलखिला कर हँसने लगतीं। कभी मलया अपनी बातें कहते-कहते रो देती थी तब गोंदा उसे सान्त्वना देती। कभी गोंदा भी यह कहकर रो देती —मैंने पाँच बच्चों को जन्म दिया। पाँचों लड़के थे। एक भी नहीं रहा। पति भी चल बसा।

मलया के दिन बीत रहे थे। उन्हें बीतना ही था।

२९

गोंदा मलया को ज्यादा चलने-फिरने नहीं देती थी। फिर भी मलया गोंदा को साथ लेकर वन का सौन्दर्य देखने आश्रम से कुछ आगे चली जाती।

"गोंदा दीदी! मैं तुम्हारे साथ यहाँ आ जाती हूँ।" एक दिन वन में बैठी मलया ने कहा —"अकेले तो मुझे डर लगता था।"

"तुम तो कई दिन वन में अकेले रही हो मलया! रातों वन में सोई भी हो!" गोंदा ने कहा—"फिर तुम कैसे कहती हो कि अकेले डर लगता था?"

"वह तो मेरी मजबूरी थी गोंदा दीदी!" मलया बोली —"और करती भी क्या? वन में छोड़ी गई थी तो वन छोड़कर कहाँ जाती? वन में जैसे सीता माता को मुनि वाल्मीकि का आश्रय मिल गया था, वैसे ही मुझे स्वामी असीमानन्द सरस्वती के आश्रम में ठिकाना मिल गया। तुम मिल गईं तो दिन जाते मालूम नहीं पड़ते। मैं तो वन को समर्पित ही हो गई थी। कोई जीव खाता तो खा लेता। मैं क्या कर लेती?"

"वैसे इस वन में दूर-दूर तक कोई हिंसक जीव नहीं रहता।" गोंदा ने वन की जानकारी दी— "बाबा के आश्रम के पीछे एक राजमार्ग है, जो रोज तो नहीं चलता, पर कभी-कभार उस पर होकर किसी व्यापारी का सार्थ और किसी राजा की सेना गुजर जाती है। यहाँ वन में सार्थ ठहरते भी हैं। मोर पंख, जड़ी-बूटियाँ आदि लेने वैसे भी लोग आते-जाते रहते हैं। यों आदमियों के आने-जाने से हिंसक जीव दूर भाग गए हैं।"

इस तरह बातें करते, मलया गोंदा के साथ वन का सौन्दर्य देखती। काली पिण्ड वाले तमालों की सघन वृक्षावली मेघ-घटाओं की भ्रान्ति पैदा कर देती थी। आश्रम से थोड़ी ही दूर एक नदी थी, जिसने वन को दो भागों में बाँट दिया था।

नदी से जल भरने गोदा ही जाती थी, पर मलया उसके साथ जाती। नगरों के पक्के घाटों से भली पर अपने प्राकृतिक सौन्दर्य से मण्डित नदी की छटा देखते ही बनती थी। नदी को देख गोदा ने कहा—

"यह नदी निरन्तर बहती रहती है। बहती रहती है। उसके बहने का अन्त कभी होता है मलया बहिन ?"

"हाँ होता है।" मलया ने कहा - "जब यह सागर में मिल जाती है, तब यह स्थिर हो जाती है। यह जीवात्मा भी तो जाने कब से जन्म-मरण की राह में बह रही है—बह रही है। इसे भी शिवपुर में स्थिरता मिलती है।"

"मैं बिना-पढ़ी नारी तेरी बातों को क्या समझूँ मलया ?" गोदा बोली—"मैं तो यह सोच रही हूँ कि आज हम दोनों साथ हैं, फिर जाने कहाँ होंगी ? तुझे तो तेरे पति मिल जाएँगे। वे तुझे ढूंढ़ते हुए यहीं आयेंगे।"

"भाग्य का कुछ पता नहीं गोदा दीदी !" मलया ने एक निःश्वास छोड़ा—"मैं स्वयं तो लौटकर जाऊँगी नहीं। जाऊँगी तो अपने पिता के घर चन्द्रावती नगरी चली जाऊँगी, पर श्वसुर के यहाँ पृथ्वीस्थानपुर नहीं जाऊँगी। मेरा भी आखिर स्वाभिमान है।"

गोदा ने कमर पर जल से भरा घट रखा और मलया उसके पीछे चल दी। एक पेड़ पर मधु का छत्ता देख मलया बोली—

"देख, ये मधुमक्खियाँ अपने लिए कितना परिश्रम करती हैं, पर स्वार्थी मानव उनसे उनका मधु छीन लेता है।"

यों नदी से आश्रम तक आते-जाते मलया पोंसलों में बैठे पक्षिशावकों को चिड़ियाओं द्वारा दाना खिलाते देखती। कहीं देखती गिलहरियाँ बड़ी तेजी से सरपट दौड़तीं और पेड़ों पर चढ़तीं-उतरतीं। मलया और गोदा के चलने की आहट पाकर खरगोश झाड़ियों से निकलकर कान उठाये भागते। बंदर-लंगूर इधर-उधर कूदते-भागते। तरह-तरह के पक्षियों की टी-टी-टुट-टुट, चीं-चीं-कुक-कुक के कलरव और बंदरों की किच-किच तथा लंगूरों की हू-हू से वन गूँजा करता था। इनका यह शोर ही वन की शान्ति का शृंगार था। रंग-बिरंगे पक्षी फुर्र-फुर्र उड़ा करते थे।

गोदा घट लेकर कुटीर में पहुँची। पास के ही दूसरे कुटीर में तपस्वी बाबा खड़े थे। उन्होंने गोदा को अपने पास बुलाकर कहा—

"गोदा आज जंगल में यह एक जड़ी अनायास ही मिल गई। जब मलया बेटी के प्रसव वेदना हो तो इसे उसकी कमर में बाँध देना। प्रसव बहुत आसानी से हो जावेगा।"

"इस जड़ी में ऐसी क्या बात है, बाबा ?" गोदा ने आश्चर्य से कहा—"इसके कमर में बाँधने से ऐसा क्यों होगा ?"

"तू जड़ियों का प्रभाव नहीं जानती बेटी !" बाबा बोले—"धतूरा भी एक वनस्पति है। इसे खाते ही आदमी क्यों मर जाता है ? संजीवनी बूटी से मूर्च्छित व्यक्ति क्यों चैतन्य हो जाता है ?

"बेटी ! जंगल की वनस्पतियाँ—जड़ी-बूटी बड़े चमत्कारी प्रभाव वाली होती हैं। कुछ खाने पर प्रभाव दिखाती हैं तो कुछ स्पर्श से प्रभावित करती हैं। लाजवन्ती जिसे छुई-मुई भी कहते हैं, उंगली का स्पर्श पाकर कैसे मुरझा जाती है।

"गोदा ! वनस्पतियाँ जड़ नहीं हैं। तुम्हारी तरह इनका भी जन्म होता है। कुछ जीव पुण्य तो संचित करते हैं, पर किसी दुष्कर्म से वनस्पति का जन्म पा जाते हैं। पुण्यों के प्रभाव से ऐसी वनस्पतियाँ चमत्कारी प्रभाव रखती हैं। तुम भले ही विश्वास न करो, पर पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष बनाने वाली जड़ी भी होती है। ऐसी भी जड़ी है, जिसको चावल के माँड़ में घोलकर पैर के तलवों पर लेप कर दो तो मनुष्य उड़ने लगता है। पर ऐसी वनस्पतियाँ प्रायः कम दृष्टिगोचर होती हैं। वे कभी-कभी नक्षत्र-विशेष में प्रकट होती हैं। अब तो तू इस जड़ी का प्रभाव देखना। मलया के भाग्य से दिखाई दे गई तो मैं उसे उखाड़ लाया।"

गोदा ने प्रसवनी जड़ी सम्हाल कर रख ली। इसके बाद आठ दिन और बीते। आखिर वह दिन आ ही गया, जिसको आना था। मलया ने पुकारा—"गोदा दीदी, मुझे सम्हालो, मैं मरी जा रही हूँ।"

गोदा ने मलया को भीतर कुटीर में लिटा दिया। रात के अन्तिम प्रहर का समय था। गोदा ने मलया की कमर में तपस्वी बाबा की दी हुई जड़ी बाँध दी थी, फिर भी वेदना तो हुई ही—असह्य वेदना। ढाई घड़ी के बाद मलया ने पुत्र को जन्म दिया। जैसे प्रभात के रवि का रंग होता है, वैसा ही रंग मलया-नंदन का था। मलया ने शिशु पर दृष्टि डाली तो अपना दुख-दर्द भूल गई। गोदा ने सफाई कर दी। बच्चे को स्नान करा दिया। बैठी-बैठी गोदा सोहर गाने लग गई। वह ताली बजाती जाती थी और गाती जाती थी। मलया अतीत की यादों में खो गई। प्रभात हो गया था। पक्षी चहक रहे थे। मलया सोच रही थी—'आज ये पक्षी ही जन्म के गीत गा रहे हैं। पृथ्वीस्थानपुर में होता तो मेरे पास कितनी दासियाँ होतीं। अंचला-चपला तो तुरन्त ही पुरस्कार माँग लेतीं। पर अब गोदा को क्या दूँ ? मेरी उँगली में अँगूठी है—उनके नाम की अँगूठी। इसे ही दे दूँ। राजकुमार झोपड़ी में जन्मा है। पर कृष्ण भी तो बन्दीगृह में जन्मे थे। वे होते तो कितने प्रसन्न होते।'

सोचते-सोचते मलया की आँखों में आँसू आ गए। गोदा ने देखा तो बोली—

"हर्ष के समय दुःख के आँसू मत लाना बहन ! तुम्हारा दूसरा जन्म हुआ है। पति के प्रेम की स्मृति के रूप में तुम्हारे पास यह शिशु लेटा है।"

गोदा फिर दूसरे कामों में लग गई। उसने घी-गुड़-सौंठ का घोल गरम करके मलया को पिलाया। तपस्वी बाबा ने बाहर से ही आशीर्वाद दिया। दिन बीता। रात भी बीती। बीस दिन-बीस रातें बीत गए। मलया स्वस्थ थी। उसके स्तनों में भरपूर दूध उतरता था। फिर भी वह कोई काम नहीं करती थी। गोदा उसे कुछ करने ही नहीं देती थी।

एक दिन मलया ने पूछा—

"दीदी ! तुम यहाँ कब तक रहोगी ?"

"चालीस दिन पूरे हो जाएँ। फिर मैं चली आऊँगी।" गोदा बोली—"बाबा कह रहे थे कि वे तुम्हें तुम्हारे पिता के पास पहुँचा देंगे।"

"हाँ, अब तो हम दोनों को ही बिछुड़ना है।" मलया बोली—"पर तुम्हें कभी भूलूँगी नहीं। मैं कभी अपने यहाँ तुम्हें बुलाऊँ तो आओगी ?"

"मेरा मन तो अब भी तुम्हारे साथ जाएगा।" गोदा बोली—"मेरा-तुम्हारा पिछले जन्म का कोई सम्बन्ध था, जो यहाँ वन में मिलीं।"

"बाबा का भी मुझसे कुछ नाता रहा होगा।" मलया बोली—"उन्होंने कितना किया है मेरे लिए ! मैं उनकी तपश्चर्या में कुछ बाधक ही बनी। मुझे यहाँ से चले ही जाना चाहिए। गोदा दीदी ! मेरी एक बात मान लेना। ना मत करना। कुछ गलत भी मत समझना।"

गोदा मलया के मुँह की ओर देखती रही कि मलया जाने क्या बात मनवाने को कहेगी। तभी मलया ने धीरे-से अपनी उंगली में से अँगूठी निकाली और गोदा के हाथ पर रख दी—

"इसे ले लो। मन नहीं मानता कि तुम्हें खाली हाथ भेजूँ।"

"मैं क्या अभी जा रही हूँ।" गोदा बोली—"यह तुमने क्या किया ?"

"कुछ नहीं किया मैंने।" मलया बोली—"बस रख लो। नहीं तो मेरा दिल टूट जाएगा।"

गोदा ने मलया की दी हुई अँगूठी रख ली। ऐसे ही चालीस दिन बीत गए। गोदा को पहुँचाने के लिए तपस्वी बाबा गए। जाने से पहले उन्होंने मलया को बताया—

"बेटी ! मैं गोदा को छोड़कर आता हूँ। आज ही लौट आऊँगा। यहाँ तुझे कोई डर नहीं है। पहले भी मैं तुझे अकेला छोड़कर गोदा को लेने गया था। आज पहुँचाने जा रहा हूँ।"

"इस बार मलया अकेली नहीं है बाबा !" गोदा ने कहा—"इसका बेटा तो पास में है ही। उससे इसका मन लग जाएगा।"

गोदा और मलया गले लगकर मिलीं। मिलकर दोनों ही रोईं। मलयानंदन सो रहा था। सोते हुए शिशु को पुचकार कर गोदा बाबा के साथ चल दी। मलया खड़ी-खड़ी देखती रही। गोदा ने एक बार मुड़कर देखा कि मलया खड़ी है। विदा के क्षण कितने दर्द भरे होते हैं, इसे मलया और गोदा—दोनों अनुभव कर रही थीं।

× × ×

गोदा को उसके गाँव पहुँचाकर तपस्वी बाबा अग्निमानन्द लौटे तो मलया से बोले—

"मलया ! तेरे भाग्य से यह जड़ी मुझे आज रास्ते में मिल गई। इसे अपने पास रख ले। इस सहारे तू अकेली ही चन्द्रावली नगरी जा सकती है।

"बेटी ! इस जड़ी को आम के रस में घोलकर यदि स्त्री तिलक लगाये तो पुरुष बन जाए और यदि पुरुष लगाये तो स्त्री बने। पुरुष का तिलक उसकी पत्नी अपनी जीभ से मिटाये और स्त्री का तिलक उसका पति अपनी जीभ से मिटाये, तो ही दोनों अपने मूल—निज रूप में आ सकते हैं; अन्यथा नहीं।"

जड़ी को हाथ में लेकर मलया सोचने लगी—'ऐसी जड़ी तो मेरे स्वामी के पास भी है। उन्होंने मुझे भी पुरुष बनाया था। फिर सर्प रूप में अपनी जीभ से मिटाया तो मैं सुन्दरसेन से पुनः मलया बनी थी। उन्हें भी एक तपस्वी ने दी थी। वनस्पति जगत का प्रभाव कितना विचित्र होता है !'

"क्या सोच रही है बेटी !" बाबा बोले—"तेरे काम आयेगी यह जड़ी।"

"कुछ नहीं" मलया बोली—"सोच रही थी कि मैं पुरुष बनकर अकेली चली तो जाऊँगी पर पुनः मलया कब बनूँगी। पुरुष वेश में मेरे माता-पिता मुझे पहचानेंगे भी नहीं। वे जाने कब मिलेंगे ?"

"संचित पुण्यों पर भरोसा रखो बेटी !" बाबा बोले—"तुम्हारा कल्याण होगा। तुम्हें क्या पता, क्या जाने तुम्हारा पति तुम्हें ढूँढ रहा हो और वह तुम्हें ढूँढते-ढूँढते चन्द्रावती नगरी गया हो, और वह तुम्हें वहाँ मिल जाए।

"बेटी ! वैसे मैं तुम्हारे साथ चलूँगा। तुम्हारी कुछ व्यवस्था करके ही मुझे संतोष होगा।"

"तो कब चलोगे बाबा ?" मलया ने पूछा—"कल ही चलो।"

"कल नहीं बेटी !" बाबा बोले—"कल बहुत सवेरे मैं एक दूसरी जड़ी की खोज में जाऊँगा। कल सन्ध्या तक तुझे अकेले रहना पड़ेगा। परसों सवेरे यहीं से चल देंगे। वह जड़ी यदि मिल गई तो तू आकाश विहार कर सकेगी।"

३०

मलया का पुत्र दूध पीकर सो गया था। तपस्वी बाबा जाने कब आकाश-गामिनी जड़ी लेने चले गए थे। सूरज की किरणें वन में जहाँ-तहाँ धब्बों की तरह फैल गई थीं। अपने सोते हुए बच्चे पर दृष्टि डालते हुए मलया ने सोचा—'सो रहा है। तब तक मैं नदी से एक घड़ा जल ले आऊँ। जग गया तो इसे लेकर कैसे जाऊँगी। सोता है तो कितना अच्छा लगता है। जब रोने लगता है तो पूरा वन सिर पर उठा लेता है।'

मलया ने घड़ा उठाया और नदी की ओर चल दी। उसने पहले नदी में स्नान किया, कपड़े बदले, भीगी हुई धोती को निचोड़कर कंधे पर डाला और आश्रम को चल दी।

भावी के रहस्य का कुछ पता नहीं चलता। आश्रम के पीछे जो राजमार्ग था, उसमें होकर बलसार श्रेष्ठी का सार्थ गुजर रहा था। जब मलया नदी पर गई तभी यह सार्थ आया था। रात को वन में ही कहीं, बलसार के सार्थ ने पड़ाव डाला था। रथ, छकड़े, गाड़ियाँ—जिनमें ऊँट जुते थे, चले जा रहे थे। बलसार का रथ पीछे था। उसके रथ में उसका एक साथी भी बैठा था।

जब मलया नदी को गई तो उसके जाने के थोड़ी देर बाद ही एक गिलहरी बच्चे के ऊपर होकर गुजर गई। बच्चा जग गया। पास में अपनी माँ को न पाकर बच्चा रोने लगा – जोर-जोर से रोने लगा। बलसार श्रेष्ठी ने बच्चे के रोने की आवाज सुनी तो चौंका। अपने साथी से बोला—

''इस सूने वन में बच्चा रो रहा है। चलो देखें।''

रोने की आवाज को पकड़ बलसार अपने साथी के साथ आश्रम में आ गया। रथ को सारथी के जिम्मे छोड़ दिया। आश्रम में देखा तो कोई नहीं था। अकेला बच्चा हाथ-पैर चलाकर रोये जा रहा था। बलसार ने बच्चा गोद में उठा लिया और बोला—

''मुझ निस्संतान को भाग्य ने कैसा सुन्दर पुत्र दे दिया। इसे ले चलें।''

''इसकी माँ भी यहीं-कहीं होगी।'' बलसार के साथी ने कहा—''बच्चे के लिए माँ प्राण बड़ी आसानी से दे सकती है।''

"तू तो भूखे है पाती !" बलसार के साथी का नाम पाती था—"पाती ! इसकी माँ यहीं-कहीं होती तो इसका रोना सुनकर आ न जाती । फिर आ भी जाएगी तो उसे भी ले चलेंगे ।"

बच्चे को लेकर बलसार ज्यों ही आश्रम से निकला कि मलया ने स्पष्ट देखा, दो व्यक्ति मेरे बच्चे को लिये जा रहे हैं । वह पड़ा उसकी कमर ने नीचे गिरकर फूट गया । वह वहीं से चिल्लाई—

"ठहरो ! मेरे बच्चे को कहाँ लिये जाते हो ?"

बलसार सहम कर ठिठक गया । मलया पास आई और बोली—

"बच्चे को वहीं सुला दो ।"

"अगर बच्चा न दूँ तो ?" बलसार ने इधर-उधर देखकर कहा—"तुम क्या कर लोगी ?"

"मैं तुम्हारा खून पी जाऊँगी ।" मलया चीखी—"मेरा बच्चा मुझे दो ।"

मलया के रूप-सौन्दर्य पर आसक्त बना बलसार कहने लगा—

"धीरज रखो । तुम्हारा बच्चा तुम्हें मिल जाएगा । पर पहले यह बताओ कि तुम हो कौन ? यहाँ अकेली क्यों रहती हो ? तुम्हारे पति ने तुम्हें छोड़ दिया है क्या ?"

"मैं कौन हूँ, इससे तुम्हें कोई मतलब नहीं ।" मलया बोली—"मुझे बच्चा चाहिए ।"

"बच्चे के साथ मैं तुम्हें भी चाहता हूँ ।" बलसार ने ढिठाई से कहा—"तुम कौन हो, मुझे इससे कोई मतलब नहीं । पर तुमको मैं अपने हृदय की रानी हृदयेश्वरी बनाऊँगा ।"

यह कह बलसार चल दिया । मलया उसके पीछे-पीछे भागी । उसने सोच लिया कि मैं अब कुछ नहीं कर सकती । बाण भी यहाँ हैं नहीं । वे संध्या तक लौटेंगे । मैं अकेली अबला कर ही क्या सकती हूँ ? ये दो हैं । बच्चे के साथ जाऊँ तो यह दुष्ट कुचेष्टा करेगा । माँ बच्चे को छोड़ भी कैसे सकती है ? मैं बच्चे को नहीं छोड़ूँगी । इसके साथ जाऊँगी । शासनदेव मेरी रक्षा करेंगे । धर्म मेरा सहारा है । जिस धर्म ने हर संकट से उबारा, वही धर्म अब भी उबारेगा ।"

मलया सोचते-सोचते भागी । बलसार ने मलया को आते देखा तो रुक गया । मलया बोली—

"मेरा बच्चा मुझे दे दो । मैं तुम्हारे साथ चलूँगी । पर मेरी कुछ शर्तें हैं ।"

"मुझे तुम्हारी हर शर्त स्वीकार है ।" बलसार बोला—"बोलो, क्या चाहती हो ?"

मलया बोली—

"एक महीने तक आप मेरा स्पर्श नहीं करेंगे। प्रसव के बाद एक महीने मुझे पुरुष स्पर्श से अलग रहना है। अपने बच्चे को मैं अपने पास ही रखूंगी। रथ में आप मेरे साथ नहीं बैठेंगे।"

"मुझे सब स्वीकार है।" बलसार ने स्वीकृति देने के बाद अपने साथी पाली से कहा— "पाली! इस सुन्दरी का बच्चा इसे दे दो।"

बच्चे को गोद में लेकर मलया रथ तक पैदल चली। फिर वह रथ में बैठ गई। बलसार, श्रेष्ठी और पाली पैदल चले। कोस भर चलने के बाद बलसार को अपना सार्थ मिल गया। सार्थ उसकी प्रतीक्षा में रुका था। बलसार और पाली दूसरे रथ में बैठ गये। रथ में बैठने से पूर्व बलसार ने कंचना नाम की एक दासी को अपने पास बुलाया और समझाने लगा—

"देखो कंचना! रथ में जो सुन्दरी बैठी है, वह तुम्हारी नई मालकिन है। इसकी ऐसी सेवा करना कि वह खुश रहे। इससे मेरी प्रशंसा भी करती रहना। इसका मन मेरी ओर खिंचे, तुम्हें यह प्रयास भी करना है।"

"मैं समझ गई सेठ!" कंचना बोली— "कहां से लाये हो?"

"तुझे इन बातों से क्या मतलब?" सेठ बलसार ने कंचना को हल्की-सी झिड़की दी—"यह सब बाद में जान लेना। एक बात का ध्यान रखना। अपनी सेठानी प्रियंगुसुन्दरी को मत बताना कि सेठ नई सेठानी ले आये हैं। एक तो वह सन्तान के बिना दुःख से वैसे ही दुखी है, सौत के दुःख से और भी दुखी होगी।"

कंचना कूदकर रथ में बैठ गई। मलया के सौन्दर्य को देख वह भी चकित हुई। फिर बोली—

"मैं तुम्हारी दासी हूं। जो भी आज्ञा दोगी, पूरी करूंगी। सागरतिलक में भी सदा तुम्हारे साथ रहूंगी।"

"हमें सागरतिलक नगर जाना है?" मलया ने पूछा—"वहां के राजा तो कंदर्पदेव है?"

"हमारे सेठ भी किसी राजा से कम हैं?" कंचना ने अभी से बलसार की तारीफ करना शुरू कर दिया—"राजा कंदर्पदेव भी इन्हीं से वस्त्र लेते हैं। ये उनके मुंहलगे और खास व्यापारी हैं। सेठ बलसार सागरतिलकनगर के नामी सेठ हैं। इनकी पांच तो हवेलियां हैं। एक हवेली तुम्हें ही दे देंगे।"

मलया कुछ नहीं बोली। वह मनोही-मन सोचने लगी— 'राजा कंदर्पदेव मेरे पिता महाराज वीरधवल और श्वसुर महाराज सुरपाल का पुराना शत्रु है। पर मैं उसे बताऊंगी ही नहीं कि कौन हूं? अपना कल्पित परिचय देकर राजा से बलसार की शिकायत करूंगी। राजा न्यायप्रिय तो होगा ही। कहूंगी, यह दुष्ट मेरा अपहरण कर लाया है। अब कभी सेठ बलसार बाहर जायेगा तो इसी दासी से कहूंगी कि मुझे

राज-दरबार ले चल। इसमें बनाकर रखूँगी। अरे हाँ, मेरे पास तो पुरुष बनाने वाली जड़ी भी है। बाबा ने ठीक कहा था कि तुम्हारे काम आयेगी। मैं इस दासी से आम मँगा लूँगी। उसी के रस में इसको घिसकर तिलक लगाकर पुरुष रूप में भाग जाऊँगी''' ''।'

''क्या सोच रही हैं मालकिन ?'' कंचना बोली—''सागरतिलक बहुत सुन्दर नगर है।''

''मुझे मालकिन मत कहाकर।'' मलया ने कहा—''तू मेरी छोटी बहन है। दीदी कहा कर। मैं भी तुझे दासी नहीं कहूँगी। तेरा नाम क्या है ? मैं तेरा नाम लूँगी।''

''कंचना।'' अपना नाम बताकर कंचना सोचने लगी—'यह तो हृदय की भी बहुत सुन्दर है। कभी इसकी डाँट नहीं खानी पड़ेगी। सेठानी प्रियंगुसुन्दरी तो बड़ी बुरी तरह डाँटती है। चलो अच्छा हुआ, उससे पिण्ड छूटा। मैं इसकी सेवा में रहूँगी। अच्छी मालकिन है, जो मुझे छोटी बहन मानती है।'

+ × +

तपस्वी बाबा स्वामी असीमानन्द सरस्वती आश्रम को लौटे। आकाशगामिनी जड़ी उन्हें नहीं मिली थी। वहाँ आश्रम में मलया भी नहीं मिली। बहुत चक्कर में पड़े बाबा। वन में मलया को ढूँढ़ने पहुँचे कि शायद बच्चे को लेकर कहीं बैठी हो। मलया उन्हें कहीं नहीं मिली। फिर टूटे घड़े पर ध्यान गया। घड़ा कैसे टूट गया ? टूट गया होगा। घड़े तो टूटते ही हैं। घड़े का क्या अस्तित्व ? अस्तित्व मिट्टी का है। मिट्टी घड़ा नहीं है। घड़ा मिट्टी है। फिर घड़े की क्या चिन्ता ? दार्शनिक विचारों में बह गए बाबा। फिर मलया के बारे में सोचने लगे—'सम्भव है मलया का पति अचानक आ गया हो और वह उसी के साथ चली गई हो। पर मेरे आने तक तो उसे पति के साथ रुकना ही था। उसके पति को जल्दी होगी, मलया ने तो रुकने को कहा भी होगा, पर उसके पति ने कह दिया होगा कि बाबा से फिर मिल लेंगे। तपस्वियों से मोह क्यों बढ़ाना। पर मुझे कुछ मोह हो गया था। अच्छा है चली गई। मेरी चिन्ता भी गई।'

तपस्वी बाबा ने मलया के बारे में बहुत तरह के अनुमान लगाये। फिर निश्चिन्त हो गए। जिसने संसार त्याग दिया हो, वह भी यदि निश्चिन्त न होगा तो कौन होगा ?

जिस वन में बाबा का आश्रम था, मलया को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते महाबल वहाँ भी पहुँचा। पर वह आश्रम तक नहीं पहुँच पाया, क्योंकि आश्रम ऐसे अलग-अलग स्थान पर था कि जिसे पहले से जानकारी न हो, वह नहीं पहुँच सकता था। मलया भी वहाँ नहीं पहुँच पाती पर उसे तो बाबा वन में ही तब मिले थे, जब वह मूर्च्छित

पड़ी थी। बाबा ही उसे आश्रम लाये थे। यदि महाबल पहुँच भी जाता तो भी मलया उसे न मिलती, क्योंकि वह बलसार के साथ जा चुकी थी। उसे बाबा मिलते तो क्या बताते महाबल को। वे स्वयं नहीं जानते थे कि मलया कहाँ गई है? मलया को क्या पता था कि जैसे वह भटक रही है, वैसे ही उसका पति भी भूखा-प्यासा वन-वन, गाँव-गाँव भटक रहा है। कोई दूसरे के बारे में क्या जानेगा, जीव अपने बारे में ही कब जानता है कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ और कहाँ जाऊँगा। कोई बताना चाहे तो जीव जानना भी नहीं चाहता। पर जो अरिहंत प्रणीत धर्म की शरण लेते हैं, वे जान लेते हैं, पर ऐसे चरमशरीरी जीव तो हजारों में एक होते हैं। महाबल और मलया भी अपने बारे में नहीं जानते थे कि हम कौन हैं, कहाँ हैं, क्यों हैं, कहाँ से आये हैं और हमें जाना कहाँ है? संसारी जीव की यह विचित्र स्थिति है कि जो सच है, उसे वह देख नहीं पाता और जो निराधार झूठ है, उसे ही सच मानकर कभी हँसता है तो कभी रोता है। सपने में भी तो लोग हँसते-रोते हैं। पर जागने पर सपना कहाँ रह पाता है? नहीं रहता। सपने की याद करके हँसी भी आती है कि किस जंजाल में फँस गए थे। क्या संसार सपना नहीं है? है। पर जब तक हम जागेंगे नहीं, संसार को सच मानकर हँसेंगे, रोयेंगे। महाबल-मलया भी स्वप्न-संसार में अपने बोये हुए फलों का स्वाद चख रहे थे। पर दोनों धर्मी थे, अतः किसी और को दोष न देकर अपने ही कर्म-ऋण को उतारकर प्रसन्न हो रहे थे।

× × ×

बलसार ने नगर से अलग-थलग एक गुप्त भवन में मलया को रख दिया। कंचना उसके साथ थी। भोजनादि की सब व्यवस्था उसने वहीं कर दी। चलते-चलते उसने कंचना से कहा -

"कंचना! तीन दिन मुझे व्यवस्था में लगेंगे। पहले मैं सीधा सेठानी प्रियंगु-सुन्दरी के पास जाऊँगा। फिर चाकरों को गोदामों में सामान रखने पर लगा दूँगा। फिर राजा को भेंट देने जाऊँगा। तीन दिन बाद मैं पूरी फुर्सत में सुन्दरी के पास आऊँगा। एक महीने तक मैं उसकी प्रतीक्षा नहीं कर सकता। तू सुन्दरी को अच्छी तरह समझा देना कि मैं उसके बिना जी नहीं सकता।"

कंचना बलसार की दासी थी। उसी का अन्न-जल खाती थी। वह उसकी हर आज्ञा मानने को बाध्य थी। लेकिन उसकी सहानुभूति मलया के प्रति थी। उसने मलया को समझ लिया था कि वह दृढ़ निश्चयी सती नारी है। लेकिन वह बलसार को नहीं समझा सकती थी कि वह मलया का विचार छोड़ दे। अतः उसने निश्चय किया कि मैं सेठ की हाँ-में-हाँ मिलाऊँगी और किसी तरह मलया को यहाँ से मुक्त कराऊँगी। मलया ने अपना नाम बलसार को नहीं बताया था। वह उसे सुन्दरी नाम से सम्बोधित करता था। कंचना भी उसका यही नाम जानती थी।

कंचना ने सुन्दरी को सब बातें बता दी थीं। यह भी कहा था कि मैं आपकी पूरी मदद करूंगी। आपके साथ चलूंगी। जैसे रखेंगी, रहूंगी। यहां रही तो बलसार सेठ मुझे जीवित नहीं छोड़ेगा। मलया ने अपनी बात कही—

"तुझे लेकर मैं भागना तो चाहती हूं कंचना! रातभर में हम दोनों बलसार की पकड़ से बाहर हो जायेंगी। बता कब चलेंगी?"

"तीन दिन बाद बलसार क्या करेगा, यह देख लें।" कंचना बोली—"हमारे भवन पर अभी तो बाहर पहरा है। मैं किसी युक्ति से यह पहरा उठवाने की कोशिश करूंगी।"

मलया आश्वस्त हो गई। उसके पास उसका पुत्र था। अतः अब उसे भागने में कोई कठिनाई नहीं थी। कंचना का सहयोग भी उसे प्राप्त था। पर यह डर भी था कि यदि भागते हुए पकड़ी गई तो बलसार अपनी दुष्टता से बाज नहीं आयेगा। यह सोच मलया ने जल्दबाजी करना उचित नहीं समझा।

□

३१

सवेरे का समय था। मलया धार्मिक क्रियाओं से निवृत्त होकर बच्चे को स्तन-पान कराने लगी। बच्चा सो गया। उसने बच्चा शय्या पर लिटा दिया और कंचना को बुला अपने पास बैठा लिया। वह कुछ कहना शुरू ही करना चाहती थी कि एक दासी भीतर आई। उसने मलया से कहा कि सेठजी आपसे मिलना चाहते हैं। मलया की स्वीकृति लिये बिना ही दासी बाहर चली गई। वह मात्र सूचना देने आई थी, स्वीकृति लेने नहीं। रथ को द्वार पर रोक बलसार मलया के पास आ गया। आज उसने विशेष वस्त्र धारण किये थे और आभूषण भी पहने थे। मलया के पास आकर उसने कंचना को संकेत दिया—

"तुम बाहर जाओ।"

कंचना बाहर चली गई। मलया भयभीत हो गई। पर उसने अपने साहस को बटोरा और बोली—

"सेठजी! आप मेरे पिता के समान हैं। मुझे कब तक बंदिनी रखेंगे?"

"मैं तो तुम्हें बन्दी बनाने का निश्चय कर चुका हूं सुन्दरी!" बलसार कहता

चला गया—"तुम्हें अपने हृदय-भवन में क़ैदी बनाकर तो रख ही लिया है। अब अपनी बाहों में समेटने आया हूँ। मैं तुम्हारे बिना रह नहीं सकता। मेरा विश्वास करो। मैं तुम पर न्योछावर हूँ। आओ! मेरी बाहों में आओ।"

वह कह बलसार आगे बढ़ने लगा तो मलया दहाड़ी—

"वहीं रहो। आगे बढ़े तो मैं अपनी जीभ खींचकर अपने प्राण दे दूँगी, पर तुम्हें नहीं मिलूँगी। यदि तुम दुस्साहस करोगे तो मेरे शव को ही पा सकोगे।"

बलसार सहम कर पीछे हट गया और बोला—

"मैं तुम्हें मरने नहीं दूँगा सुन्दरी! तुम्हें अपनी भार्या बनाकर ही रहूँगा। आज मैं तुम्हें छोड़ रहा हूँ। तुम्हें छह दिन का समय देता हूँ। छह दिन में अच्छी तरह सोच लो। तुम्हारा हित मेरी बनने में ही है।"

यह कह बलसार चलने को मुड़ा तो उसकी दृष्टि सोते हुए मलयानंदन पर पड़ी। उसने सोचा—'बच्चा इसे बहुत प्यारा है। बच्चे के कारण ही यह मेरे साथ आई थी, वरना कभी न आती। इसके बच्चे को अपने क़ाबू में करूँ तो यह झख मारकर मेरे समक्ष समर्पित होगी।' यह सोच बलसार ने सोते हुए मलया के बच्चे को उठा लिया। मलया अब तक कुछ कर पाती कि उसने कक्ष का द्वार बन्द कर बाहर से साँकल लगा दी। मलया द्वार पीटने लगी। वह रोई-चिल्लाई—

"मेरा बच्चा मुझे दे दो। बच्चे के लिए मैं प्राण दे दूँगी।"

"बच्चा अब नहीं मिलेगा।" बलसार ने कहा—"यह मेरा होकर रहेगा। यदि तुम चाहती हो कि बच्चे के पास बनी रहो तो मेरे सामने समर्पण कर दो।"

"यह कभी नहीं होगा।" मलया ने अपना संकल्प दुहराया—"त्रिकाल में भी मलया पर-पुरुष का स्पर्श नहीं कर सकती।"

बलसार बच्चे को लेकर चला गया और चलते-चलते कंचना से बोला—

"कंचना, संध्या को तू मेरे पास आना। जा, सुन्दरी के कक्ष का ताला लगा कर चाबी मुझे दे। मैंने बाहर से साँकल लगा दी है। वह टेढ़ेपन से ही मानेगी।"

"सेठजी, वह बहुत हठी स्त्री है।" कंचना बोली—"आप उसे कितनी ही यातनाएँ दें, वह कभी नहीं मानेगी।"

"तो तूने अभी तक क्या किया?" बलसार ने अपनी असफलता का आरोप कंचना पर ही लगाया—"पन्द्रह दिन तू कार्ग में साथ रही। तीन दिन से इस भवन में है। अठारह दिनों में तू उसे समझा नहीं सकी?"

"मैंने बहुत समझाया है सेठजी!" कंचना बोली—"अब और कोशिश करूँगी।"

इसके बाद मलया के भवन का ताला लगाकर बलसार बच्चे को लेकर रथ में बैठा। बलसार ने अपने भवन पर रथ रुकवाया। बच्चे को लेकर अपने खण्ड में ऊपर पहुँचा। वहाँ उसकी पत्नी प्रियंगुसुन्दरी बैठी थी। वह सबेरे का कलेवा करने पति की प्रतीक्षा कर रही थी। पति को देखते ही बोली—

"कहाँ चले गये थे ? कितना समय बीत गया.........अरे यह बच्चा किसका है ?"

"तुम्हारा।" बलसार बोला—"भाग्य ने तुम्हारी कोख भले ही सूनी रखी, पर गोद भर दी। देखो कितना सुन्दर है !"

"मैं तुम्हें अच्छी तरह जानती हूँ।" प्रियंगुसुन्दरी कुछ उत्तेजित होकर बोली—"भगवान किसी को भी सार्थवाह की पत्नी न बनाये। व्यापार के लिए ही तुम परदेश नहीं जाते। अपनी रखैलों का मन बहलाने जाते हो। जाने किस रखैल का बच्चा ले आये। मैं क्या पालन करूँ इसका ?"

"ज्यादा अविश्वास भी अच्छा नहीं होता।" बलसार बोला—"मेरा विश्वास करो। मैं सच कह रहा हूँ कि यह बच्चा हमें भाग्य ने ही दिया है। सबेरे मैं प्रातः भ्रमण करने वन की ओर चला गया था। एक वृक्ष के नीचे यह बच्चा रोता हुआ मिला। इसे कौन छोड़ गया था, इससे व्यर्थ में सिर मारने से फायदा ही क्या है ?"

बलसार के कहने का ढंग ऐसा था। कि सेठानी प्रियंगुसुन्दरी ने विश्वास कर लिया और बच्चा लेकर उसे प्यार करने लगी। फिर बोली—

"मैं इसके नाम में अपना और आपका—दोनों का नाम जोड़ूँगी। इसका बलसुन्दर नाम कैसा रहेगा ?"

"बहुत अच्छा सोचा तुमने।" बलसार बोला—"मेरा बल और तुम्हारा सौन्दर्य दोनों इसमें रहेंगे। अब मैं जाता हूँ, इसके लिए धाय का प्रबन्ध करके लाता हूँ।"

"पांच धायों का प्रबंध करना है।" प्रियंगुसुन्दरी बोली—"पर मुख्य धाय तो मैं ही रहूँगी। मेरा बलसुन्दर मेरे घर-आँगन की शोभा और तुम्हारे कुल का दीपक बनेगा।"

बलसार चलने को उठा तो प्रियंगुसुन्दरी बोली—

"मुझे क्यों भूखा मारते हो ? जानते तो हो कि जब तुम यहाँ रहते हो मैं तुमसे पहले कलेवा भी नहीं करती। पहले कलेवा करते जाओ। फिर कहीं जाना।"

बलसुन्दर-मलयानन्दन सेठानी प्रियंगुसुन्दरी की गोद में लेटा-लेटा उसके कानों के ताटंक देख रहा था। दासी कलेवा रख गई। कलेवा करते-करते बलसार बोला—

"प्रिये ! छह दिन बाद मुझे फिर बाहर जाना है।"

"तो आये ही क्यों थे ?" प्रियंगुसुन्दरी बोली—"फिर साल भर की छुट्टी हो गई। अब क्या लाना है, जो बाहर जाना है।"

"तुम तो जानती ही हो कि राजा कंदर्पदेव किसी दूसरे व्यापारी से कुछ नहीं लेते।" बलसार बोला—"राजा का ही कुछ माल लाना है। इस बार समुद्र पार की यात्रा है। तीन महीने में लौट आऊँगा फिर कहीं नहीं जाना।"

बलसार ने कलेवा किया और दुकान पर चला गया। बलसुन्दर के लिए उसने पाँच धायों की नियुक्ति कर दी। बलसुन्दर को अपनाकर वह मलया को भी अपनाना चाहता था और इसी उधेड़-बुन में वह पुनः अपने गुप्त भवन—मलया के पास चल दिया। वहाँ पहुँच कंचना को अपने पास बुलाया तो कंचना ही बोली—

"आपने तो संध्या को मुझे बुलाया था?"

"संध्या तक मैं प्रतीक्षा नहीं कर पाया।" बलसार बोला—"तू मेरी पूरी बात सुनकर मुझे एक वचन दे।

"कंचना ! तू सुन्दरी को समझा नहीं पाई, इसमें तेरा दोष नहीं है। वह हठी स्त्री है, यह मैं मानता हूँ। अब तू मेरा दूसरा काम कर दे। छह दिन बाद मैं समुद्रयात्रा पर जा रहा हूँ। तू सुन्दरी को किसी तरह नौका से मेरे पोत तक ले आ। उसे पोत पर बैठाना तेरा काम है। तू भी यात्रा में उसके साथ रहना। बाकी काम मैं कर लूँगा।"

"इसका मैं वचन नहीं दे सकती।" कंचना बोली—"सुन्दरी कोई बच्चा तो है नहीं, जो उसे मैं गोद में भरकर आपके साथ समुद्रयात्रा में चल दूँ ? वह नहीं आई तो मैं क्या करूँगी ?"

"यह काम तुझे करना ही होगा।" बलसार बोला—"सुन्दरी को साथ लेकर यदि तू समुद्रयात्रा में मेरे साथ चली तो मैं तुझे अपने दासत्व से मुक्त कर दूँगा। तुझे दस लाख स्वर्णमुद्राएँ दूँगा। यह भवन भी तुझे दे दूँगा। फिर तू ठाठ से अपना मुक्त जीवन बिताना।"

बलसार की ये बातें सुनते ही लोभ कंचना के कान में कहने लगा—"कंचना, अपने सुखद भविष्य में ठोकर मत मारना। सेठ को वचन दे दे। मलया के साथ भागने से तुझे क्या मिलेगा ? वह स्वयं ठोकरें खा रही है। तू भी उसके साथ भटकेगी। मलया तुझ पर विश्वास करती है। वह तेरे साथ कहीं भी चली जाएगी। अपने स्वार्थ के लिए तुझे मलया से विश्वासघात करना पड़ेगा, सो कर लेना। इसमें कोई बुराई नहीं है।"

कंचना लोभ की बातों में आ गई। उसने बलसार को वचन दे दिया।

बलसार ने मलया के पुत्र के बारे में भी कंचना को बता दिया। उसे कक्ष की चाबी देकर कहा कि तू सुन्दरी के पास ही रहना। उसे साथ लेकर आना। अब हमारी भेंट बन्दरगाह पर पोत में होगी।"

बलसार चला गया। कंचना ने मलया के कक्ष का द्वार खोला। मलया मूर्च्छित सी पड़ी थी। द्वार खुलते ही वह उठी। कंचना उसके पास बैठ गई और बोली—

"दीदी! रोओ मत। तुम्हारा बच्चा बड़े सुख में है। पाँच धायें उसके लिए नियुक्त की गई हैं। सेठ ने उसका नाम वसुन्दर रखा है?"

"बच्चे के बिना मैं तो सुख से नहीं रह सकती।" मलया बोली "अपने लाल को छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ? उसे छोड़कर कैसे भागूँ।"

"उसे लेकर ही हम दोनों जाएँगी।" कंचना बोली—"छह दिन बाद सेठ समुद्र यात्रा पर निकलेगा। मुझे पता चला है कि वह बच्चे को भी साथ ले जाएगा। हम दोनों उसके साथ जाएँगी। किसी तरह से उससे एक बार अपना बच्चा ले लो। फिर आगे की सोचेंगी।"

"नहीं कंचना! मैं उसके साथ समुद्रयात्रा पर नहीं जाऊँगी।" मलया बोली—"मार्ग में उसने मेरे साथ बल का प्रयोग किया तो मैं समुद्र में कूद जाऊँगी। बच्चा मुझे फिर कहाँ मिलेगा? बच्चा उसके पास है तो बना रहे।"

कंचना चुप हो गई। उसने सोचा, अभी ज्यादा आग्रह करना ठीक नहीं है। सातवाँ दिन आने दो। इसे ले जाऊँगी। सेठ मुझे दस लाख स्वर्णखण्ड देगा।

\+ \+ \+

कंचना अपने विश्वासघात में सफल हो गई। पुत्र का मोह और कंचना का विश्वास—दोनों की प्रबल शक्ति मलया को बलसार के पोत पर चढ़ा ले गई। पोत में ही एक छोटा, किन्तु सजा-सजाया सुन्दर कक्ष था। कंचना और मलया साथ-साथ कक्ष में बिछे गद्दे पर बैठीं। जलपोत बड़ा था। पास में ही बलसार का कक्ष था। मलया को पता चल गया कि यहाँ मेरा कुछ नहीं है—अकेला बलसार है। वह यह भी जान गई कि कंचना ने उसके साथ छल किया है। मलया ने कंचना को फटकारा—

'कंचना! तुझे पता था कि बलसार मेरे पुत्र को लेकर यहाँ नहीं आया है तो तूने मुझसे झूठ क्यों बोला? मैं जानती हूँ कि बलसार तुझे बहुत धन देगा। लेकिन धन तो तभी देगा, जब उसे मैं मिल जाऊँगी? मैंने तुझे छोटी बहन मानकर तेरा विश्वास किया और तूने मेरे साथ विश्वासघात किया?"

कंचना रो पड़ी। वह मलया के पैरों में गिरकर बोली—

"मुझे क्षमा कर दो। तुम सचमुच देवी हो।"

"तेरा कोई दोष नहीं है कंचना ! दोष मेरे कुतकर्मों का ही है, अतः मेरा दोष है।" मलया बोली—"बलसार मेरे साथ बल का प्रयोग करे, उससे पूर्व ही मैं समुद्र में कूद रही हूं। मैं सभी को क्षमा करती हूं और सभी से क्षमा मांगकर जा रही हूं।"

कंचना ने पुनः मलया के पांव पकड़ लिये—

"मैं अब तुम्हारी पूरी मदद करूंगी। समुद्र में गिरना तो अंतिम उपाय है ही। यों प्राण मत दो।"

"अच्छा तू मेरे लिए कहीं से एक कृपाण ला दे।" मलया बोली—"मैं क्षत्राणी हूं। सिंहवधू सिंहनी हूं। आने दे बलसार को। उस शृगाल का मैं चण्डी बनकर रक्त-पान कर जाऊंगी।"

कंचना जहाज में लगी एक पुरानी, किन्तु पैनी कील उखाड़ लाई। उसे कृपाण तो नहीं मिली। वह कील भी भाले के फलक-जैसी थी। वही उसने मलया को दे दी। 'इससे काम चलेगा', कहकर मलया के कृपाण-जैसी कील अपने पास छिपा ली।

आधी रात के बाद जब जहाज के सब कर्मचारी सो गए थे, तब बलसार मलया के लघुखण्ड में आया। पहले की तरह उसने कंचना को बाहर कर दिया। वह मलया से कहने लगा—

"अब मैं तुम्हारी एक भी नहीं सुनूंगा। बोलो, क्या सोचा है?"

"वहीं खड़े रहो।" मलया बोली—"आगे मत बढ़ना।"

बलसार आगे बढ़ गया और उसने बेझिझक मलया का हाथ पकड़ लिया। मलया ने आव देखा न ताव, पूरी शक्ति के साथ बलसार में एक लात मारी जिससे वह गिर पड़ा। उसके गिरते ही मलया ने कटार निकाल कर कहा—

"आज दो में से एक अवश्य मरेगा। या तो मैं तेरा खून पी जाऊंगी या खुद मरूंगी।"

बलसार मलया के प्रचण्ड तेज और सती के बल को देखकर डर गया। अचानक पड़ी लात से वह ऐसा गिरा था कि कुछ चोट भी खा गया। जैसे-तैसे उठकर उसने मलया को चेतावनी दी—

"मैं भी तुझे तड़पा-तड़पा कर मारूंगा। तूने मेरी भलमनसाहत तो देख ली, अब मेरी क्रूरता भी देखना।"

यह कह बलसार अपने लघु कक्ष में चला गया। कंचना पुनः उसके पास आ बैठी। बलसार के आने से पहले भी मलया नवकार मन्त्र जप रही थी। अब पुनः नवकार का ध्यान करने बैठ गई। कंचना चुपचाप लेट गई थी। जब मलया का ध्यान पूरा

हुआ तो मलया ने कंचना को सोते हुए देखा। उसे न जगाकर उसने वातायन से देखा बाहर अंधेरा था। सागर हिलोरें भर रहा था। लहरों की आवाजें आ रही थीं। अभी थोड़ी रात बाकी है, यह सोच मलया भी लेट गई। लेटे-लेटे उसे अपने पति महाबल की स्मृति हो आई। वह उसी की यादों में डूब गई और सो गई। सवेरे उसे कंचना ने जगाया—

"दीदी उठो। सवेरा हुए काफी देर हो गई।"

उठकर मलया नित्यकर्म में लग गई।

× + +

बलसार का जहाज एक टापू पर पहुँचा। चालकों ने लंगर डाल दिये थे। जहाज से उतर कर वह टापू में बसे एक क्रूर सरदार के पास गया। बलसार के मन में अब मलया के प्रति बदले की बैर भावना थी। उसने सरदार से कहा—

"सरदार तुम्हारे लिए ऐसा अनमोल रत्न लाया हूँ कि तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। यदि खरीदने का साहस हो तो देख लो।"

"रत्न मुझे पसन्द आना चाहिए।" सरदार बोला—"मैं तुम्हें मुँहमांगी कीमत दूँगा।"

"पसंद से ऊपर कोई शब्द हो तो वह तुम्हें आयेगा।" बलसार बोला—"एक बार नहीं सौ बार पसंद आयेगा। पर रत्न कीमती है। लेकर कैसे जाओगे?"

"वह सब मेरे ऊपर छोड़ो।" क्रूर सरदार बोला—"रत्न दिखाओ।"

बलसार सरदार को जहाज में ले गया। उसने दूर से मलया के दर्शन करा दिये। देखते ही सरदार की आंखें खिल उठीं। बलसार को साथ लाकर मुँहमांगी रकम दे दी और बोला—

"आज रात को मैं रत्न उठा लाऊँगा।"

रात हुई। आधी रात भी हो गई। सरदार अपने दो साथियों को लेकर जहाज स्थित मलया के लघु खण्ड में घुस गया। मलया-कंचना दोनों सो रही थीं। सरदार ने दोनों की नाक के पास बारी-बारी से एक जड़ी रख दी। जड़ी के प्रभाव से दोनों अचेत हो गईं। सरदार ने मलया की ओर इशारा किया—

"इसे उठा लो। दूसरी को रहने दो। इसे भी सवेरे तक होश आ ही जायेगा।"

मलया को लेकर सरदार टापू पर अपने कबीले में पहुँचा। मलया को एक शिलाखण्ड पर सुला दिया और देवी के पुजारी के पास जाकर बोला—

"एक सर्वांग सुन्दरी लाया हूँ। आप उसका रत्न देवी को पान कराइए। फिर उसके साथ मुझे विवाह की अनुमति दीजिए।"

कबीले पर सरदार का शासन चलता था और सरदार पर देवी के पुजारी का। पुजारी ने अनुमति दे दी। रात में ही देवी पूजन की तैयारियाँ हो गईं। कबीले के लोग मदिरापान करके देवी के सामने नृत्य करने लगे। सवेरा हो गया, पर मलया को अभी होश नहीं आया था।

सरदार ने एक विशेष धूप का धुआँ मलया को सुँघाया तो उसे होश आ गया। आँखें खोलकर उसने इधर-उधर देखा तो अपने को विचित्र स्थिति में पाया। पुजारी उसके पास खड़ा था। उसने कहा —

"तुम भाग्यशालिनी हो। देवी तुम्हारा रक्तपान करेगी। उसके बाद सरदार से तुम्हारा विवाह होगा।"

मलया विवश थी। पुजारी ने तीव्र प्रभाव वाली सुई से मलया की एक हथेली को छेद दिया। रक्त की धार बहने लगी। उस रक्त से एक कटोरा भर रक्त निकाल कर ऐसी औषधि —जड़ी लगा दी कि रक्त बहना बन्द हो गया। इसी तरह दूसरे हाथ की हथेली से रक्त का दूसरा कटोरा भरा। पुजारी पैरों के तलवे से भी रक्त निकालने जा रहा था कि अचानक ही आकाश से एक विशालकाय भारण्ड पक्षी मलया पर टूट पड़ा और मलया को उठाकर ले गया। पुजारी, सरदार तथा कबीले के अन्य लोग निरुपाय भौचक्के होकर आकाश की ओर देखते रहे गये। मलया ऊपर-नीचे मौत के मुँह में थी। नीचे अथाह सागर लहरा रहा था। भारण्ड के पंजे से मलया नीचे गिरती तो समुद्र में समा जाती। पक्षी ने तो उसे अपना ग्रास बना ही लिया था। मौत निश्चित है, यह सोच मलया ने प्रत्याख्यान ले लिया। उसने अरिहंत भगवान की शरण ले ली। मरते समय का धर्म शरण निश्चित ही सद्गति देता है, यह बात मलया अच्छी तरह जानती थी।

□

३२

भारण्ड पक्षी मलया को लिये आकाश में उड़ता हुआ सागर को पार कर किसी पहाड़ की ओर जा रहा था। वहीं वह मलया को रखकर खाना चाहता था। पर एक विचित्र संयोग तत्काल बन गया। कहीं से एक दूसरा भारण्ड पक्षी आ गया। वह मलया को छीनने पहले भारण्ड पक्षी पर झपटा। दोनों में छीना-झपटी हुई और

इसी द्वन्द्व में मलया नीचे सागर में जा पड़ी। हाय री मौत! तेरा कोई भरोसा नहीं तू कब आती है और कहाँ आती है?

मलया को मौत ने अपने पंजों में जकड़ लिया। वह सागर में समा गई, पर एक लहर के साथ ऊपर उठी तो देखा वह एक मगर की पीठ पर थी। अब यह मगर मुझे अपना ग्रास बनायेगा। मलया ने समझ लिया कि मौत आज मुझे खिला-खिला कर मारेगी। पर था वह उल्टा। मलया का कोई संचित पुण्य उदय में आया। मानव भक्षी मगर उसका सहायक बन गया। वह मलया को लेकर समुद्र में तेजी से भागने लगा। मलया ने औंधी पड़कर मगर की पीठ मजबूती से पकड़ ली थी। वह नवकार मंत्र का जाप करती जाती थी। संकट में जो शान्ति और रक्षा-सुरक्षा मंत्र-धन देता है, वह कोई नहीं दे सकता।

मलया ने मगर की पीठ पर बैठे-बैठे ही महाबल को याद किया। वह जोर-जोर से अपने विगत जीवन की बातें कहने लगी—"महाबल अब तुम कहाँ हो? मैंने तुम्हारे साथ कष्ट सहे और अकेले भी। पर तुम्हारे साथ कष्ट सहने में कितना आनन्द था। आकर देखो, मैं कर्म की लीला में कैसी नाच रही हूँ। याद है तुम मुझे नारी से नर बना देते थे। मेरा सुन्दरसेन नाम तुम्हीं ने तो रखा था। तुमने तो वह जड़ी भी न दी; लगरबी बाबा ने मुझे वह जड़ी दे दी है, जो तुम्हारे पास भी है। आम मिले तो उसे रस में घिसकर मैं उसका तिलक करके पुनः सुन्दरसेन पुरुष बन जाऊँ। पर जब तक तुम न मिलो, मेरे तिलक को जीभ से मिटायेगा कौन? तुम्हारे बिना मैं पुरुष से स्त्री कैसे बनूँगी। देखो वह जड़ी अपनी धोती के छोर में बांध कर अभी रखे हुए हूँ। काश! तुम मिल जाते महाबल! इस जन्म न मिलो तो अगले जन्म में मिल जाना।"

मलया का यह विलाप-प्रलाप मगर ने सुना तो उसे जातिस्मरणज्ञान हो आया। वह मलया को जान गया कि पूर्वभव में मैं क्या था और यह क्या थी? पर उसके पास मानव-वाणी नहीं थी। वह कुछ कहना चाहकर भी मलया से कह नहीं पाया और उसकी ओर मोहभरी दृष्टि से देखने लगा। मगर स्थिर था। मलया कह नहीं पाई कि रुक क्यों गए? किनारे पहुँचा दो। तभी लहर की एक चपेट से मलया मगर की पीठ से नीचे गिर गई। समुद्र का किनारा ज्यादा दूर नहीं था। लहरों ने ठेल-ठेल कर मलया को किनारे पटक दिया।

मलया के हाथों से काफी रक्त खीरा जा चुका था। दुर्बल तो वह थी ही। लहर के थपेड़ों ने और भी दुर्बल कर दिया। जब वह किनारे गिरी तो बेहोश हो गई। रक्तक्षीण मलया लहरों की चोटों से मूर्च्छित होकर गिरी।

सवेरा हो गया। एक राजा अपने साथियों के साथ आज बहुत दिनों में सागर तट की ओर घूमने निकला था। वह एक जगह बैठ गया। उसके साथी आगे चलकर

इधर-उधर घूमने लगे तो मूर्च्छित मलया को देखा। उन्होंने राजा को बताया कि कोई स्त्री मूर्च्छित पड़ी है। राजा स्वयं मलया के पास आया। उसने मलया की नाड़ी देखी तो बोला—

"जीवित है। बच जाएगी। समुद्र के खारी पानी में रहने से यह दशा हुई है, ऐसा लगता है। तुम लोग जल्दी डोली लेकर आओ।"

डोली में लिटाकर मलया राजमहल पहुँचा दी गई। राजवैद्य आ गया। उसने एक औषध की कुछ बूंदें मलया के मुँह में टपकाईं। उसे होश आ गया। वैद्य ने राजा को आश्वासन दिया—

"दस पन्द्रह दिन में स्वस्थ हो जाएगी। रक्तक्षीण है यह स्त्री। औषध देते रहिए। पथ्य भी दीजिए।"

राजवैद्य चला गया। राजा ने मलया की सेवा में दासियाँ छोड़ दीं। राधा नाम की दासी मलया की देखभाल के लिए खास तौर से नियुक्त की गई। दूसरे दिन से ही मलया चलने-फिरने लगी। वह समझ नहीं पा रही थी कि मैं कहाँ हूँ? मुझे लाने वाला यहाँ कौन है। तभी राजा आ गया। उसने पूछा—

"अब तुम ठीक हो?"

"हाँ, पहले से बहुत अच्छी हूँ।" मलया ने कहा—"मैं यहाँ कहाँ हूँ?"

"अब तुम ठीक जगह आ गई हो।" राजा बोला—"तुम्हारा नाम क्या है?

"मलयासुन्दरी।" मलया बोली—"क्या आप मुझे मेरे घर पहुंचा देंगे?"

"अब यही घर तुम्हारा घर है।" राजा बोला—"मैं सागरतिलक नगर का राजा कंदर्पदेव हूँ।

"मलया! मेरे आठ रानियाँ हैं, पर पटरानी उनमें एक भी नहीं है। तुम-जैसी सुन्दर कोई मिली ही नहीं, जिसे पटरानी बनाता। यह स्थान तुम्हारे लिए मानो खाली पड़ा था। मुझे छोड़कर कहाँ जाओगी? जाओगी तो तुम्हें जाने नहीं दूँगा। यह राज्य तुम पर न्योछावर है। कहो तो आठों रानियों को तुम्हारी चेरी बना दूँ। हाँ, अपना परिचय तो दे दो कि तुम कौन हो, कहाँ से आई हो, सागर में किसने तुम्हें गिराया?"

मलया काँप गई। कर्म की लीला देखकर वह मन-ही-मन हँसी और सोचने लगी—'तो मैं पुनः सागरतिलक नगर आ गई। बलसार भी यहीं है। यहाँ मेरे दो शत्रु हैं। बलसार तो था ही, अब यह राजा कंदर्पदेव भी हो गया। मैं इससे न्याय माँगने की सोच रही थी। पर यह तो स्वयं ही भक्षक बन गया। भक्षक रक्षक कैसे

हो सकता है ? हाँ, पर एक बात अच्छी हुई कि यहाँ मैं अपने पुत्र बलसुन्दर को पा सकती हूँ। कहीं से आम मिल जाता। कच्चा या पक्का आम इस ऋतु में मिलेगा भी कहाँ से ? तो क्या मुझे आमों की ऋतु तक इस राजा को टालना पड़ेगा ? बिना पुरुष बने कैसे निकलूँगी ? राजा कंदर्पदेव मेरा परिचय जानना चाहता है। यदि मैं इसे बता दूँ कि मैं महाराज वीरधवल की पुत्री और महाराज सुरपाल की पुत्रवधू तथा महाबलकुमार की पत्नी हूँ तो यह मुझे और भी ज्यादा सतायेगा। मैं इसे अपना परिचय नहीं दूँगी····।'

"क्या सोच रही हो मलया ?" राजा कंदर्पदेव बोला—"तुमने बताया नहीं कि तुम कौन हो, कहाँ से आई हो और सागर में तुम्हें किसने गिराया था ?"

"मेरा नाम मलयासुन्दरी है।" मलया बोली—"यह मैंने आपको बता दिया है। इसके अलावा मैं कुछ नहीं बताऊँगी।"

"मैं भी जानना नहीं चाहता।" राजा बोला—"मैं समझ गया कि तुम अपना परिचय क्यों नहीं बताना चाहती ? तुम अपनी बदनामी से डरती हो। मुझे तो आम खाने से मतलब है, पेड़ों की गिनती से क्या मतलब। तुम कौन हो, इससे मुझे कोई मतलब भी नहीं है।"

"क्या आपके राज्य में अब भी आम मिल सकते हैं ?" मलया ने कहा—"क्या आप एक आम····।"

"इस ऋतु में आम कहाँ है मलया ?" राजा बोला—"आमों का नाम सुनते ही तुम्हें आम याद आ गया तो मैं समझ गया कि तुम्हें आम बहुत प्रिय है। वैसे तुम जो भी कहो, मैं तुम्हारे लिए करूँगा। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि तुमने अपने मन की एक बात तो कही। अब तुम आराम करो। राजवैद्य जब तक न कहें औषध बन्द मत करना। पहले तुम स्वस्थ हो जाओ।"

यह कह राजा ने पुनः राधा से कहा—

"राधा ! तुम्हें मलया का विशेष ध्यान रखना है।"

राजा चला गया। उसने चुपचाप राधा दासी को बुलाकर समझाया—

"ध्यान रखना, भाग न पाये। इतने कड़े पहरे में भाग तो नहीं सकती, फिर भी ध्यान तो रखना ही। हाँ, इसे मेरी ओर आकर्षित करती रहना।"

"आकर्षित तो वह है ही।" राधा बोली—"मौन स्वीकृति का लक्षण होता है, अन्नदाता। मलया ने इन्कार ही कब किया है ? इतने बड़े वैभव को छोड़कर जाएगी भी कहाँ ?"

आश्वस्त और निश्चिन्त होकर राजा चला गया। राधा मलया की सेवा में रहती ही थी। मलया ने जैसे कंचना को अपने विश्वास में लिया था, वैसे ही राधा को भी ले लिया। उसने राधा को स्पष्ट बता दिया कि मैं प्राण दे सकती हूँ, पर

राजा की इच्छा पूरी नहीं कर सकती।" राधा को मलया से सहानुभूति तो थी, पर राजा से पुरस्कार पाने के लोभ में वह भी जब-तब मलया को राजा की बात मानने पर समझा देती। मलया मन में सोच लेती, राधा मूर्ख है। वह स्त्री तो है, पर स्त्री के शीलहठ को नहीं जानती कि वह इन्द्र के वैभव को भी ठुकरा देती है।

× × ×

मलया न केवल पूर्ण स्वस्थ हो गई, बल्कि उसके सौन्दर्य में और अधिक निखार आ गया। सिद्धान्तपूर्ण औषधियों का सेवन और उत्तमोत्तम भोजन के कारण मलया निखर गई थी। राधा ने मलया से राजा का संदेश कहा—

"सात दिन तक यदि आपने राजा के समक्ष समर्पण नहीं किया तो वे बलपूर्वक आपको अपने अन्तःपुर ले जाएँगे।"

"जब आ ही पड़ी है तो मैं हर परिस्थिति का मुकाबला करने को तैयार हूँ।" मलया बोली—"लेकिन राजा की कुत्सित इच्छा कभी पूरी नहीं हो सकती।"

"आप नहीं जानतीं, राजा कंदर्पदेव बहुत हठी है।" राधा बोली—"राजा की शक्ति को तो आप जानती ही हैं।"

"तू मेरी भलाई चाहती है तो मुझे यहाँ से कैसे ही निकाल दे।" मलया बोली—"आखिर तू भी तो नारी है। क्या तू नहीं चाहती कि मेरी मुक्ति हो?"

"आखिर नारी को किसी का सहारा तो चाहिए ही।" राधा बोली—"राजा का सहारा पाने में बुराई क्या है?"

"तू एक ही बात बार-बार कहती है राधा! पहले भी तू अनेक बार कह चुकी है।" मलया बोली—"पिष्टपेषण से कोई लाभ नहीं है। मैंने जो कह दिया, वह अटल है।

"राधा, तूने पूछा कि राजा का सहारा लेने में क्या बुराई है? मैं किसी की पत्नी हूँ और एक पुत्र की माँ भी हूँ। मैं बेसहारा हूँ कब, जो सहारा लूँ?"

राधा कुछ कहती कि एक दासी ने राजा कंदर्पदेव के आगमन की सूचना दी। राजा एक सेवक के साथ मलया के कक्ष में आया। सेवक के हाथ में एक थाल था और थाल में पीले-सिंदूरी रंग का एक पका आम रखा था। आम का थाल मलया के सामने करते हुए राजा ने कहा—

"मलया! मैं तुम्हारे लिए अलभ्य-दुर्लभ वस्तु यह आम लाया हूँ। भला इस शीत ऋतु में आम की कल्पना भी कौन करेगा? तुम्हें आम्र फल प्रिय है सो मैं ले आया। मैं ले क्या आया, भाग्य ने ही मुझे तेरे लिए दिया था। अभी थोड़ी देर पहले की बात है। मैं अपने कक्ष के प्रांगण में बैठा धूप सेवन कर रहा था। एक तोता यह आम लिये उड़ रहा था। उसकी चोंच से आम गिरा और मेरी गोद में आ गया।

"मलया ! हमारे नगर की उत्तर दिशा में एक पर्वत है छिन्नटंक। इस पर्वत शिखर के ऊपर एक सदा ऋतु आम्र वृक्ष है। इस वृक्ष पर बारहों महीने आम फलते हैं। दुर्गम घाटियों को लाँघ कर मनुष्य वहाँ तक नहीं पहुँच सकता। तोता ले आया आम। मैंने तुम्हें तुम्हारी ईप्सित वस्तु दी है। अच्छा है, तुम मेरा प्रणय स्वीकार कर लो। मुझे भरोसा है कि तुम मुझ-जैसे प्रेमी का प्रेम कदापि नहीं ठुकराओगी।"

"मुझे उस फल की बहुत जरूरत थी।" मलया बोली--"राजन् ! मैं आपकी आभारी रहूँगी।"

राजा मलया की रहस्यमयी भाषा नहीं समझ पाया। उसने कहा—

"आभारी तो मैं तुम्हारा हूँ कि तुमने मेरी भेंट स्वीकार कर ली। अब मैं सात दिन बाद अन्तःपुर का रथ लेकर आऊँगा।"

यह कह राजा चल दिया। उसे विश्वास हो गया था कि अब मलया मेरी हो गई, क्योंकि उसने मेरी आम्र भेंट स्वीकार कर ली है। राधा भी चकित थी कि मलया ने राजा की भेंट स्वीकार कैसे कर ली। पर आम्रफल पाकर मलया बहुत खुश थी। अब उसे भरोसा था कि वह पुरुष बनकर अपने शील की रक्षा कर लेगी। अब बल प्रयोग से भी राजा पुरुष मलया का बाल भी बाँका नहीं कर सकता।

अब मलया को पुरुष की पोशाक की जरूरत थी। इसके लिए उसने राधा से ही कहा—

"राधा ! अब तुमसे बिछोह तो होगा ही। सात दिन बाद राजा अपने अन्तःपुर में ले जाने का प्रयास भी करेगा। विवश होकर जाना तो पड़ेगा ही, पर""।"

"जब जाना ही है तो स्ववश होकर जाओ।" राधा बोली—"विवश होकर जाने में मन को बड़ा क्लेश होगा। शरीर को तो होगा ही।"

"तूने मेरी बात बीच में ही काट दी।" मलया बोली—"आगे कहने ही नहीं दिया। मैं कह रही थी कि विवश होकर जाना तो पड़ेगा ही, पर मैं पुरुष वेश में जाना चाहती हूँ। तू मेरा यह काम कर दे कि सुन्दर सी पुरुष की पोशाक ला दे।"

"यह तो बड़ा आसान काम है।" राधा बोली--"कहो तो मैं राजा की पोशाक ही उनसे माँग लाऊँ ?"

"चल हट।" मलया ने डाँटा--"राजा से क्यों माँगेगी ? मेरे लिए नई पोशाक ला।"

"अच्छा" कहकर राधा तुरन्त गई। वह बाजार से एक धोती, अंगरखा, उष्णीष, उत्तरीय, उपानह आदि ले आई। इसके लिए उसने धन राजा से ही यह कहकर लिया--"भाग्य आपके अनुकूल है। मुझे कुछ धन चाहिए। आपकी होने वाली पटरानी को जरूरत है।"

राजा ने खुश होकर धन दिलवा दिया। पुरुष वेश मलया को पसंद आया।

उसने सम्हाल कर रख लिया। एक-एक करके सात दिन बीते। राजा का रथ आ गया। रथ में चार सशस्त्र दासियाँ थीं। राजा भी साथ में था। राधा ने मलया को संदेश दिया—

"आपको अन्तःपुर ले जाने के लिए रथ आया है।"

"मैं तैयार हूँ।" यह कह मलया उठी। पुरुष की पोशाक उसने युक्तिपूर्वक कमर-पेट, पीठ में छिपाकर ऊपर से अपना स्त्री वेश पहना था। इतनी सहजता से मलया रथ में बैठकर अन्तःपुर गई थी कि राधा दासी और राजा अंदर्पदेव—दोनों चकित थे। रथ अन्तःपुर पहुँचा। राजा ने एक सजे-सजाये कक्ष में मलया को उतारा। नवकार मंत्र का स्मरण कर मलया ने कक्ष में प्रवेश किया। अन्तःपुर की आठों रानियों ने मलयासुन्दरी को ईर्ष्या की दृष्टि से देखा—'अब यह हमारे ऊपर रहेगी—पटरानी बनेगी।' वे आपस में चर्चा भी करने लगी।

धीरे-धीरे रात्रि हुई। मलया के पास राजा को रात में ही पहुँचना था। रात्रि के प्रथम प्रहर में ही मलया ने आग के रंग में तापसी बाबा की दी हुई जड़ी को घिसा। वह तिलक लगाने वाली ही थी कि राधा आ गई। उसने राजा का संदेश उसे दिया—

"आप प्रीतिपूर्वक राजा का स्वागत करने के लिए तैयार रहें। थोड़ी देर बाद ही वे आयेंगे।"

"राधा आज की रात मैं धर्म-ध्यान करूँगी।" मलया बोली- "राजा तो मेरे पिता समान हैं। उनसे कहना कि उनकी पुत्री मलया कल दिन में ही उनका स्वागत करेगी।"

मलया का उत्तर सुनकर राजा अंदर्पदेव क्रोध से तिलमिला उठा। उसने दाँत पीसते हुए राधा से कहा—

"राधा, मलया ने जो कुछ कहा है, उसने अपनी दुर्गति को निमंत्रण दिया। एक रात और सही। कल मैं उसे अपनी अंकशायिनी बनाकर ही रहूँगा। जा तू अभी जाकर मलया से मेरी बात कह दे।"

मलया जानती थी कि राधा राजा का उत्तर लेकर आयेगी। अतः वह उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। राधा के मुँह से राजा की बात सुनकर मलया ने राधा से कहा—

"राधा! बालू से तेल निकाला जा सकता है। पानी मथकर नवनीत भी प्राप्त किया जा सकता है। सभी असंभव कार्य संभव हो सकते हैं। लेकिन सती का शील भंग करने वाला त्रिलोक में न तो कभी हुआ, न है और न होगा।"

"यह तो कल ही मालूम पड़ेगा।" राधा बोली "मैं तो अभी तक यही

जान पाई है कि अब तक राजा कंदर्पदेव के जाल में जो भी पंछी फँसा, उसके पंख तो टूट गए, पर वह मुक्त नहीं हो पाया।"

यह कह राधा चली गयी। उसके जाने के बाद मलया धर्म-ध्यान करने बैठ गई। आधी रात के लगभग मलया ने बूटी का तिलक लगाया।। देखते-देखते वह पुरुष बन गई। उसके उरोज गायब हो गए। वाणी भी पुरुषत्व लिये हो गई। फिर उसने पुरुष वेश धारण किया। अब वह पूर्णतः पुरुष थी। अब उसे नराधम कामी का भय नहीं था। मन-ही-मन मलया ने कहा—"अब मैं सुन्दरसेन हूँ।"

मलया ने धीरे से कक्ष का द्वार खोला। बाहर सन्नाटा था। वह निर्भीक होकर बाहर निकली। अन्तःपुर की एक रानी जग रही थी। उसकी दृष्टि मलया पर पड़ी तो उसने आह भरी—कितना सुन्दर युवक है! यहाँ यह आ कैसे गया? रानी ने अपनी दासी को भेजकर मलया को बुलाने भेजा। जब तक दासी अन्तःपुर से निकली तो रानी ने अन्य रानियों को भी जगा दिया। फिर तो आठों रानियों ने मलया को घेर लिया। वे उससे पूछने लगीं कि तुम हमारे अन्तःपुर में कहाँ से आये हो? मलया ने उत्तर दिया—

"परदेसी हूँ। कर्मयोग से यहाँ आ गया हूँ। अब जा रहा हूँ।"

इसी बीच पहरेदार जाग गए। मलया पकड़ी गई। उसे बन्दीगृह में बन्द कर दिया। सवेरे मलया को राजा के सामने पेश किया गया। राजा ने पूछा—

"नाम?"

"सुन्दरसेन।" मलया नाम बताकर मौन हो गई।

राजा ने कहा—

"सुन्दरसेन! मेरे राजमहालय की बनावट और सुरक्षा-व्यवस्था ऐसी है कि पक्षी भी यहाँ नहीं आ सकता। बोल, तू किस रास्ते से आया है?"

"मेरा कर्म मुझे यहाँ लाया है।" सुन्दरसेनरूपी मलया ने कहा—"इससे अधिक मैं कुछ नहीं जानता।"

मलया के इस टेढ़े उत्तर से राजा को संदेह हो गया कि सुन्दरसेन के रूप में यह मलया है। इसकी मुखच्छवि मलया-जैसी है।" राजा ने दो दासियाँ मलया के कक्ष में भेजीं तो पता चला कि मलया गायब है। अब तो राजा का संदेह निश्चय में बदल गया। उसने तरह-तरह से मलया से पूछताछ की। मलया ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे पाई। राजा ने अपने हाथ से सड़ा-सड़ कोड़े बरसाये। मलया की पीठ लहू-लुहान हो गई और वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। राधा ने भी मलया को देखा तो अपने लाये हुए पुरुष के वस्त्र पहचान लिये। पर उसने राजा के भय से यह नहीं कहा कि ये वस्त्र मैं ही लाई थी।

राजा ने अपने सेवकों को आदेश दिया —

"सुन्दरसेन के रूप में यह मलया ही है। यह कोई ऐसा मंत्र जानती है, जिससे यह पुरुष बन गई है। इसे कारागार में बन्द कर दो। जब तक यह पुनः पुरुष से स्त्री न बने, इसे यातनाएँ दो। अभी इसने मेरी करुणा नहीं देखी है। क्रूरता ही देखी है।"

राजसेवक मूर्च्छित मलया को उठाकर ले गए। उसे उसी बन्दीगृह में पुनः बन्द कर दिया, जिसमें वह रातभर रही थी। मलया को होश आया है, यह देखने के लिए एक सेवक उसके पास गया और राजा का यह आदेश देकर चला गया कि जब तक तुम पुनः स्त्री नहीं बनोगे, इसी बन्दीगृह में सड़ते रहोगे।

"कर्म का यही भोग है तो भोगना पड़ेगा।' मलया ने सोचा, 'अब स्त्री मैं बन भी कैसे सकती हूँ? जब तक मेरे स्वामी महाबल मेरे माथे के तिलक को अपनी जीभ से न मिटायेंगे मैं तब तक पुरुष ही रहूँगी। उनका मिलना तो अब इस जन्म में होगा नहीं। मैं जीवनभर पुरुष रहूँगी। शील ही राजा मुझ पर नित्य कोड़े बरसाये, पर अब वह मेरे सतीत्व को कलंकित नहीं कर सकता।' यह सोचकर मलया ने अपने लिंग परिवर्तन को वरदान ही माना। राजा की यातना के दुःख से उसे सतीत्व रक्षा के पुरुषत्वरूपी कवच प्राप्ति की प्रसन्नता अधिक थी।

३३

सुन्दरसेन रूपी मलया ने सोचा— "अब मैं पुरुष हूँ। पुरुष रूप में होने के कारण राजा मेरे शील को छू भी नहीं सकता। शीलरक्षण का कवच तो मुझे मिल गया, पर इस बन्दीगृह में मैं कब तक पड़ी रहूँगी? यहाँ कोई दूसरा बन्दी भी तो नहीं, जिससे बातचीत करके समय काटा जाए। किसी तरह यहाँ से निकलना चाहिए।"

मलया ने बन्दीगृह के चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। उसमें ऊपर की ओर एक रोशनदान था—न जाली, न कपाट। एक व्यक्ति उसमें से आसानी से निकल सकता था। लेकिन रोशनदान ऊँचा था। मलया वहाँ तक नहीं पहुँच सकती थी। मलया सोचती रही—सोचती रही। सोचते-सोचते उसे एक उपाय सूझ गया। बन्दीगृह में एक खूँटी थी। वहाँ तक मलया कूद कर पहुँच सकती थी।

मलया ने बन्दीगृह के पलंग पर बिछी चादरों को चीर डाला । कुछ पट्टियाँ निकल आईं । उन्हें आपस में गांठों से जोड़कर एक लम्बी रस्सी बना दिया । उसका एक छोर खूंटी से बांधा, खींचकर मजबूत किया और रस्सी को दोनों हाथों से पकड़ कर दीवार पर दोनों पांव अड़ाकर वह खूंटी तक चढ़ गई । एक पांव खूंटी पर रख चादर से बनी रस्सी को पकड़कर उछलकर रोशनदान पर चढ़ गई । नीचे झांककर देखा । उपवन था । खूंटी पर बँधी रस्सी का एक छोर को उसने रोशनदान से नीचे लटका दिया । दूसरा छोर खूंटी से ही बँधा था । रस्सी को पकड़ मलया दीवार से पैर लगाकर नीचे उतरी कि खूंटी उखड़ गई । मलया 'धम्म' की आवाज के साथ नीचे गिरी । उसे चोट नहीं आई, क्योंकि ज्यादा ऊंचाई से नहीं गिरी थी । उसके पास स्त्री वेश के कपड़ों को उसने कमर से लपेट रखा था, इससे भी उसे चोट नहीं लगी, क्योंकि कमर के बल गिरी थी । उठकर मलया ने उपवन के चारों ओर देखा, पूरा सन्नाटा था । लेकिन उसे यह पता नहीं था कि उसके गिरने की आवाज के साथ पहरेदार चौकन्ने हो गए थे । मलया ने सबको सोया जान उपवन की दीवार छलांग दी और भाग गई ।

उसे जाते पहरेदारों ने देख लिया । तुरन्त खतरे का बिगुल बज गया । खतरे के बिगुल की आवाज सुनकर राजा कदर्पदेव भी जाग गया और शयन कक्ष से उठकर बाहर आकर पूछने लगा—

"क्या हुआ ? क्या कोई चोर है ?"

"कोई उपवन से कूदकर भागा है ।" प्रहरी ने कहा—"यह पता नहीं चोर भागा है या....?"

"सुन्दरसेन के वेश में मलया तो नहीं भागी ?" राजा ने कहा—"पहले उसे बन्दीगृह में देखो ।"

देखभाल कर प्रहरियों ने बताया कि सुन्दरसेन ही भागा है । भागे हुए का पीछा करना प्रहरियों के बस की बात तो थी ही नहीं । अतः राजा ने तुरन्त कुछ सैनिकों को आदेश दिया—

"नगर की सीमाएँ घेर लो । सुन्दरसेन को नगर से निकलने से पहले ही पकड़ लो । अगर वह नगर पार भी कर जाए तो आस-पास के वनों में देखो । तेज घोड़े ले जाओ । मलया तुम्हारी पकड़ से दूर नहीं जा सकती । उसे पकड़कर लाना ही है ।"

घोड़ों पर चढ़कर सैनिक नगर के राजमार्गों पर फैल गए । पकड़ से बचने के लिए भागने वाले व्यक्ति में कुछ अधिक शक्ति आ जाती है । मलया भी सामान्य से अधिक वेग से भागी थी । भागते-भागते वह नगर को पारकर जंगल में पहुँच गई । उसने मुक्ति की सांस ली और बैठ गई । तभी उसने घोड़ों की टापों की आवाज सुनी

तो समझ गई—राजा के सैनिक ही मुझे पकड़ने आये होंगे। अब ? मलया घबराई, क्योंकि सैनिक निकट आते उसने देख लिए थे। झटपट उसे एक युक्ति सूझी, वह झाड़ी में छिप गई। जैसे ही वह झाड़ी में घुसी कि एक खरगोश निकलकर भागा। सैनिक आगे निकल गए। कुछ दूर तक मलया को ढूंढ़ वे जिधर से आये थे, उधर ही वापस चले गए। मलया झाड़ी से निकली और एक पेड़ के नीचे बैठ गई। अभी रात थी। सवेरा होने में डेढ़ प्रहर की देर थी।

सैनिकों ने लौटकर राजा कंदर्पदेव को बताया कि मलया के पदचिह्न जंगल तक गए हैं। हमने उसे जंगल में भी देख लिया है। कहीं नहीं मिली।

"जंगल में ही कहीं छिपी होगी।" राजा बोला—"मैं भी अश्व पर साथ चलता हूँ। रात में वह जंगल पार नहीं कर पायेगी।"

राजा कंदर्पदेव भी घोड़े पर सवार होकर सैनिकों के साथ मलया को ढूंढने-ढूंढवाने चल दिया।

× × ×

कर्म अपने ढंग से काम करता है। कभी वह संयोग जुटाता है तो कभी अन्य ढंगों से काम करता है। जिस वृक्ष के नीचे मलया सुन्दरतम पुरुष के रूप में बैठी थी, उसी वृक्ष की एक मोटी डाल पर महाबल बैठा था। न महाबल को पता था कि नीचे मलया है और न मलया जानती थी कि ऊपर महाबल बैठा है। यह भी कर्म की अद्भुत विचित्रता थी कि जो एक दूसरे के लिए भटक रहे थे, वे दोनों अत्यन्त पास होकर भी दूर थे। कर्म के विधान ने उन्हें पास होने का संयोग तो जुटा दिया, पर मिलने का संयोग नहीं जुटाया।

पेड़ के नीचे बैठी मलया सोच रही थी—'अब ज्यादा भटकने से कोई लाभ नहीं। मेरा महाबल मुझे अब इस जीवन में नहीं मिलेगा। आत्म-हत्या पाप है—महापाप है, पर अब इसके अलावा कोई चारा नहीं। राजा कंदर्पदेव के सिपाही एक बार तो लौट गए। मैं कहाँ तक भागूंगी ? उसकी पकड़ से नहीं बच सकती। राजा तड़पा-तड़पा कर मारेगा। उससे तो स्वयं मरना ही अच्छा है। संयोग से सामने एक कुआँ भी है। इसी में कूदकर प्राणान्त कर दूं।'

मलया वृक्ष के नीचे से उठी। कुएँ की ओर चल दी। महाबल ने भी देखा, 'यह कोई युवक जीवन से दुःखी होकर कुएँ में गिरने जा रहा है, इसे बचाना चाहिए।' महाबल पेड़ से उतर पाया कि मलया कुएँ तक पहुँच गई। जब तक वह उसे बचाने पहुँचता कि मलया ने यह कह कुएँ में छलाँग लगा दी "महाबल मुझे क्षमा करना। मेरा अन्तिम नमस्कार स्वीकार करना।"

अपना नाम सुनकर महाबल चौंका और लपक कर उसने कुएँ में झांका। उसने कुएँ में उगी झाड़ियों को पकड़ा और नीचे लटककर कूद गया। संयोग से वह मलया

पर नहीं गिरा। कुआँ जलरहित—अंधकूप था। उसमें रेत ही रेत था। दोनों रेत पर थे।

"कौन हो तुम ?" मलया ने महाबल का स्पर्श पाकर पूछा—"क्या तुम भी मरने कूदे थे ? हम दोनों के भाग्य में मौत भी अभी नहीं है। यहाँ भी बच गए।"

"मैं तो तुम्हें बचाने कूदा था।" महाबल ने कहा—"आत्म-हत्या करना न केवल पाप है, बल्कि कायरता भी है। पुरुष होकर तुमने ऐसी कायरता क्यों की ?"

मलया को यह स्वर पहचाना-सा लगा। उसने सोचा, यह तो महाबल ही है। लेकिन अंधकार होने के कारण वह महाबल को देख नहीं पा रही थी। तभी एक मणिधर सर्प वहाँ बांबी में से निकला। मणि-प्रकाश में मलया ने महाबल को देखा और उसे पहचानते ही उससे लिपट गई—

"महाबल ! तुम मुझे इस तरह मिल जाओगे, यह मैं सोच भी नहीं सकती थी। अब मुझे किसी से कोई शिकायत नहीं है। मेरी मंजिल मुझे मिल गई है।"

"लेकिन तुमको पुरुष किसने बनाया ?" महाबल बोला—"वह जड़ी तो मेरे पास थी।"

"मुझे ऐसी ही एक जड़ी एक तपस्वी बाबा ने दी थी।" मलया बोली—"वहीं मैंने आपके आत्मज को जन्म दिया था।"

मलया ने अब तक की पूरी आपबीती महाबल को सुना दी। फिर बोली—

"पहले आप अपनी जीभ से मेरा तिलक मिटा दें। पुरुष से पुरुष का मिलना एक विडम्बना ही होगी।"

महाबल ने मलया के तिलक को जीभ से चाटा। वह स्त्री बन गई। उसके पास अपने कपड़े भी थे, वह उसने पहन लिये।

महाबल ने पूछा—

"तो हमारे पुत्र का नाम बलसार ने बलसुन्दर रखा है। यह तो हम दोनों के नाम का ही संयोग हो गया। मेरे नाम महाबल का 'बल' और तुम्हारे मलया सुन्दरी नाम का सुन्दर मिलकर बना बलसुन्दर।"

'पुत्र भी तो हम दोनों का है।" मलया बोली—"लेकिन बलसार से उसे लिया कैसे जाएगा ? राजा तो स्वयं अन्याय पर तुल गया है। उससे न्याय की आशा करना व्यर्थ है।"

"इस समय तो समस्या यह है कि इस कुएँ से निकला कैसे जाए ?" महाबल बोला—"कुएँ से बाहर होना असम्भव-सा लग रहा है।"

"न निकलें बाहर।" मलया बोली—"बहुत भटकने के बाद मिले हैं। मिलन हर्ष में कुछ दिन कुएँ में बिता देंगे।"

"मलया ! एक बात बताना मैं भूल ही गया। तुम्हें ढूंढने के क्रम में मुझे तुम्हारी विमाता की दासी सारिका मिल गई थी। उसका जीवन बड़ा सुखी है। मैंने उसे बहिन बना लिया है।"

"एक बात मैं तुम्हें बताती हूँ।" मलया बोली—"सुनोगे तो बहुत हँसोगे। राजा कंदर्पदेव की आठों रानियाँ मुझ पर आसक्त हो गईं। जब मैं पुरुष बनकर निकली तो आठों ने मुझे घेर लिया।"

यह सुनते ही महाबल ने ठहाका लगाया। मलया भी खिलखिलाकर हँसी। उन दोनों की हँसी सुनकर राजा कंदर्पदेव चौंका। उसने सैनिकों से कहा—

"मैंने कहा था न कि मलया इस वन में ही कहीं छिप गई होगी। वह इस कुएँ में है। लेकिन हँसने वाला युवक इसके साथ कौन है ? चलो देखें।"

राजा कंदर्पदेव सैनिकों के साथ वन में यहाँ तक आ गया था। वन में ही सैनिक इधर-उधर देख रहे थे। महाबल-मलया की हँसी से वह जान गया कि मलया किसी युवक के साथ कुएँ में है। वह कुएँ के पास पहुँचा। कुछ देर दोनों की बातें सुनकर वह समझ गया कि मलया अपने स्त्री रूप में आ गई है और इसके साथ जो युवक है, वह इसका पति है। उसने कुछ सिपाहियों को आदेश दिया कि जल्दी से दो मोटे-मोटे लम्बे रस्से और दो पीढ़े लेकर आओ।

थोड़ी देर बाद राजसेवक रस्सियाँ और पीढ़े लेकर पहुँचे तो राजा ने कुएँ में झाँककर कहा—

"मलया ! मुझे बहुत खुशी है कि तुम्हारा पति तुम्हें मिल गया है। तुम पुरुष से स्त्री बन गई, यह भी खुशी की बात है। मैं तुम दोनों को कुएँ से बाहर करता हूँ। उसके बाद कहीं भी जाना। मैं तुम दोनों के लिए सवारी की व्यवस्था भी कर दूँगा।"

मलया ने महाबल से कहा—

"स्वामी ! हम इसी कुएँ में मर जाएँ, यह ज्यादा अच्छा है। राजा के जाल में मैं अब फँसना नहीं चाहती। यह राजा बड़ा दुष्ट है।"

"अब मैं तुम्हारे साथ हूँ।" महाबल ने कहा—"क्या पति पत्नी की रक्षा नहीं कर सकता ? कुएँ से बाहर निकलना तो हम चाहते ही हैं।"

राजा ने ऊपर से पीढ़े लटकवा दिये और कहा - "दोनों अलग-अलग पीढ़े पर बैठ जाओ।" एक पीढ़े पर दो बैठ भी नहीं सकते थे। राजा ने रस्सी खींचने वाले सेवकों को पहले से समझा दिया था कि उन्हें कब क्या करना है।

आधी ऊँचाई तक तो यह पता ही नहीं चला कि किस पीढ़े पर मलया बैठी है और किस पर महाबल। जब सेवकों को मलया-महाबल दीखने लगे तो मलया को खींचने वाले सेवकों ने अपनी गति तेज कर दी। महाबल वाले धीरे-धीरे खींचने लगे। मलया को ऊपर ले लिया गया। महाबल को कुछ दूर और खींचा, फिर सेवकों ने रस्सी काट दी। महाबल पुनः कुएँ में गिर गया। मलया चीखी—

"नीच, कपटी, पामर! तूने बचन भंग किया है। तू मुझे पति से अलग नहीं कर सकता।"

यह कह मलया पुनः कूएँ में कूदने भागी। राजा ने उसे पकड़ लिया और बोला—

"मैं तुझे मरने नहीं दूँगा। अब स्त्री से पुरुष भी नहीं बनने दूँगा। मैं जो निश्चित कर लेता हूँ, उसे करके छोड़ता हूँ। तुझे अपनी अंकशायिनी बनाकर ही रहूँगा।"

"तेरी यह इच्छा आकाश कुसुम ही रहेगी।" मलया बोली - "तू मेरे शील को छू भी नहीं सकता।"

मलया की बात का कोई उत्तर न दे राजा ने उसे रथ में बिठा दिया। राजमहल में पहुँच उसने मलया को एक पुराने खण्डहरनुमा महल में बन्दी बना दिया। उसके चारों ओर सशस्त्र पहरा लगवा दिया। इस महल के चारों ओर जंगल था। यह राजा का पुराना महल था। साँप-बिच्छू आदि ने इसमें बसेरा ले लिया था। चमगादड़ों और उल्लुओं ने भी अपना डेरा जमा लिया था। मकड़ी के जालों की भरमार थी। राजा कंदर्पदेव मलया को यातनाएँ देकर झुकाना चाहता था। पर वह मूर्ख था। मूर्ख होने के कारण वह यह नहीं जान पाया कि सती नारी यातनाओं के आगे त्रिकाल में भी नहीं झुकती।

रथ में बैठने से पूर्व राजा ने मलया से कहा—

"मलया! जब तक तू मेरी होना स्वीकार नहीं करेगी, यहीं पड़ी-पड़ी सड़ती रहेगी। तू यहाँ से भागना चाहे तो भाग भी नहीं पायेगी। मैं तुझे भूख से तड़पा-तड़पा कर जीवित रहने के लिए अलांण में भोजन दूँगा। जब तू समुद्र में डूबकर बची थी, तब मैंने राजवैद्य से तेरा उपचार करवाया था। तुझे पौष्टिक भोजन दिया था। तूने मेरा वह रूप भी देखा था। अब मेरा यह रूप भी देखना।"

यह कह राजा कंदर्पदेव रथ में बैठकर चला गया। मलया नवकार मंत्र का जाप करने लगी। □

३४

एक परिचारक मलया के सूने खण्डहर में दीपक रखने आया। मलया उठकर खड़ी हो गई और बोली—

"अरे भैया, इस दीपक की क्या जरूरत है ? जिसके भीतर अँधेरा हो, उसके लिए बाहर के प्रकाश का महत्व ही क्या है ?"

"मैं तो सेवक हूँ देवी !" परिचारक ने कहा—"राजा की आज्ञा हुई तो दीपक रखने चला आया।"

"तो फिर रख दो।" मलया ने कहा और बैठने को हुई तभी उसकी जोर से चीख निकली। सेवक चौंका। उसने दिये के प्रकाश में एक सर्प को भागते देखा तो उसे यह समझते देर नहीं लगी कि मलया को इसी काले सर्प ने डसा है। सेवक के हाथ में भाला था। उसने तत्काल भाले में साँप को बींध डाला और फिर पीट-पीट कर मार दिया।

मलया नीचे पड़ी थी। प्रतिहार तत्काल भागा-भागा राजा के पास पहुँचा और हाँफते हुए मलया को साँप के डसने की बात बता दी। राजा ने सुना तो क्षण भर के लिए उसका दिल ही बैठ गया। मलया की मौत उसे सहन नहीं थी। पर अभी तो उसे बचाया जा सकता था, यह सोच राजा ने धीरज रखकर अपने सेवक दौड़ा दिये कि राजवैद्य और मंत्रविदों—गरुड़िकों को लेकर सीधे राजभवन पहुँचो।

सेवकों को आदेश देकर राजा स्वयं रथ में बैठकर खण्डहर पहुँचा। मलया को रथ में डाल राजभवन ले आया। तब तक राजवैद्य आ चुके थे। उन्होंने चिकित्सा आरम्भ कर दी। फिर मंत्रविद भी आ गए। रात भर सब लगे रहे। राजा भी जागता रहा और सोचता रहा—एक बार मलया ठीक हो जाए। उसे मैं अपनी अंकशायिनी बना लूँ। बस, फिर मुझे कुछ नहीं चाहिए।

सवेरा हो गया। मंत्रविदों ने आशा-निराशा की मिली-जुली परिस्थिति राजा को बताई—

"कृपावतार ! मलया को बचाया जा सकता है। यदि कोई विशेष गुणी मंत्र-विद् मिल जाए और जिसके पास सर्पमणि भी हो। मलया को काटने वाला साँप यदि

मारा न जाता तो हम लोग सफल हो जाते। साँप को बुलाकर विष खिंचवा देते। पर अब हम निरुपाय हैं। मलया के प्राण अभी ब्रह्मरंध्र में अटके हुए हैं। आप चारों ओर घोषणा करा दीजिए।"

राजा ने तुरन्त पटहवादकों को आदेश दिया कि जो मलया को जीवित करेगा, मैं उसे पांच गाँव पुरस्कार में दूंगा।

पटहवादक उक्त घोषणा पूरे नगर में करके लौटे। पर किसी ने पटह नहीं छुआ। अन्त में एक परदेसी ने पटह पर हाथ रखकर कहा—

"मैं सर्प का विष उतारूँगा।"

परदेसी को लेकर पटहवादक राजा के पास आये। उसे देख राजा कहने लगा—

"मैंने तुम्हें पहले भी कहीं देखा है? क्या नाम है तुम्हारा?"

"मुझे सिद्धेश्वर कहते हैं।" सिद्धेश्वर नामधारी परदेसी ने कहा—"कहाँ देखा है, कब देखा है, इस पर ज्यादा बहस मत दो। यदि आप मेरी शर्त मानें तो मैं सर्पदंश की चिकित्सा करूँगा।

"राजन्! मुझे पांच गाँव नहीं चाहिए। कुछ भी नहीं चाहिए। मुझे अपनी पत्नी चाहिए। जिसको सर्प ने डसा है, वह मलयासुन्दरी मेरी पत्नी है। ठीक करके मैं उसे ले जाऊँगा।"

"उसे हम तुम्हें देने के लिए ठीक नहीं कर रहे।" राजा बोला—"वह हमारे लिए जीवित होगी।"

"लेकिन वह है तो परदारा।" सिद्धेश्वर बोला—"मेरे होते हुए आप मेरी पत्नी कैसे ले सकते हैं?"

"परदेसी की बात ठीक है राजन्!" नगरसेठ रत्नाकर ने कहा—"आपको परदेसी की पत्नी देनी ही पड़ेगी।"

"लेकिन इसका क्या प्रमाण है कि मलया इसी की पत्नी है?" राजा कंदर्पदेव के मन्त्री जीवक ने कहा—"ऐसे तो हरेक कह देगा कि मलया मेरी पत्नी है।"

"जीवित होने के बाद मलया कहेगी कि यह मेरा पति है।" सिद्धेश्वर बोला—"इससे बड़ा प्रमाण और क्या होगा।"

"ठीक तुम्हें है तुम्हारी पत्नी मिल जाएगी।" राजा ने कहा—"लेकिन तब, तुम मेरा एक काम और करोगे। वह काम मैं बाद में बताऊँगा। अब जाकर मलया को ठीक करो।"

राजपरिषद् और प्रजापरिषद्—दोनों परिषदों के सामने राजा कंदर्पदेव पत्नी वाले को उसकी पत्नी देने से इनकार कैसे कर सकता था अतः उसने सिद्धेश्वर को

शर्त स्वीकार कर ली। एक बड़े कक्ष में जाकर सिद्धेश्वर अकेला ही मलया की चिकित्सा करने लगा। उसने सबको बाहर कर दिया था। उधर महामन्त्री जीवक और राजा कंदर्पदेव आपस में सलाह कर रहे थे कि क्या करना है। जीवक मन्त्री ने कहा—

"राजन्! सचमुच अब तो मलया को रखना असम्भव है। यदि अब आप उसे सिद्धेश्वर को नहीं देंगे तो पूरी प्रजा आपके विरुद्ध हो जाएगी।"

"यही तो मैं सोच रहा हूँ।" राजा बोला—"जब इसे मलया के साथ चोंडे पर बैठाकर कुएँ से निकाला था, तब मैंने इसे एक निगाह देखा था। मैं अच्छी तरह पहचान लेता कि यह मलया का वही पति है, जिसकी रस्सी काटकर मैंने जिसे पुनः कुएँ में धकेल दिया था। यदि जान पाता तो मैं इसकी शर्त ही न मानता। बस इतना ही याद रहा कि इसे कहीं देखा है। लेकिन यह कुएँ से निकला कैसे?

"कैसे भी निकला हो, निकल तो आया ही।" जीवक बोला—"आपने क्या सोचा है?"

"मैंने पहले ही उपाय सोच लिया था।" राजा बोला—"मैंने पहले ही कहा था कि इसे मेरा एक काम और करना होगा। मैंने ऐसा काम सोच लिया है, जिसे करते ही मलया का पति सिद्धेश्वर मर जाएगा। फिर तुम-जैसे मन्त्री के रहते मैं असफल हुआ ही कब हूँ?"

× × ×

विषहर मन्त्र के प्रभाव और सर्पमणि के जल से मलया निर्विष हो गई। वह नवकार मन्त्र का जाप करते हुए उठी और महाबल को देख हर्ष से रोमांचित होकर बोली—

"आशा-निराशा का यह कैसा खेल है? आप कुएँ से कैसे निकले? यह मणि आपके पास····?"

"सब कुछ बताता हूँ।" महाबल बोला—"दुःख के दिन कट गए। मैं यहाँ महाबल नहीं हूँ, सिद्धेश्वर बना हुआ हूँ।

"प्रिये! राजा ने रस्सी काटकर मैं कुएँ में गिरा दिया था। उसके बाद एक मणिधारी सर्प आया। यह वही सर्प था, जो तुम्हारे सामने भी मणि लेकर आया था और उसके प्रकाश में तुमने मुझे पहचाना था। उसे मणि के प्रकाश में सर्प ने एक पत्थर पर बार-बार फन मारकर मुझे संकेत दिया कि इसे हटाओ। मैंने पत्थर हटाया तो एक गुप्त द्वार निकल आया। मणि लेकर सर्प मेरे आगे-आगे चला। मैं उसके पीछे चलता गया। उस गुप्त मार्ग से मैं जब बाहर निकला तो वह स्थान श्मशान था। वहाँ एक पीपल का पेड़ खड़ा है। वहाँ भी एक पत्थर रखा था। बाहर निकलकर पत्थर रखकर मैंने द्वार पुनः बन्द कर दिया। वह सर्प मणि को छोड़कर जाने कहाँ

गायब हो गया। मैंने बहुत देर प्रतीक्षा की कि सर्प अपनी मणि ले जाए। जब वह नहीं आया तो मैं मणि लेकर इस नगर में आ गया। रात को मैं एक पांथागार में रुका। सवेरे मैं राजसभा में आ रहा था कि मार्ग में पटहवादक मिल गए। इसके बाद की तो तुम जानती ही हो।"

मलया को ठीक करने के बाद सिद्धेश्वर रूपी महाबल ने कक्ष का द्वार खोला। मलया को साथ लेकर वह राजा के पास पहुंचा। महाबल ने राजा से कहा—

"राजन! अब मुझे अपनी पत्नी के साथ जाने की अनुमति दीजिए।"

"क्या तुम इसकी पत्नी हो?" राजा ने मलया से पूछा—"क्या तुम स्वेच्छा से इसके साथ जा रही हो?"

"ये मेरे पति हैं और मैं इनकी पत्नी।" मलया बोली—"जिस कुएं में आपने मुझे गिरवाया था, तब से भी मेरे साथ थे।"

अब राजा ने महाबल से कहा—

"मैंने मलया को ठीक करने के बदले पांच गांव देने की घोषणा की थी तो क्या यों ही की थी? तुमने मलया को ठीक किया और ले चले। पर मेरा तो कुछ नहीं बना। तुम्हें मेरा एक काम करना होगा। उसके बाद तुम मलया को ले जा सकते हो।"

"आप काम बताएं।" महाबल ने कहा—"मैं जल्दी ही आपका काम पूरा करके जाऊंगा।"

"अभी नहीं।" राजा बोला—"सब लोग रात भर मलया के लिए जगे हैं। मैं भी सो नहीं पाया। अपना काम मैं तुम्हें कल बताऊंगा। मेरा काम पूरा करने के बाद ही मलया तुम्हारी होगी। आज रात तुम नगरसेठ रत्नाकर के यहां रहोगे और मलया राजभवन में।"

मलया को राजभवन जाना पड़ा। महाबल नगरसेठ के साथ चला गया। सब लोग यह सोचकर अपने-अपने घर गए कि कल आकर देखेंगे कि राजा सिद्धेश्वर को क्या काम करने को कहेगा।

× × ×

राजा कंदर्पदेव की राजसभा खचाखच भरी थी। सभी लोग जानना चाहते थे कि यह सिद्धेश्वर है कौन, जिसकी पत्नी मलयासुन्दरी हमारे राजा के कब्जे में है और यह कि राजा उससे क्या काम कराना चाहता है। नगरसेठ के साथ सिद्धेश्वर रूपी महाबल सभा में उपस्थित हुआ। राजा ने बिना किसी पूर्व भूमिका के महाबल से कहा—

"सिद्धेश्वर! तुम बत्तीस लक्षणों से युक्त पुरुष हो। मेरे सिर का दर्द ऐसा है

कि वह बत्तीस लक्षणों से युक्त पुरुष की भस्म के लेप से ठीक होगा। तुम्हें मेरा यही काम करना है।"

राजा का यह काम सुनते ही सभा हाय-हाय करने लगी। लेकिन महाबल विचलित नहीं हुआ। उसने कहा—

"मैं स्वयं अपने को जलाकर अपनी देह की राख आपको दूंगा। लेकिन मेरी शर्त दो होंगी। पहली यह कि जहाँ मैं कहूँगा, वहीं चिता बनेगी और दूसरी यह कि चिता का निर्माण मैं करूँगा।"

"ठीक है चिता तुम बनाओ।" राजा बोला—"चाहे जिस जगह बनाओ। लेकिन अग्नि तो मेरे आदमी देंगे।"

"मेरे साथ आदमी भेजो।" यह कह महाबल चला। उसके पीछे-पीछे काफी भीड़ चली। जिस गुप्त द्वार द्वारा महाबल अंधकूप से श्मशान में बाहर निकला था, उसी द्वार के पत्थर को केन्द्र में रख महाबल ने कुटी के आकार की चिता बनाई। स्वयं उस पत्थर पर बैठा तो लकड़ियों से पूरी तरह ढक गया। किसी को कुछ भी सन्देह नहीं हुआ। हजारों आदमियों के बीच राजा के आदमियों ने चिता में आग लगा दी। महाबल ने झटपट पत्थर हटाया और नीचे सरक गया। उसके आँच की झड़प भी नहीं आई। उपस्थित लोग तो रोने भी लगे। हाय-हाय राजा ने सिद्धेश्वर मार दिया।

मणि के प्रकाश से महाबल गुप्तमार्ग से कूप में पहुँचा। एक रात एक दिन वह कूप में रहा। जब उसने समझा कि अब चिता की राख ठण्डी हो गई होगी तो वह कूप से बाहर निकला। मणि उसने कूप में ही खूँटी के पास यह सोचकर रख दी कि सर्प देव अपनी मणि ले जाएँगे। उन्होंने मेरा काम कर दिया, अब उनकी मणि उनको ही सौंप देनी चाहिए।

बाहर आकर महाबल ने उत्तरीय के छोर में चिता की राख बाँध ली। राख लेकर वह राजसभा की ओर चला। राजा कलादेव और उस जैसा ही धूर्त उसका मंत्री—दोनों बड़े खुश थे कि सिद्धेश्वर हमेशा के लिए भस्म हो गया। जब उन्होंने आशा के विपरीत महाबल को देखा तो चकराकर उसे फटी-फटी आँखों से देखने लगे। उनके आश्चर्य की चिन्ता न कर महाबल ने राजा से कहा—

"राजन्! यह लीजिए राख। आप अपना शिरःशूल ठीक कर लीजिए।"

"लेकिन तुम तो जले ही नहीं?" राजा ने पूछा—"फिर यह राख किसकी है?"

"यह सब धर्म का चमत्कार है।" महाबल ने कहा—"मैं आपके हजारों आदमियों के सामने अपने इष्ट का स्मरण कर चल गया था। इष्ट देव ने चिता पर अमृत छिड़ककर मुझे जीवित कर दिया तो मैं अपनी देह की राख लेकर आपके पास आया हूँ।"

राजसभा में उपस्थित लोगों ने भी महाबल के चिता में जलने का समर्थन किया। अब राजा और मंत्री ने एक दूसरे की ओर देखा। राजा ने कुछ सोचकर कहा –

"सिद्धेश्वर ! एक काम तो तुमने मेरा कर दिया। अब मित्रभाव से मेरा एक काम और कर दो।"

"वह भी कर दूँगा।" महाबल बोला—"काम बताओ।"

"काम तो मुश्किल है।" राजा बोला—"पर तुम्हारे लिए मुश्किल नहीं है, क्योंकि तुम पर अपने इष्ट की कृपा है।

"सिद्धेश्वर ! उत्तर दिशा में छिन्नकटक नामक एक पर्वत है। उसके शिखर पर एक सदाबहार आम्रवृक्ष है। वहाँ से कुछ आम ले आओ। मुझे पित्त प्रकोप है। पित्तशमन की औषध आम्र रस में ली जाएगी।"

महाबल चल दिया। उसे पहुँचाने राजा का एक आदमी साथ चला। पर्वत के पास पहुँचकर राजा के आदमी ने दूर से ही महाबल को आम्रवृक्ष दिखा दिया। बड़ी मुश्किल से महाबल पहाड़ पर चढ़ा। आम्रवृक्ष तक जाने के लिए एक गहरी खाई को पार करना था। महाबल ने नवकार का स्मरण कर छलांग लगा दी। उसे किसी अज्ञात शक्ति ने खाई में गिरने से बचाकर हाथों में उठाकर आम्र वृक्ष तक पहुँचा दिया। फिर उसे देह धारण कर दर्शन दिये तो महाबल ने पूछा—

"आप कौन है ?"

"मैं वही नगरश्री हूँ, जिसने तुम्हें स्वर्णकूप की सिद्धि के लिए उत्तरसाधक बनाया था।" वह देवधारी व्यन्तर बोला—"मरकर मैं व्यन्तर देव बना हूँ और इसी आम्रवृक्ष पर मेरा वास है। लेकिन तुमको यहाँ क्यों आना पड़ा ?"

महाबल ने राजा कंदर्पदेव की बीमारी व्यन्तर देव को बता दी। व्यन्तर देव बोला—

"तुम आम तोड़ लो। मैं अदृश्य रूप से तुम्हारे साथ रहूँगा। तुम चिंता मत करो। मैं राजा और मंत्री दोनों को पाठ पढ़ाऊँगा।"

महाबल ने पर्याप्त आम तोड़कर उत्तरीयवस्त्र के छोर में बाँध लिये। व्यन्तर देव ने उसे आकाशमार्ग से सागरतिलक नगर में पहुँचा दिया। वहाँ पहुँचकर महाबल ने एक टोकरी खरीदी और उसमें आम रखकर राजसभा की ओर चल दिया। आमों की टोकरी राजसभा में रखकर महाबल ने राजा से कहा—

"मैंने आपका काम कर दिया। अब मेरी रक्षा मुझे दीजिए।"

राजा ने मंत्री जीवक से आम उठाने को कहा तो टोकरी में आवाज निकली—

"राजा को खाऊँ या मंत्री को ?"

यह आवाज सुनकर राजा बोला—

"ये आम छिन्नकटक पर्वत वाले वृक्ष के नहीं हैं। ये जादू के आम हैं। तुमने जादू से इन्हें बनाया है।"

"नहीं राजन् ! ये वास्तविक आम हैं।" महाबल बोला—"आप खाकर तो देखिये।"

मंत्री साहस करके टोकरी के पास गया तो टोकरी में से आग निकली, जिसकी लपटें बहुत ऊँची उठने लगीं। उस अग्नि ने मंत्री को भस्म कर दिया। अब तो राजा बहुत भयभीत हुआ। उसने महाबल से प्रार्थना की इस अग्नि को शान्त कीजिए। महाबल ने व्यन्तर देव से प्रार्थना की तो टोकरी की अग्नि शान्त हो गई और पुनः पीले-पीले आम दिखने लगे। लेकिन राजा उन्हें छूने तक का साहस नहीं कर सका।

दूसरी बार भी राजा महाबल को मार नहीं पाया। तब उसने एक सेवक के कान में कुछ कह दिया। थोड़ी देर बाद एक सेवक भागा हुआ आया और राजा से बोला—

"अन्नदाता ! आपकी घुड़साल में भयंकर आग लग गई है।"

राजा ने महाबल से कहा—

"सिद्धेश्वर ! आप तो असंभव कार्य को भी संभव करके दिखा देते हैं। मेरे घोड़ों को बचा लीजिए। मेरा परमप्रिय पंचकल्याणक घोड़ा जल जायगा।"

व्यन्तर ने महाबल के कान में कहा—

"निर्भीक होकर आग में घुस जाओ। तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं होगा।"

व्यन्तर के आश्वासन से प्रसन्न होकर महाबल ने राजा से कहा—

"राजन् ! ऐसी आग से बचना असंभव है। लेकिन मैं आपका यह काम भी करूँगा। लेकिन आपका यह तीसरा और अंतिम कार्य होगा। इसके बाद मैं आपका कोई काम नहीं करूँगा।"

यह कह महाबल आग लगी हुई घुड़साल में घुस गया। वह सभी घोड़ों को बाहर ले आया। राजा का प्रिय अश्व पंचकल्याणक भी उसने जलने से बचा लिया। दरअसल व्यन्तर देव ने ही सब घोड़ों को बचाया था। उसने महाबल का बाल भी बाँका नहीं होने दिया।

व्यन्तर देव ने महाबल को दिव्य वस्त्र और आभूषण दिये। राजा महाबल को देख चकरा गया। फिर बोला—

"चलते-चलते एक काम और कर दो। मैं चाहता हूँ कि मैं पीठ की ओर से भी देखने लगूँ।"

व्यन्तर ने महाबल के कान में कुछ कहा तो महाबल ने एक झटका देकर राजा की गर्दन पीछे घुमा दी। उसकी आँखें अब पीठ की ओर हो गईं। पीड़ा के मारे राजा चीखने लगा और चिल्लाया—

"मुझे पहले जैसा कर दो। अब मैं कुछ नहीं करूँगा।"

महाबल ने पुनः उसका सिर घुमाकर पेड़ की ओर कर दिया और राजा से कहा—

"राजन्! मलया को विदा होने से पहले मैं तुम्हारे हित की एक बात बताता हूँ। इस समय यदि तुम अपनी धुड़साल में घुसोगे तो जलोगे नहीं। मेरी तरह दिव्य वस्त्राभूषण धारण करके निकलोगे। साथ ही तुम्हें दीर्घ जीवन तथा चिरयौवन मिलेगा।"

राजा तैयार हो गया। उसके साथ और लोग भी धुड़साल की आग में जाने को तैयार हुए, पर महाबल ने सबको रोक दिया कि एक-एक करके ही जाना होगा। पहले राजा को जाने दो।"

राजा गया और हाय-हाय करके मर गया। महाबल ने राजसभा में सबसे कहा—

"अब मैं आपका कौन बचा है? आपका राजा और मंत्री—दोनों अतिशय दुष्ट थे। दोनों जल गये। अब तुम उनकी अंतिम क्रिया करो।"

"अंतिम क्रिया तो उसकी वस्तुतः हो ही गई।" नगर सेठ ने कहा—"जो जैसा करता है, वैसा पाता है। इस राजा ने परस्त्री को अपनाने की जो कोशिश की थी, वह बहुत बड़ा पाप था। उसका फल उसने पा लिया।"

दिवंगत राजा कंदर्पदेव की अन्य रानियों ने सुना तो वे विलाप करने लगीं। महाबल और मलया—दोनों ने उन्हें धीरज बँधाया। राजा कंदर्पदेव के कोई संतान नहीं थी। अतः सभी ने महाबल को राजसिंहासन पर बैठा दिया। महाराज सिद्धेश्वर की जय-जयकार होने लगी। महाबल सिद्धेश्वर के नाम से अब सागरतिलक का राजा था। राजसिंहासन पर मलया उसके पास बैठी थी मानो इन्द्र और शची की जोड़ी हो।

३५

मलया और राजा की अच्छी पट गई। मलया अब महारानी थी और राधा वैसे पहले दासी थी, वैसे ही अब थी। पर पहले वह राजा के लिए मलया को प्रेरणा

देती थी और अब मलया रानी के संकेतों पर नाचने के लिए बाध्य थी। राधा ने स्वयं ही मलया से क्षमा माँगी—

"महारानी जी! आपके तो रोज पैर धोकर पीने चाहिए। मैं आपको पहचान नहीं पाई थी।"

"नारी होकर भी तुमने नारीत्व को नहीं पहचाना?" मलया बोली—"जो नारी भौतिक सुखों को महत्व देती है, वहीं अपने नारीत्व को भूलती है। सतीत्व और नारीत्व पर्यायवाची हैं।

"राधा! सतीत्व-पालन के कारण ही आज मैं यहाँ की रानी हूँ। लेकिन जैसे सोना आग में तपकर कुन्दन बनता है, वैसे ही सती का सतीत्व भी दुःखों में तपकर अपना प्रभाव दिखाता है।

"राधा! तू तो मेरी सखी है। तूने भी मेरी मदद की थी। यदि तू मुझे पुरुषवेश लाकर न देती तो मैं अपने सतीत्व की रक्षा कैसे कर पाती?"

एक दिन महाबल ने दिवंगत राजा कंदर्पदेव की आठों रानियों को इकट्ठा करके कहा—

"माताओ! राजा के बाद उसका पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी होता है। मैं चूँकि राजा कंदर्पदेव के बाद उनके राजसिंहासन पर बैठा हूँ, इसलिए उनके पुत्र-तुल्य हुआ। अतः आप सभी मेरी माता यानी राजमाताएँ हैं।

"माताओ! इस महल में आपकी स्थिति राजमाताओं की ही है। मलया आप आठों की पुत्रवधू है। राज्य में मेरा शासन है तो राजमहल में आपका—आठों राजमाताओं का शासन चलेगा। आप मुझे आज्ञा देने में कभी संकोच मत करना।

"मैं बहुत भाग्यशाली हूँ, जो आठ-आठ राजमाताओं का प्यार पाऊँगा।"

"भाग्यशालिनी तो हम आठों हैं।" एक रानी ने कहा—"अपनी कोख से जन्मे हम आठ पुत्रों से भी वह सुख-सम्मान न पातीं; जो आठों एक तुम-जैसे पुत्र से पा रही हैं। तुम यशस्वी बनो, यही हमारी कामना है।"

इस तरह महाबल ने घर के भीतर और बाहर नगर की व्यवस्था ठीक की। उसने अमारी पटह बजवाकर आखेट का निषेध करा दिया। कोई भारवाही गधे, खच्चर, बैलगाड़ियों आदि में एक निश्चित सीमा से अधिक बोझ नहीं रख सकता था। सिद्धेश्वर रूपी महाबल दस दिन में ही प्रजा का चहेता राजा बन गया।

× × ×

सार्थवाह बलसार ने मलया काक सरदार को बेच दी थी और वह बहुत खुश हुआ था कि मलया से मैंने बदला ले लिया। राजा कंदर्पदेव के लिए उसने काफी माल भरकर जहाज में रखा और अपने नगर को लौट आया। सागरतिलक नगर

के बन्दरगाह पर ही उसने सुना कि जिस राजा के लिए वह माल लेने समुद्र पार गया था, उसे तो सिद्धेश्वर नाम के किसी व्यक्ति ने मार दिया और स्वयं राजा बन बैठा है।

बलसार ने बन्दरगाह पर माल उतरवाया और छकड़ों में भरवाकर अपनी हवेली को चला। माल उसने गोदामों में भरवाया और सेठानी प्रियंगुसुन्दरी से मिला। फिर बलसुन्दर को देखा और पत्नी से बोला--

"सुना है कोई नया राजा हो गया है। पहले राजा से तो मेरे निजी सम्बन्ध थे। नये राजा से भी मेलजोल करना चाहिए।"

"यह राजा बहुत अच्छा है।" सेठानी प्रियंगुसुन्दरी ने कहा--"रात को ऐसा वेश बनाता है कि कोई पहचान नहीं पाता। वेश बदलकर वह प्रजा के सुख-दुख का पता लगाता है। सुना है कि उसके पास रूप बदलने वाली कोई गुटिका है। हमारे नगर की प्रजा के पुण्यों का उदय हुआ है, जो उसे ऐसा प्रजावत्सल राजा मिला।"

"तुमने देखा है उसे?" बलसार बोला--"मैं तो उसी को अच्छा मानता हूं, जो मेरे लिए भी अच्छा हो। राजा कंदर्पदेव तो मेरे लिए बहुत अच्छा था।"

"यह राजा व्यापारियों के लिए भी बहुत अच्छा है।" सेठानी बोली--"इसने वनों में चौकियां स्थापित करने की घोषणा की है, जिससे व्यापारियों के साथ दस्युओं द्वारा वनमार्ग में नहीं लूटा करेंगे।

"स्वामी! नये राजा सिद्धेश्वर की शोभायात्रा नगर में निकली थी। तभी मैंने उसको देखा था। साथ में उसकी रानी भी थी। दोनों खुले रथ में बैठे थे। पूर्व राजा कंदर्पदेव ने वर्तमान राजा सिद्धेश्वर की रानी का अपहरण किया था। उसी ने इस राजा ने कंदर्पदेव राजा को मार दिया।"

"अच्छा तो मैं भी नये राजा को बाहर से लौटने के उपलक्ष में कुछ भेंट उपहार देकर आता हूं। जिस राजा की तुमने बहुत प्रशंसा की है, उसको मैं भी देख आऊं।"

रत्नादि की भेंट लेकर श्रेष्ठी बलसार राजसभा में पहुंचा। उसने राजा को नमन किया तो उसकी दृष्टि मलया पर पड़ी। बलसार हक्का-बक्का होकर देखने लगा--'यह सुन्दरी यहां कैसे? इसे तो मैं कारु सरदार के हाथों...।'

मलया ने धीरे से महाबल को बताया--

"स्वामी, यही है श्रेष्ठी बलसार, जिसने हमारे पुत्र बलसुन्दर को ले लिया है। इसने मुझे बहुत सताया था।"

राजा महाबल ने जोर से कहा--

"बलसार! मलया को तुमने पहचाना? तुमने जो कुछ किया, उसका दण्ड मृत्यु भी कम है। तुम्हारे अपराध का न्याय निर्णय तो बाद में होगा, फिलहाल तुम्हें बन्दी बनाया जाता है।"

बलसार सिटपिटाने लगा। खड़े-खड़े ही उसके मस्तिष्क में एक षड्यंत्र सोच गया। उसने बड़ी नकली विनम्रता से कहा—

"अन्नदाता! मुझे मारें या छोड़ें, मैं आपकी दीन प्रजा हूं। मुझे जीवनभर बन्दीगृह में रखें, पर मेरी एक प्रार्थना सुन लें।

"पृथ्वीनाथ! मैं अभी-अभी परदेश से लौटा हूं। मैं अच्छी तरह से अपनी पत्नी से मिल भी नहीं पाया। मुझे आज के दिन अपनी पत्नी के पास रहने की अनुमति दें, फिर बन्दीगृह में डलवा दें।"

बलसार की प्रार्थना सुनकर महाबल मलया की ओर देखकर मुस्कराया। मलया भी मुस्कराई और धीरे से बोली—

"इसके सिर का दण्ड इसकी पत्नी को क्यों दें। इसे आज का दिन और आज की रात पत्नी के पास रहने दें।"

महाबल ने बलसार को घर जाने की अनुमति दे दी। वह अपने घर चला गया तो महाबल ने उसके घर के चारों ओर गुप्त पहरा बैठा दिया, जिससे वह रात को भाग न जाए।

बलसार अपनी पत्नी को सुख देने घर नहीं गया था। वह अपने एक षड्यंत्र को साकार रूप देने गया था। पत्नी के पास रहने के बहाने उसने षड्यंत्र को साकार करने के लिए एकान्त और अवकाश प्राप्त किया था।

श्रेष्ठी बलसार ने एक पत्र लिखा। उस पत्र को बन्द किया और अपना एक विश्वस्त सेवक रवाना कर दिया। पास बैठी प्रियंगुसुन्दरी ने पूछा—

"आपने किसको पत्र भेजा है?"

"सभी बातें पहले नहीं बताई जातीं।" बलसार बोला—"राजा सिद्धेश्वर अब मुझे प्राणदण्ड दे तो भी चिन्ता नहीं है। मेरे मरने के बाद भी सिद्धेश्वर याद करेगा कि मुझे बलसार से पाला पड़ा था।

"प्रिये! अब राजा सिद्धेश्वर को बन्दी बनाया जाएगा, तब वह समझेगा कि मैंने बलसार को बन्दी बनाकर अच्छा नहीं किया।"

"आप अपनी पत्नी से भी बात छिपा रहे हैं।" सजनी प्रियंगुसुन्दरी बोली—"आपकी पहेलियों को मैं क्या समझूं?"

"तो सुन!" बलसार बोला—"मैं तुझे समझाता हूं अपनी पहेली। एक गांव के धूर्त की कहानी सुनाता हूं। कहानी यों है कि किसी गांव में एक दुष्ट व्यक्ति रहता था। वह गांव की बहू-बेटियों को तंग करता, बच्चों को पीट देता। घरों की चोरियां करता। गांव वाले उससे परेशान थे।

"वह धूर्त जब मरने को हुआ तो उसने गांव वालों के हाथ जोड़े और प्रार्थना की कि मैंने आप लोगों को बहुत सताया है। मरते समय मेरी एक इच्छा पूरी कर

दी। मरने वाले की इच्छा पूरी करनी चाहिए, यह सोचकर गाँव वालों ने उस धूर्त को वचन दे दिया। वचन लेकर धूर्त ने गाँव वालों से कहा—अब मैं मर जाऊँ तो तुम मेरे शव के मुँह में खूँटा ठोक देना। इससे मेरी आत्मा मेरे मुँह में खूँटा ठुका देखेगी तो उसे बड़ी शान्ति मिलेगी। यह मेरे पापों का प्रायश्चित्त होगा।

"प्रियंगुसुन्दरी! वह धूर्त मर गया। गाँव वालों ने उसके मुँह में खूँटा ठोक दिया और अर्थी बनाकर उसे श्मशान की ओर ले चले। मार्ग में राजा के सैनिक मिल गए। उन्होंने खूँटा ठुके शव को देखकर गाँव वालों पर आरोप लगाया कि तुमने मुँह में खूँटा ठोककर इस व्यक्ति की हत्या की है। गाँव वालों ने सफाई दी कि उसी ने कहा था कि मरने के बाद मेरे मुँह में खूँटा ठोक देना। इस पर राजा के सैनिक बोले—तुम झूठ बोलते हो। अपने अपराध पर पर्दा डाल रहे हो। कोई भी व्यक्ति यह कैसे कह सकता है कि मेरे मुँह में खूँटा ठोक देना? तुमने उसकी हत्या की है।

"प्रियंगुसुन्दरी! राजा के सैनिकों ने गाँव वाले जो अर्थी के साथ थे—सबको बन्दी बना लिया। बन्दीगृह में पड़े गाँव वालों ने आपस में कहा—वह कितना धूर्त था। जीते-जी तो दुखी करता ही था, मरने के बाद भी बन्दीगृह में डाल गया।

"तो प्रियंगुसुन्दरी! राजा सिद्धेश्वर भी यही सोचेगा कि बलसार ने मेरे पुत्र का अपहरण किया, मेरी पत्नी को भी सताया। मैंने उसे बन्दीगृह में डाल दिया तो भी ऐसा कर गया कि अब मैं ही बन्दी हो गया हूँ। यह सब तुम ज्यादा नहीं, पन्द्रह-बीस दिन बाद देख लेना।"

अपना काम करके बलसार आराम से सोया। दूसरे दिन महाबल के सैनिकों ने उसे बन्दी बनाया और बन्दीगृह में डाल दिया। बलसार के षड्यंत्र की महाबल को कल्पना भी नहीं थी पर धूर्तों का स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे मरते-मरते भी पाप किया करते हैं। उस साधु की कहानी को कौन नहीं जानता जिसने बार-बार डंक मारने पर भी एक बिच्छू को बचाते हुए कहा कि बिच्छू मरते-मरते अपना स्वभाव नहीं छोड़ रहा, बार-बार डंक मार देता है तो मैं साधु होकर अपना स्वभाव क्यों छोड़ूँ? मैं भी इसे बार-बार बचाऊँगा।

महाबल ने दूसरे दिन अपने सेवकों को भेजकर अपना पुत्र बलसुन्दर लाने को कहा तो पता चला कि सेठानी प्रियंगुसुन्दरी बलसुन्दर को लेकर जाने कहाँ चली गई है।

□

३६

चन्द्रावती के राजा वीरधवल ने अपना एक दूत पृथ्वीस्थानपुर के राजा सुरपाल के पास भेजा। दूत ने बताया कि महाराज वीरधवल ने आपको याद किया है। काम बहुत जरूरी है और आपके वहीं जाने पर होगा। राजा सुरपाल मलया और महाबल के दुःख से वैसे ही दुखी थे। चन्द्रावती नगरी में कुछ भला बहुत आएगा, यह सोच वे दूत के साथ ही चल दिये।

महाराज वीरधवल ने महाराज सुरपाल का स्वागत किया और उन्हें अलग एकान्त कक्ष में ले गए। सुरपाल राजा ने पूछा--

"क्या महाबल-मलया का कोई पता चला?"

"कोई पता नहीं चला।" राजा वीरधवल बोले--"अनंगसेना ने मेरे यहां मलया पर जो दाँव चलाया था, उससे तो बड़ बच गई। पर उसने आपके यहाँ भी अपनी चाल चलकर मलया को मौत के मुँह में पहुँचा दिया।"

"उस बिचारी का क्या दोष है?" राजा सुरपाल बोले—"मेरी ही बुद्धि पर पत्थर पड़ गए थे, जो उसकी बातों में आ गया।"

"मैं भी तो उसकी बातों में आ गया था।" राजा वीरधवल बोले—"जब बुरे दिन आते हैं तो अपना शत्रु भी मित्र दिखाई देता है।"

"आपने अचानक बुलाया तो मैंने समझा कि महाबल और मलया का कोई सूत्र मिल गया होगा।" राजा सुरपाल बोले—"पर यहां आकर भी निराश होना पड़ा। एक आशा के सहारे जीवित हूँ कि महाबल उसे लेकर जरूर आयेगा। वरना मैं तो बार-बार चिताशयन करने की सोचता हूँ।"

"मैंने एक जरूरी काम से आपको याद किया था।" राजा वीरधवल कहने लगे—"सागरतिलक नगर का राजा कंदर्पदेव मारा गया है। वहाँ सिद्धेश्वर नाम का कोई राजा राज्य करने लगा है। उसे अभी ज्यादा दिन नहीं हुए हैं। उस नये राजा पर हम दोनों मिलकर चढ़ाई करें तो उसे हराकर अपना अधीनस्थ राजा बनाकर छोड़ देंगे।"

"लेकिन यह क्या जरूरी है कि हम जीत ही जाएँ?" राजा सुरपाल ने कहा—"यदि हार गए तो?"

"बलसार नाम के एक श्रेष्ठी का दूत उसका पत्र लेकर मेरे पास आया था।" राजा वीरधवल बोले—"बलसार श्रेष्ठी ने लिखा है कि सिद्धेश्वर नाम के राजा ने मुझे कैद में डाल दिया है। इस समय अवसर अच्छा है। सिद्धेश्वर अभी राज्य

व्यवस्था को ठीक करने में लगा है। आप तुरन्त आक्रमण करके उसे सिंहासन से हटाइए और मुझे भी मुक्त कराइए।

"बलसार श्रेष्ठी ने तो मुझे अकेले को बुलाया है। जब हम दोनों चलेंगे तो जीत निश्चित है। राजा कंदर्पदेव हम दोनों का ही शत्रु था। आगे चलकर सिद्धेश्वर भी हमारा सिरदर्द न बन जाए, इसलिए इसे काबू में करना चाहिए।"

"ठीक है। मैं अब पृथ्वीस्थानपुर जाता हूं।" राजा सुरपाल बोले—"अपनी चतुरंगिणी सेनाएँ लेकर मैं उधर से चलता हूं। आप यहां से चलिए। हम दोनों की भेंट सागरतिलक नगर के रास्ते में होगी।"

× × ×

राजा वीरधवल और राजा सुरपाल—दोनों राजाओं की सेनाओं ने सागरतिलक नगर से तीन कोस दूर अपना पड़ाव डाल दिया। फिर एक दूत को सिद्धेश्वर स्वामी महाबल के पास भेजा। दूत ने महाबल से कहा—

"राजन्! मैं दो राजाओं का दूत आपको यह संदेश देने आया हूं कि आप बलसार श्रेष्ठी को सम्मान सहित मुक्त कर दीजिए, वरना महाराज वीरधवल और महाराज सुरपाल से युद्ध कीजिए।"

"क्षत्रिय युद्ध को क्रीड़ा समझते हैं।" महाबल ने दूत से कहा—"वैसे युद्ध को मैं विनाश मानता हूं। पर जरूरत पड़ने पर यह खेल खेलने में मुझे बड़ा आनन्द आता है।

"दूत! बलसार मेरा जघन्य अपराधी है। उसे मैं मुक्त नहीं कर सकता। यह मेरे राज्य का अन्तरंग मामला है।"

महाबल की बात दूत ने दोनों राजाओं को बता दी। सुनते ही दोनों राजा उत्तेजित हो गए। दोनों की सेना आगे बढ़ी और नगर के निकट मैदान में दूसरा पड़ाव डाला। महाबल को भी पता चल गया कि मेरे पिता और श्वसुर दोनों युद्ध करेंगे। उसने भी अपनी थोड़ी-सी सेना सजा ली, जो विपक्ष की दोनों सेनाओं का दसवाँ भाग थी। दूसरे दिन सवेरे ही वीरधवल और सुरपाल राजाओं ने युद्ध का शंख फूंका। दो-दो शंख एक साथ बजे। महाबल ने भी शंख फूंका। महाबल की सेना को देखकर दोनों राजा हँसे कि इतनी सेना कितनी देर टिकेगी।

महाबल ने व्यन्तर देव को अपनी समस्या पहले ही बता दी थी कि मुकाबला अपने स्वजनों से है। मैं एक सैनिक का भी विनाश नहीं चाहता और हारना भी नहीं चाहता। व्यन्तर ने आश्वासन दे दिया था कि जो चाहोगे वही होगा। इसीलिए महाबल ने अपनी सेना बहुत थोड़ी रखी थी।

दोनों ओर से युद्ध शुरू हुआ। व्यन्तर ने दोनों ओर से छूटने वाले बाण बीच में ही ले लिये। विपक्ष के हाथी, घोड़े और पैदल सैनिक स्तंभित कर दिये।

वीरधवल और सुरपाल राजा घबरा गये । फिर महाबल ने दो पत्र लिखकर बाणों में बिद्ध करके दो बाण वीरधवल और सुरपाल के पास अभिमंत्रित करके छोड़े । बाणों ने दोनों राजाओं की तीन-तीन परिक्रमा दीं और उनकी गोद में आ गिरे । राजाओं ने बाणों से पत्र निकाल कर पढ़े । उनमें लिखा था—"सिद्धेश्वर नाम आपके लिए अनजाना है, पर महाबल नाम तो जाना-पहचाना है । महाबल आप दोनों में से एक का पुत्र और एक का जामाता है । एक की पुत्री और एक की वधू मलया यहाँ की रानी है । श्रेष्ठी बलसार और राजा कंदर्पदेव ने आपकी मलया को बहुत सताया है । राजा तो अपनी मौत मारा गया और श्रेष्ठी कारागार में है । उसने मलया के अंगजात बलसुन्दर को छिपा दिया है । मैं आपके स्वागत की तैयारी कर रहा हूँ, आप यह खिलवाड़ बन्द कीजिए ।

"पूज्यो ! अपनों से युद्ध नहीं किया जाता । यदि विचार करके देखा जाए—ज्ञान-विराग के नेत्रों से देखा जाय तो सभी अपने हैं—पराया तो कोई भी नहीं है । अतः युद्ध तो किसी से भी नहीं करना चाहिए । युद्ध अहंकार का उन्माद मात्र है । हमें तो अपने अन्तरंग शत्रुओं से लड़ना है, क्योंकि उन्होंने हमारे अन्तरंग राज्य पर कब्जा कर लिया है । ये अन्तरंग शत्रु बहुत हैं—क्रोध, हिंसा, लोभ, काम, मान, माया आदि तो हैं ही, इनके पुत्रादि भी बहुत हैं । इन्होंने दया, मैत्री, अहिंसा आदि हमारे मित्रों को भी दबा रखा है ।"

यह पत्र पढ़ते ही दोनों राजा खिल उठे । दोनों राजाओं ने श्वेत ध्वज लहरा कर युद्ध बंदी की घोषणा कर दी । महाबल ने अपने मुँह में से रूप परिवर्तिनी गुटिका निकाली और निज रूप में आ गया । उसने अपना रूप बदल लिया था, इससे राजा वीरधवल और सुरपाल उसे पहचान नहीं पाये थे ।

महाबल ने दोनों राजाओं का स्वागत किया । पूरे नगर भर को पता चल गया कि हमारा राजा सिद्धेश्वर पृथ्वीस्थानपुर का युवराज महाबल है । महाबल ने दो दूत पृथ्वीस्थानपुर और चन्द्रावती नगरी भेज दिये, जिससे महारानी पद्मावती और महारानी सौदामिनी को सब जानकारी हो जाए । इसके बाद महाबल ने विशेष सभा जोड़ी, उसमें नगर के भी काफी लोग आये—स्त्रियाँ भी आईं । सबके सामने बलसार को खड़ा करके महाबल ने उसकी करतूत बताईं । सब उसे थू-थू, धिक्-धिक् करने लगे । बुरे का अन्त सदा बुरा ही होता है । बलसार बुरा था । उसका अन्त भी बुरा होना था । दयालु महाबल ने उसे प्राणदण्ड तो नहीं दिया, पर उसकी सब सम्पत्ति जब्त करके नगर से बाहर निकाल दिया । मलया को अपना पुत्र बलसुन्दर मिल गया । उसके मिलते ही मलया की ममता उसके स्तनों से दूध बनकर बहने लगी । सब कुछ भूलकर मलया बलसुन्दर को स्तनपान कराने लगी ।

मलया, महाबल, वीरधवल और सुरपाल अपनी-अपनी आपबीती एक दूसरे को सुनाने लगे । कई दिन तो इस कहने-सुनने में ही बीत गए । अब सब सुखी थे । दुःख

का अँधेरा पुण्यरूपी सूर्योदय से ही दूर होता है। मलया और महाबल के पुण्यों का सूर्य उदित हो चुका था।

× × ×

महाबल-मलया के जीवन की सरिता बहुत दूर तक बह चुकी, अब थोड़ी और रही है। मोक्षरूपी सागर तक जाने में हर व्यक्ति का यही विचार काम देता है—बहुत गई, थोड़ी रही।

कंदर्पदेव के मंत्री जीवक के मर जाने के बाद महाबल ने नये मंत्री को नियुक्त कर लिया था। उसको सागरतिलक नगर की राजव्यवस्था सौंप कर वह अपने पिता और श्वसुर के साथ जाने की तैयारी कर चुका था। नित्य की भाँति महाबल प्रातःकाल राजसभा में पहुँचा। मलया भी उसके पास अपने अर्धासन पर विराज रही थी। राजा वीरधवल और राजा सुरपाल यथास्थान ही आसनों पर बैठे थे। उसी समय राजोद्यान के माली—उद्यानरक्षक ने सूचित किया कि उद्यान में केवली सुयश मुनि पधारे हैं। यह सुनते ही महाबल-मलया की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। दोनों ने मुनि की भाव वंदना की और पूरे नगर में केवली भगवान के पदार्पण की घोषणा करवा दी। राजा महाबल अपने पिता, श्वसुर और पत्नी के साथ केवली मुनि की देशना सुनने पहुँचा।

केवली भगवान् अपने समवसरण में देशना देने लगे। श्रोता उनकी अमृतवाणी को मुग्ध होकर सुनने लगे। केवली भगवान ने कहा—

"भव्य जीवो ! जगत और जीवन खेल मात्र है। जब ऐसी दृढ़ धारणा हो जाती है, तभी खेल खत्म हो जाता है। आप स्वप्न देखते हैं; कितना हँसते हैं, रोते हैं; विषम परिस्थिति में फँस जाते हैं। आपको कोई कूल-किनारा नहीं मिलता। आप भय से आर्तनाद करके चीख उठते हैं। आपकी विचार बुद्धि नष्ट हो जाती है। अद्भुत कार्य भी आपको सत्य और स्वाभाविक मालूम पड़ते हैं। लेकिन जैसे ही निद्रा भंग हुई और और मन में यह विचार आया कि यह तो स्वप्न था, तभी आप प्रकृतिस्थ होकर सोचते हैं—अरे यह तो मैंने स्वप्न देखा था।

"भव्य जीवो ! इसी तरह जब आप सुस्वप्न देखते हैं तो रंक से राजा हो जाते हैं। झोंपड़ी भवन में बदल जाती है। आप सोने के बरतनों में भोजन करते हैं। फिर जब स्वप्न भंग होता है तो आप निराश हो जाते हैं। आप मन मसोसकर रह जाते हैं।

"हमारा जीवन भी यदि लम्बा—खिंचा हुआ स्वप्न नहीं है तो और क्या है ? दुःस्वप्न, सुस्वप्न—दोनों आशा-निराशा और सुख-दुख के ही ताने-बाने हैं। जब तक हम स्वप्न देख रहे हैं, सब सत्य है, ऐसा मालूम पड़ता है। स्वप्न के नष्ट होते ही जगत्-संसार न मालूम कहाँ उड़ जाता है; तब केवल नित्य सत्य स्वरूप ही विद्यमान् रहता है।"

केवली भगवान सुवर्ण मुनि की देशना समाप्त हुई। श्रोता वन्दना कर उठने लगे। लेकिन राजपरिवार बैठा रह गया। कृतज्ञ होकर महाबल ने केवली भगवान को अपने जीवन के कुछ अंश सुनाकर कहा—

"प्रभो! आप तो सर्वज्ञ हैं। मेरे-अपने—सबके पूर्व और पर भव को जानते हैं। मैंने और मलया ने पूर्वभव में ऐसा क्या किया था जो इस भव में इतने भारी उतार-चढ़ाव देखे। हम दोनों जीवित हैं—मरे नहीं, पर मरने वालों से अधिक कष्ट भोगे हैं।"

"राजन्! मैं तुम्हारा और रानी मलया का पूर्वभव तुम्हें सुनाता हूँ। उसे सुनकर सब स्पष्ट हो जाएगा। अपना कर्मबंध जानने के बाद बाहरी कारण या निमित्त स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं। फिर किसी से कोई शिकायत नहीं रहती। फिर मनुष्य अपने से ही शिकायत करके कहता है—

रे मन! बहुत गई थोड़ी रही, थोड़ी भी अब जाय।
मरने पर फिर क्या रहे, जीव पकड़ पछिताय।"

इसके बाद केवली मुनि सुवर्णसूरि महाबल तथा मलया का पूर्वभव सुनाने लगे। राजा वीरधवल और राजा सुरपाल भी ध्यान देकर सुनने लगे।

× × ×

पृथ्वीस्थानपुर नगर में प्रियमित्र सेठ का एक सद्गृहस्थ रहता था। जैसा उसका नाम था, वैसा ही वह बन्धु-बान्धवों, ग्राम-पड़ोस और नगर के लोगों को प्रिय था। वह मित्र की तरह सबके काम आता था। धन की उसे कोई कमी नहीं थी। वह अपार सम्पत्ति का स्वामी था।

धनी लोग प्रायः एक से अधिक विवाह करते हैं। प्रियमित्र ने भी तीन विवाह किये। रुद्रा, भद्रा और प्रीतिमती—ये उसकी पत्नियों के नाम थे। प्रियमित्र की तीनों पत्नियाँ यद्यपि सुन्दर थीं, पर प्रीतिमती न केवल सुन्दर थी, वरन् वह पति के प्रति पूर्णतः समर्पित और उसकी अनुगामिनी थी। प्रियमित्र भी प्रीतिमती को अधिक प्यार करता था। उसकी अधिकांश रातें प्रीतिमती के साथ ही बीतती थीं। रुद्रा-भद्रा प्रीतिमती से सौतिया डाह रखती थीं और दोनों मिलकर रहती थीं। जैसे प्रियमित्र और प्रीतिमती में पारस्परिक प्रेम था, वैसा ही प्रेम रुद्रा-भद्रा में था। वे सौत होकर भी सगी बहनों की तरह रहती थीं और प्रीतिमती को नीचा दिखाने के अवसर ढूंढा करती थीं। पर कहावत है कि जिसको पिया चाहे, वही सुहागिन। अतः रुद्रा-भद्रा प्रीतिमती का कुछ नहीं बिगाड़ पाती थीं। प्रियमित्र जहाँ भी जाता, प्रीतिमती को ही साथ ले जाता।

प्रियमित्र का एक मित्र था। उसका नाम था मदनचंद। पहली बार मदनचंद प्रियमित्र के घर आया तो प्रीतिमती ने ही उसके लिए भोजन बनाया। मदनचंद उसको देखकर उस पर आसक्त हो चुका था, अतः बार-बार उसके भोजन की तारीफ

करने लगा। उसने बड़े अनोखे ढंग से भोजन के स्वाद की बात चलाई—

"भाभी ! अपने हाथ का भोजन खिलाकर तुमने अच्छा नहीं किया। तुमने आज किस जन्म की शत्रुता निकाली है।"

यह सुनते ही प्रीतिमती कुछ असमंजस में पड़ गई। सोचने लगी, 'शायद दाल में नमक ज्यादा पड़ गया हो।' वह कुछ जवाब नहीं दे पाई कि उससे पहले प्रियमित्र बोल उठा। वह भी मदनचंद के साथ बैठा भोजन कर रहा था। उसने कहा—

"अरे मित्र ! इतना स्वादिष्ट भोजन बनाया है और तू अपनी भाभी के भोजन की बुराई कर रहा है ?"

"मैं भोजन की बुराई कब कर रहा हूं ?" मदनचंद बोला—"मैं तो प्रीति-मती भाभी की बुराई कर रहा हूं कि अपने हाथ का भोजन खिलाकर उन्होंने अच्छा नहीं किया।"

"अच्छा तो बता।" प्रियमित्र बोला—"क्या बुरा किया है तेरी भाभी ने ?"

मदन बताने लगा—

"भैया, सच-सच बता रहा हूं। इतना स्वादिष्ट भोजन मैंने पहले कभी नहीं खाया। भाभी ने बुरा यह किया कि उन्होंने मेरी जीभ खराब कर दी। अब मुझे अपने घर का भोजन अच्छा नहीं लगेगा। यहीं के भोजन की याद सताया करेगी।"

"अरे, तो तू मित्र के घर को पराया घर समझता है ?" प्रियमित्र बोला—"चाहे जब आकर यहीं खाया कर। मैं नहीं भी मिलूं तो तेरी भाभी तुझे बना कर खिलाया करेगी।"

बस मदनचंद को मौका मिल गया। अब वह प्रायः प्रियमित्र के घर आने लगा। वह प्रीतिमती से हँसी-मजाक करता और एक दिन तो उसका हाथ भी पकड़ लिया। प्रीतिमती पतिव्रता थी। उसने झटका देकर अपना हाथ छुड़ा लिया और गर्जकर बोली—

"कामी कुत्ते, अब इस घर में कभी मत आना, वरना कोड़े लगाकर तेरी चमड़ी उधेड़ दूंगी।"

मदनचन्द अपना-सा मुँह लेकर चला गया। बाद में प्रीतिमती ने अपने पति प्रियमित्र को भी मदनचंद की कुचेष्टा बता दी। प्रियमित्र ने भी उसकी भर्त्सना की और हमेशा के लिए उसका घर आना बन्द कर दिया।

मदनचन्द को प्रियमित्र और प्रीतिमती के व्यवहार से इतनी ग्लानि हुई कि नगर छोड़कर ही चला गया। पैदल चलते-चलते उसे दो दिन हो गए और दो दिन से खाना भी नहीं मिला। फिर मार्ग में उसे कुछ ग्वाले मिले उन्होंने उसे गायों का धारोष्ण दूध दुह कर दिया। बुरा व्यक्ति भी पूरी तरह बुरा नहीं होता। कहीं-न-कहीं उसमें भी सद्गुण छिपा रहता है। दूध का लोटा हाथ में लेकर मदनचन्द सोचने लगा

कि इस समय मुझे कोई संत मिल जाते तो उन्हें आहार दान देकर मैं दूध पीता। पर मेरे ऐसे भाग्य कहाँ ?

मदनचन्द की भावना सच्ची थी। उसी समय एक मासिक व्रतधारी मुनि जंगल में आते दिखाई दिये। मदनचंद ने उठकर उनकी वंदना की और दूध बहराया। फिर उसने स्वयं भी दूध पिया। ऐसा सुन्दर पात्रदान करके मदनचन्द ने अमित पुण्यों का बंध कर लिया। दूध पीकर वह उठा और तालाब के किनारे पहुँचा। पैर फिसल जाने के कारण वह तालाब में गिर गया और उसी में डूबकर मर गया।

मदनचंद की जीवन-लीला तो समाप्त हो गई। प्रियमित्र और प्रीतिमती आनन्दपूर्वक दाम्पत्य सुख भोग रहे थे। एक बार दोनों वन-भ्रमण को निकले और नगर के पास धनंजय यक्षायतन में दर्शन करने गए। वहाँ उन्हें एक मुनि कायोत्सर्ग में लीन मिले। मुनि को देखकर प्रीतिमती को बड़ा क्रोध आया। मुनि का मिलना अपशकुन मान प्रीतिमती ने उन पर पत्थर बरसाये। उनका रजोहरण भी छीन लिया। उसका क्रोध इतने से ही शान्त नहीं हुआ। उसने अपने एक नौकर आदेश दिया कि यह मुनि यों उठकर नहीं जाएगा। पत्थरों की मार से भी ढोंगी ध्यानमग्न बना बैठा है। तुम लोहा गरम करके इसे दाग दो, तब यह उठेगा। इस पर प्रीतिमती के नौकर ने उसे उत्तर दिया —

"मैं ऐसा पाप नहीं कर सकता। मुनि तो क्षमासागर हैं। इसीलिए आपके पत्थर खाकर भी कायोत्सर्ग में लीन हैं।"

अब तो प्रीतिमती नौकर पर भी क्रुद्ध हो उठी। उसने प्रियमित्र से कहा—

"इस नौकर की यह मजाल कि मेरी आज्ञा का उल्लंघन करे।"

प्रियमित्र ने अपनी पत्नी का पक्ष लेकर अपने नौकर को वृक्ष से बाँधकर उल्टा लटका दिया।

× × ×

मदनचंद का जीव सागरतिलक नगर के राजा अनंगदेव का पुत्र बना। उसका नाम कंदर्पदेव रखा गया। प्रियमित्र पृथ्वीरत्नपुर नगर में ही जन्मा। वह वहाँ के राजा सूरपाल का पुत्र महाबल बना। प्रीतिमती चन्द्रावती नगरी के राजा वीरधवल की पुत्री मलया बनी। रुद्रा-भद्रा ने मरकर पुनर्जन्म पाया। रुद्रा का जीव भद्रपुर के राजा चन्द्रयश की पुत्री अनंगवती बनी। अनंगवती राजा वीरधवल की दूसरी रानी बनी। भद्रा का जीव एक व्यन्तरी बना।

पूर्वभव के सौतिया डाह के कारण व्यन्तरी ने महाबल का हार चुराकर अनंगवती को सौंपा था। पूर्वभव में भी ये दोनों सौतें प्रेम से रहती थीं। यहाँ भी व्यन्तरी ने अनंगवती का सहयोग दिया। ये दोनों ही मलया को दुख देना चाहती थीं और पूर्वभव के पति महाबल से भोग करना चाहती थी। भोग के लिए भद्रा के जीव

व्यन्तरी ने महाबल का अपहरण किया और भोग के लिए ही भद्रा के जीव अनंगवती ने महाबल से काम याचना की।

पूर्वभव के मोहबंध के कारण प्रियमित्र और प्रीतिमती महाबल और मलया के रूप में पति-पत्नी हुए और दोनों में अतिशय प्रीति रही। लेकिन मलया ने मुनि महाराज को जो घोर पीड़ा दी थी, उसी के बदले उसे अपार कष्ट उठाने पड़े। पूर्व-भव के असफल प्रेमी मदनचंद के जीव राजा कंदर्पदेव ने इस भव में मलया को पत्नी बनाने की चेष्टा की थी। प्रीतिमती ने तो मदनचंद से मुंह से ही कहा था कि अब इस घर में कभी मत आना, वरना कोड़े लगाकर तेरी चमड़ी उधेड़ दूंगी, पर कंदर्प-देव ने तो मलया के उस समय कोड़े लगाये थे जब वह सुन्दरसेन के रूप में पुरुष बनी थी। किया हुआ कर्म कभी व्यर्थ नहीं जाता। कोड़े मारने की भावना रखने के कारण मलया को कोड़े खाने भी पड़े।

प्रियमित्र ने अपने जिस नौकर को पेड़ से उल्टा लटकाया था, उसी ने प्रेत का जन्म पाया और लोभसार के शव में स्थित होकर महाबल को पेड़ से उल्टा लटकाया। उसी प्रेत ने लोभसार के शव में स्थित होकर अनंगवती की नाक काट ली थी। इसके पीछे भी एक घटना है। भद्रा ने एक बार प्रीतिमती की अँगूठी चुरा ली थी। इसे उस नौकर ने देख लिया था। उसने प्रीतिमती को बता दिया। भद्रा ने उसे दण्ड दिया। उसी का बदला नौकर के जीव वाले प्रेत ने यह लिया कि लोभसार के शव में पैठकर भद्रा के जीव वाली अनंगवती की नाक काट ली।

× × ×

केवली भगवान सुयश मुनि ने मलया से कहा

"भद्रे! नवकार मंत्र का जाप और पातिव्रत्य एवं शीलनिष्ठा तेरे कष्टों के कवच बने रहे हैं। तूने मुनि महाराज का जो घोर अपमान किया, उन्हें जो पीड़ा दी, उसी के कारण तूने घोर संकट उठाये हैं।

"भद्रे! प्रीतिमती के बाद तेरा यह दूसरा जन्म हो गया। पर जिन मुनि को तूने पीड़ा दी थी, वह मुनि मैं ही हूं।

"मलया! तेरे मन में दो शंकाएँ उठ रही हैं। उनका समाधान मैं पहले ही कर दूं। बलसार श्रेष्ठी ने जो कुछ किया, वह पिछले किसी कर्म के कारण नहीं, बल्कि उसने तेरे रूप पर मुग्ध होकर तेरे साथ जो कुछ किया, वह करके दुष्कर्म का बंध ही किया है। जिस मगर ने तुझे समुद्र से निकालकर किनारे लगाया था वह पूर्व भव में तेरी धायमाता थी। पूर्व प्रीति के कारण उसने तुझे पार लगाया।"

महाबल ने प्रश्न किया—

"भन्ते! अनंगवती का वैर चुक गया है या वह अभी और भी बदला लेगी?"

"उसका वैर अभी नहीं चुका।" केवली भगवान ने कहा—"अवसर पाते ही वह पुनः कुछ करेगी।"

महाबल और मलया का पूर्वभव सुनकर राजा सुरपाल और राजा वीरधवल की तो मोहनींद ही उचट गई। उन्हें संसार निस्सार लगने लगा। वे दोनों राजा अपने-अपने नगरों को गए और अपनी-अपनी रानियों को दीक्षा लेने के विचार से अवगत कराया। दोनों की रानियां भी दीक्षा लेने को तैयार हो गईं। वीरधवल ने युवराज मलयकुमार को राज्य दिया और इसी सौदामिनी सहित दीक्षा ले ली। महाबल सागरतिलक नगर और पृथ्वीस्थानपुर— दोनों राज्यों का राजा बना। उसके पिता-माता भी अनगार बन गए।

× × ×

महाबल यशस्वी, प्रतापी, न्यायप्रिय और प्रजावत्सल शासक था। उसकी महारानी मलया पूर्णतः पतिव्रता और धर्मशीला नारी थी। दोनों में अतिशय प्रीति थी। उनका पुत्र बलसुन्दर भी माता-पिता का आज्ञाकारी था।

समय सर-सर-सर बीता जा रहा था। महाबल और मलया के भोगावली कर्म भी समाप्त हो रहे थे। एक मुनि की देशना सुन दोनों को वैराग्य हो गया और महाबल मलया ने दीक्षा ले ली।

मुनि महाबल एक बार पृथ्वीस्थानपुर के निकट वायोत्सर्ग में बैठ गए। भटकती हुई रानी अनंगवती वहां आ गई। उसने मुनि महाबल को देखा तो वह पहचान गई कि यह वही होगी है, जिसने मेरे प्रणय को ठुकराया था और जिसने अपने नगर से भी मुझे निकाला था। मैं इसे अब जीवित नहीं छोड़ूंगी।

अनंगवती का वैर पूरे चरम पर उभर आया। उसने सूखी लकड़ियां जंगल से बीनीं और मुनि के चारों ओर इकट्ठी करके उनमें आग लगा दी। ऐसा करके उसने अवर्णनीय पापों का अर्जन तो कर लिया, पर बदला चुक जाने के कारण प्रसन्न होकर चली गई।

उधर मुनि जलने लगे। पर वे समता सागर में डूब गए। आग लगाने वाले के प्रति उनके मन में किंचित् भी क्षोभ नहीं था। शमन कर्मों का क्षय करके मुनि महाबल को केवलज्ञान प्राप्त हो गया। वे सिद्ध बुद्ध बने। उनके जीवन की सरिता का अन्त मोक्ष रूपी सागर में हो गया।

साध्वी मलया ने भी पंडित मरण प्राप्त कर स्वर्ग में देव भव पाया। आगामी भव में वे भी मोक्ष प्राप्त करेंगी। जाने कितने जन्मों से जीव मोक्ष के लिए ही भटक रहा है। किसी-न-किसी जन्म में उसे इसी धर्मपथ और मोक्ष के लक्ष्य को प्राप्त करना ही है।

| |